ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली

ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली

विश्वविद्यालय, प्रयाग द्वारा डी० फ़िल्० उपाधि के लिए
सन् १९५१ में स्वीकृत थीसिस

डॉ० हरिहरप्रसाद गुप्त
एम० ए०, डी० फ़िल्०

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली इलाहाबाद बम्बई

लक्ष्मी पुस्तक भंडार, इलाहाबाद के लिए
राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
बम्बई द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण १०००
सितम्बर १९५६
मूल्य छः रुपया

ईश्वर चन्द्र गुप्त द्वारा
लक्ष्मी प्रेस,
इलाहाबाद में मुद्रित

परम पूज्य स्वर्गस्थ पिता

श्री मोहनलाल गुप्त

की

पुण्य स्मृति

में

भूमिका

'ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली' में श्री हरिहर प्रसाद जी ने लगभग ढाई सहस्र ऐसे शब्दों का वैज्ञानिक सङ्कलन किया है जो हमारे ग्राम जीवन की भाषा की रीढ़ हैं। कृषक जीवन की शब्दावली हिन्दी भाषा का महत्त्वपूर्ण अंश है जिसकी परम्परा अधिकांश में वैदिक युग से चली आती है। जीवन के कई क्षेत्रों में, विशेषतः जिनका सम्बन्ध नागरिक जीवन से था, उन क्षेत्रों में अरबी, फारसी से प्राप्त शब्दावली ने प्राचीन शब्दों को हटा दिया, किन्तु गाँवों में जीवन की धारा का प्रवाह अटूट रहा है और इसका पुष्ट उदाहरण हमारी शब्दावली में पाया जाता है। युग, हल, वरत्रा, हलीषा, क्षेत्र, प्रग्रह, रश्मि, नद्ध आदि कितने ही शब्द भाषा के प्राचीनतम स्तर तक पहुँचाते हैं जिनसे बने हुए रूप गाँव की भाषा में जाने पहचाने शब्दों की भांति सदा प्रयुक्त होते आ रहे हैं। अपनी बोलियों को छानकर ऐसे समस्त शब्दों को अलग पहचानने का कार्य महत्त्वपूर्ण है। यह कार्य किसी एक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। हिन्दी की बोलियों का विस्तार हिमाचल से दक्षिण कोसल तक और राजस्थान से बिहार तक फैला हुआ है। इतने विस्तृत क्षेत्र में कम से कम सौ स्थानों से ऐसा ही संग्रह कार्य होना चाहिए जैसा श्री हरिहर प्रसाद जी ने आज़मगढ़ ज़िले की एक तहसील के लिये किया है। इस निबन्ध की शैली से लिखे हुए एक शत निबन्ध यदि हिन्दी भाषा को प्राप्त हो सकें तो कृषक शब्दावली का पुष्कल समृद्ध रूप सामने आ सकता है और तब हमारे पास उस प्रकार की सामग्री का प्रामाणिक संग्रह उपलब्ध हो सकेगा जिसके आधार पर तुलनात्मक अध्ययन का सूत्रपात किया जा सकता है।

कृषक शब्दावली के संग्रह का महत्त्व अभी तक पूरी तरह पहचाना नहीं जा सका है। हिन्दी के लिए तो यह अमृत प्रोक्षण के सदृश नए जीवन का आवाहन करेगा। वस्तुतः गाँवों और नगरों में मिलाकर शब्दों का जो अनन्त भण्डार भरा है वह सब हिन्दी की निधि है। देहाती जीवन में पनपने वाले ग्रामोद्योगों और शहरों में पेशेवर लोगों की शब्दावली का सङ्कलन किए बिना हिन्दी का सच्चा स्वरूप सामने आ ही नहीं सकता। सौभाग्य से इस प्रकार के कार्य का सूत्रपात उन्नीसवीं शती में ही हो गया था। १८७९ में श्री विलियम क्रुक ने 'ए डाइजेस्ट आफ रूरल एँड एग्रिकल्चुरल टर्म्स' (ग्राम जीवन और कृषि के शब्दों की सार सूची) नामक पुस्तक प्रकाशित की। उन्होंने लिखा है कि उन्होंने वह सूची श्री एच० एम० इलियट द्वारा सङ्कलित शब्दावली, प्रो० एच० एच० विल्सन की

शब्दावली और श्री जे० आर० रीड कृत आजमगढ़ ग्लासरी के आधार पर तैयार की थी और उसमें उन अनेक शब्दो को भी जोड़ दिया था जो बन्दोबस्त करने वाले हाकिमों ने अपने विवरणों में प्रयुक्त किए थे। यह मूल पुस्तक अब प्रायः अप्राप्य है और श्री ग्रियर्सन के सूचनानुसार इलाहाबाद के सरकारी प्रेस (नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज ऐंड अवध गवर्मेंट प्रेस) से १८७६ मे छपी थी। श्री ग्रियर्सन का कहना है कि यदि वह शब्दावली उन्हें प्राप्त न हुई होती तो वे अपनी बिहार पेजेंट लाइफ' नामक पुस्तक कदापि तैयार न कर पाते। इसी कथन से क्रुक के काम का महत्व जाना जा सकता है। श्री क्रुक ने अपनी पहली शब्दावली का प्रारूप उस समय के शिक्षा और माल विभागों के अनेक अधिकारियों के पास भेजा और उत्तर मे जो बहुमूल्य सुझाव और सामग्री प्राप्त हुई उसके आधार पर अपनी शब्दावली का दूसरा परिवर्द्धित संस्करण १८८८ म गवर्मेंट प्रिंटिंग, इंडिया (कलकत्ते) से प्रकाशित कराया। उसकी एक प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय से मुझे देखने के लिये प्राप्त हुई। इसी बीच १८८५ में जार्ज ग्रियर्सन का 'बिहार पेजेंट लाइफ' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ जिसमें कृषक जीवन से सम्बन्धित शब्दावली के कार्य की आदर्श रूप-रेखा प्रस्तुत की गई और एक प्रकार से सदा के लिए इस प्रकार के कार्य की दृढ़ आधारशिला रख दी गई। क्रुक ने अपनी पुस्तक के पहले संस्करण मे विषयवार शब्दो का संग्रह किया था, किन्तु दूसरे संस्करण मे सुविधा के लिए उसे अकारादि क्रम से सजा दिया था। किन्तु ग्रियर्सन ने पहले ही क्रम को अपनाया और वस्तुतः जीवन के प्राणवन्त रूप का अध्ययन करने की दृष्टि से वही क्रम उपयोगी कहा जा सकता है। श्री क्रुक ने अपना कार्य कितने परिश्रम से किया था इसे देखकर आज भी उनकी लगन का लोहा मानना पड़ता है। शब्दों के विविध रूपों का ऐसा भरा-पुरा संग्रह देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। उदाहरण के लिए पड़वा, पडरा, पडरू, पड्डा, पड़वा, पड़ो, पड्डा आदि सभी विविध उच्चारण रूपों का उल्लेख उनके संग्रह में पाया जाता है।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण शब्द के कई रूप उन्होने दिए हैं, जैसे गोऍड, गोऍडा, गोऍड़, गोएंड़ा, गोएड़ा, गोएरा (=गाँव के पास के खेतों की धरती)। यह शब्दों की रूप बहुलता बोलियो की अपनी विशेषता है और उनकी सजीवता का प्रमाण भी। बोलियाँ पिंजड़ापोल की दीन-हीन गाएं नहीं हैं वे तो गाँवो के विस्तृत वातातपिक क्षेत्र में किलोल करती हुई ओसर गाएं हैं जिनकी चञ्चल काली पुतलियों में जीवन का लक्षण है। क्रुक के संग्रह में लगभग पन्द्रह हजार शब्द थे। ग्रियर्सन ने अपने कार्य को अधिक वैज्ञानिक पद्धति से किया और उन्होने संग्रह की क्षेत्र मर्यादा बिहार की भोजपुरी, मैथिली और मगही बोलियों तक सीमित रखकर शब्दों के तुलनात्मक स्वरूप का बहुत ही रोचक वर्णन किया है। ग्रियर्सन के ग्रन्थ का पहला

संस्करण (१८८५) अब शायद ही कहीं देखने को मिले। उसका दूसरा संस्करण १६२६ में विहार शासन ने पटने से प्रकाशित किया था। वह भी इस समय दुर्लभ हो गया है। आवश्यकता है उस मौलिक ग्रन्थ का तीसरा संस्करण शीघ्र प्रकाशित किया जाय। किन्तु अर्वाचीन हिन्दी जगत् अपने इस उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक है। पटने की विहार राष्ट्रभाषा परिषद् कुछ-कुछ ग्रियर्सन की ही शैली पर विहार के ग्राम जीवन की शब्दावली का संग्रह करा रही है जो आशा है किसी दिन सुसम्पादित रूप में प्रकाशित होगा। ग्रियर्सन ने अपने वर्णनों को समझाने के लिये अर्थों के साथ आवश्यक रेखाचित्र भी प्रस्तुत किए थे। इस प्रकार के संग्रह-कोशों में उनकी नितान्त आवश्यकता मानी जाती है। इसी प्रसङ्ग में एक अति उपयोगी प्राचीन शब्द संग्रह का उल्लेख करना भी आवश्यक है। १८८७ में इलाहाबाद के मिशन प्रेस से श्री पैटरिक कार्नेगी कृत 'कचहरी टेकनिकैलिटीज़' या 'ए ग्लासरी आफ टर्म्स, रुरल, आफिशियल ऐंड जनरल इन डेली यूज इन दी कोर्ट्स आफ लॉ ऐंड इन इलस्ट्रेशन आफ दी टेन्यूर्स, कस्टम्स, आर्ट्स ऐंड मैनूफैक्चर्स आफ हिन्दुस्तान' नामक पुस्तक का दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ था। श्री कार्नेगी ने •१८५० के लगभग अपनी सूची का संकलन आरम्भ किया था। विस्तार से शब्दों और संस्थाओं के अर्थों पर प्रकाश डालने के लिये कार्नेगी की पुस्तक आज भी बहुत उपयोगी है और हिन्दी में शब्द-संग्रह का कार्य करने वाले विद्वानों को उसे अवश्य एक बार देख लेना चाहिए। गोइंड या गौहानी का धरती पर ऐसा सटीक परिचय आज तक अन्यत्र मेरे देखने में नहीं आया। गाँव की आबादी की ज़मीन बस्ती कहलाती है। उसके बाद क्रमशः तीन प्रकार की भूमि आती है। पहली गोइँड या जमई, दूसरी मझार या कौली, और तीसरी पालो या फरदह जो गाँव बस्ती से दूर उसके अन्तिम घेरे मे होती है। जैसे पेड़ के तने से पल्लव दूर होते हैं ऐसे ही वह भी आखिरी सीमा में होती है। मझार या बीच की पट्टी मियाना भी कहलाती है। गोइँड को गौहानी भी कहा जाता है। हिन्दी में ये दोनों शब्द अभी तक चलते हैं। मध्यकालीन अवधी में गोहने या गोहन समीप के अर्थ में आया है। पार्श्व में रहने वाली सखियों के लिये भी इसका प्रयोग किया गया है। गोहानी धरती गाँव से सटी हुई उसके निकटतम होती है। गोइँड का अर्थ 'गाँव का निकटवर्ती भाग' गुप्त जी ने ठीक ही दिया है। पर उसकी व्युत्पत्ति गोष्ठ से प्रश्न चिह्न के साथ सुझाई है। वस्तुतः सुबन्धु ने वासवदत्ता मे शालि क्षेत्रों की सीमा पर रक्खे हुए गोमुण्डों का उल्लेख किया है। ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से गोमुण्ड से गोइँड, ग्वैड, गोऍड आसानी से बन सकता है। उसी का पर्याय गौहान, गोहना, गोहन आदि सं० 'गोधान' से सम्बन्धित होने चाहिएं। कार्नेगी ने लिखा है कि गोऍड धरती बहुत उपजाऊ और मूल्यवान् समझी जाती है। पर लोग और उनके डंगर-पोहे जब चाहे उसमें घुसकर खेती को नुकासन पहुँचा देते है, इसलिये गाँव में कहावत है—'गोएरे की खेती छाती

का जान', अर्थात् गोएँड की खेती ऐसी दुःखदायी है जैसे छाती पर जम बैठा हो। कार्नेगी की सङ्कलन-शक्ति सचमुच अद्भुत थी। गौहान या गौहानी शब्द के सामने उन्होंने इतने और शब्दों का उल्लेख कर दिया है—बंजिन, बारा, बड़ैरी, ढैया, गोऍड, गोऍड़, गोएड़ा, गोड़ा, गोरहा, गोरवा, गुहानी, जमइ, खिड़वा, पेड़, सगवारा। ये लोग आरम्भिक काल में बड़े रस और उत्साह से अपने कार्य में प्रवृत्त होते थे। इसी प्रसंग में दो व्यक्तियो के विशिष्ट कार्य का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। यद्यपि उनके कार्य को ७५ वर्ष के लगभग हुए पर हिन्दी के लिये आज भी उनका महत्त्व ज्यों का त्यो बना हुआ है। क्रुक-कार्नेगी-ग्रियर्सन के समकालीन युग में ही फैलन (१८७६) और प्लाट (१८८४) ने अपने उन महान् कोशो की रचना की जिनमें हिन्दी की बोलियों और गाँवों की शब्दावली के अति समृद्ध रूप का संग्रह कर लिया गया। आज वे शब्द और अर्थ कहाँ हैं? उन तक पहुँचने के लिये प्रयत्न करना होगा क्योंकि चटक गति से बदलते हुए भाषा-रूपों में पुराने अर्थ खोए जा रहे हैं। उदाहरण के लिये प्लाट ने 'बाँका' शब्द के बारह अर्थ दिए हैं जिन्हें उसने अत्यन्त विवेचना-शक्ति से पाँच वर्गों में बाँटकर क्रमशः लिखा है। इसी शब्द के 'हिन्दी शब्द सागर' और 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' में टेढ़ा, सुन्दर, बनाठना, छैला, बहादुर, केवल इतने ही अर्थ हैं। प्लाट के समय की उन्नीसवीं शती की भाषा में बाँका शब्द के जो अर्थ थे, हिन्दी की बोलियों में वे आज भी जीवित मिलेंगे। उन सब को हिन्दी के कोशों मे आना चाहिए। इसके लिए हिन्दी शब्दों के अर्थों की बारीक छानबीन होनी चाहिए।

श्री हरिहर प्रसाद जी ने जो कार्य किया है, वह अति महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी के कोश में छिपी हुई निधि से वह हमारा परिचय कराता है। उनके प्रदर्शित क्रम से एवं पूर्वाचार्यों के निर्दिष्ट मार्ग से इस प्रकार के शब्द-संग्रह का कार्य सर्वथा बढ़ाने योग्य है। समस्त उत्तर प्रदेश की स्थानीय बोलियों के क्षेत्रों को पहचान कर प्रत्येक क्षेत्र से इसी ढंग के शब्द-संग्रहों की आवश्यकता है। वस्तुतः इस प्रकार के किसी संग्रह में दस सहस्र से कम शब्दों का संग्रह न रहना चाहिए, जैसा ग्रियर्सन और क्रुक के संग्रहों में है। तभी हमें कृषक जीवन की सम्पूर्ण शब्दावली का परिचय प्राप्त हो सकेगा। गाँवों में कैसे कैसे टकसाली शब्द ढाले गए हैं? उनके माधुर्य को किस प्रकार कहकर बताया जाय? उनमें हिन्दी भाषा की निजी प्रकृति पूरी तरह खिली हुई मिलती है। गुप्त जी ने 'गंगा-जमुनी करव' इस विशेष प्रयोग का उल्लेख किया है, अर्थात् नारे की रस्सी को जुए के महादेवा या बमीठा के दोनों ओर समतोल रखना जिससे दोनों बैलों पर समान जोर पड़े (पृ० १२, १८५)। गंगा-जमुना के संगम की बड़ी घटना

किस प्रकार जुए की रस्सी के मिलवाँ फन्दों का रूप खड़ा कर देती है यह अनुभव करने की बात है।

श्री हरिहर प्रसाद जी ने शब्दो की व्युत्पत्ति के सुझाव देने में भी सावधानी से काम लिया है कितने ही शब्दों का निर्वचन शब्दसागर की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक कहा जा सकता है। फिर भी कुछ शब्द हैं जिनकी ठीक व्युत्पत्ति विचारने योग्य है, जैसे नीचक (पछाहीं बोली नैचक) की व्युत्पत्ति नीच से नहीं नेमिचक्र से है, नौदरि (पृ० २१७) की व्युत्पत्ति नवदन् (नौ दाँत वाला) से है। इसी वज़न पर सद्दर (सप्तदन्) और छद्दर (षोडन्) शब्द बने हैं। ओसार (पृ० १७३) उपशाल से नहीं, सं० अपसरक से है। जोइना (पृ० २०१) योजनिका से नहीं, प्राचीन वैदिक 'यून' (मूँज या गेहूँ की नाली को वटकर बनाई हुई रस्सी) से है। आजतक पच्छिम के देहातों में इसे जून कहा जाता है। उसी से वर्तन माँजने के मूंज के टुकड़े को जूना कहा जाता है।

गाँवों से संग्रहीत होने वाली शब्दावली का ऐतिहासिक और साहित्यिक अध्ययन भी शोध का विषय है। इस पुस्तक के पृष्ठ १-३ तक विभिन्न प्रकार की मिट्टियो के लिये लगभग पचीस शब्द और पृ० ३-७ तक खेतों के नामों के लगभग पचास शब्द दिए गए हैं। इनमें से प्रत्येक शब्द की परम्परा और साहित्यिक पृष्ठभूमि पर विचार किया जा सकता है। प्राचीन काल में भी यह शब्दावली इतनी ही समृद्ध थी। उदाहरण के लिये, मिट्टी कितनी तरह की होती है, इसके लिये विनयपिटक, भिक्खुपाचित्तिय प्रकरण में निम्नलिखित शब्दावली प्रयुक्त हुई है—

जाता पृथिवी (वह अद्दढ़ या रौसली—रजस्वला नदी की मिट्टी जो बरसात में जमा हो जाती है), सुद्धपंसु, सुद्धमत्तिका, अप्पपासाण, अप्पसक्खरा (रोरही या छर्रही माटी), अप्पकठला, अप्पमरुम्बा, अप्पवालिका, येभुय्येन पंसु (बहुत रेतवाली, रेतीली), येभुय्येन मत्तिका (=मटियार), अजाता पठवी (=दढ़, जमी हुई ठनकी माटी, पटपड़ या तावा माटी), सुद्धपासाण (चवनिहा), सुद्धसक्खरा, सुद्धकट्ठला (ठिकरही माटी, कठल=कपालखंड), सुद्धमरुम्बा (मोरम धरती), सुद्धवालिका (चनवागर या बलुआ), अप्पपंसु, अप्पमत्तिका, येभुय्येन पासाण, येभुय्येन सक्खरा (कंकरही या अँकड़ही माटी), येभुय्येन कट्ठला, येभुय्येन मरुम्बा, येभुय्येन वालिका। बुद्धघोस ने लिखा है कि मुट्ठी से बड़ा कंकड़ हो तो वह पाषाण कहलाता है और मुट्ठी के बराबर कंकड़ हो तो उसे शर्करा कहते हैं। कठल या कट्ठल का अर्थ है कपालखंड या खपरा और मरुम्बा का अर्थ था कटसक्खरा या मोरम जिसमें महीन छर्री रहती हैं। इस दृष्टि से ज्ञात होता है कि अप्प-

शंक्खरा या अल्पशर्करा धरती वह थी जिसे कँकरीली कहा जाता है। इसी के कंकड़ों के कम-ज्यादा होने से शुद्धसक्खरा और येभुय्येन सक्खरा भेद थे। कट्ठुला वह धरती हुई जिसे लोक मे ठिकरही कहा जाता है। इसी के तीन भेद अल्पकठला, शुद्ध कठला और येभुय्येन कठला थे। अल्पमरुम्बा, शुद्धमरुम्बा और येभुय्येन मरुम्बा तीन प्रकार की रोरही या छर्रही मिट्टी होनी चाहिए। वालिका स्पष्ट ही बलुआ धरती है जिसमे चनवगरा भी शामिल है। इसके भी तीन भेद अल्पवालुका, शुद्धवालुका और येभुय्येन वालुका थे। मृत्तिका मटियार है जिसकी तीन किसमे अल्पमृत्तिका, शुद्धमृत्तिका और येभुय्येन मृत्तिका कहलाती थीं। आजकल की मटियार, दूमट और जबर माटी इन्हीं भेदो से मिलती हैं।

काशी विश्वविद्यालय
वसन्त पंचमी, सं० २०१२

वासुदेवशरण

निवेदन

ग्रामीण शब्दों का संग्रह तथा उनका अध्ययन ये दोनों कार्य अभी तक हिन्दी-साहित्य में नहीं के बराबर हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि ये कार्य अत्यन्त कष्ट-साध्य हैं। ग्रामीण बोलियों एवं शब्द-समूहों का संग्रह, जब तक ग्रामीण जनता में कोई घुलमिल न जाय, नहीं कर सकता। ग्रामीण जनता की यह संपत्ति ऐसी नहीं है जिसे आप पहुँचते ही उनसे प्राप्त कर सकें, वरन् इसके लिए उनका सत्संग अपेक्षित है। क्योंकि यह संभव नहीं है कि वे आप के पूछने पर किसी विषय पर अपना व्याख्यान दे सकें अथवा किसी विषय की आप को पूरी जानकारी करा सकें अथवा किसी विषय से सम्बन्धित शब्द-समूहों को वे आप को लिखा सकें। वे तो प्रसंग छिड़ने पर ही अपना ज्ञान प्रदान कर सकते हैं। यह भी स्वाभाविक नहीं है कि वे जितना जानते हैं वह सब आप को एक ही बार में बतला दें। आप को उनसे प्रश्न करके ही सारी जानकारी प्राप्त करनी होगी। आप को एक ही स्थान पर एक ही व्यक्ति से सारी बातें ज्ञात हो जायँ, यह भी सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त एक कठिनाई और है। विभिन्न विषयों से सम्बन्धित शब्द-समूह आप एक ही समय में संग्रह नहीं कर सकते, उसके लिए विशेष ऋतु की प्रतीक्षा करनी होगी।

सन् १९३७ में एम० ए० करने के उपरान्त मेरे पूज्य गुरु डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, अध्यक्ष हिन्दी-विभाग विश्वविद्यालय, प्रयाग ने मुझे ग्रामीण शब्दावली के अध्ययन के लिए प्रेरित किया। संयोग से सन् १९४२ से १९४६ तक मुझे आज़मगढ़ जिले में सब-डिप्टी इन्सपेक्टर आफ़ स्कूल्स के रूप में कार्य करना पड़ा। उस समय ग्रामीण जनता के सम्पर्क में आने पर, मैंने यह अनुभव किया कि हमारी ग्रामीण बोलियों में हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित इतना अपार शब्द-भंडार है कि उसका संग्रह हमारी भाषा और साहित्य की अभिवृद्धि के हेतु एक अनिवार्य आवश्यकता है। न केवल हिन्दी भाषा को समृद्ध बनाने एवं हिन्दी के ऐतिहासिक विकास तथा उसके तुलनात्मक अध्ययन के लिए वरन् भारतीय संस्कृति की सम्यक् जानकारी के लिए भी जनपदीय शब्दों वाक्यांशों, मुहावरों तथा कहावतों का वैज्ञानिक संग्रह एवं अनुशीलन अपेक्षित है।

ग्रामीण जीवन में खेती और कुटीर-उद्योगों का एक विशेष स्थान है अतः तत्संबंधी शब्दावली का अध्ययन विशेष महत्वपूर्ण एवं उपयोगी समझकर मैंने अपने शोध-कार्य को यहीं तक सीमित रखा। शब्द-संग्रह अधिक से अधिक वैज्ञानिक एवं प्रामाणिक हो सके इस दृष्टि से मैंने अपने शोध-कार्य का क्षेत्र भी सीमित

रखा। इसके लिए मैंने जिला आज़मगढ़ के तहसील फूलपुर के परगना अहिरौला को चुना। यह क्षेत्र जौनपुर और फैज़ाबाद की सीमा से लगा हुआ है, यहाँ की बोली पश्चिमी भोजपुरी होते हुए भी अवधी से किंचित् प्रभावित है।

अंग्रेज़ी में स्वर्गीय सर जार्ज ए० ग्रियर्सन ने इस प्रकार का संग्रह 'बिहार पेजेंट लाइफ़' मे किया है। वस्तुतः इस विषय के अनुसंधानकर्त्ताओं के मार्गप्रदर्शनार्थ यह एक अमूल्य कृति है किन्तु यह संग्रह बहुत बड़े विस्तृत क्षेत्र मे एवं बहुत से व्यक्तियों द्वारा किया गया है इसलिए यह पूर्ण वैज्ञानिक एवं प्रामाणिक नहीं हो सका। प्रस्तुत संग्रह मैंने इसी लक्ष्य से स्वयं और एक सीमित क्षेत्र मे किया है। भाषा के अध्ययन के लिए यह समस्त सामग्री पूर्ण प्रामाणिक बन सके इसका सदैव ध्यान रखा गया है। इस संग्रह मे यह भी ध्यान रखा गया है कि गाँव की बोली से अधिक से अधिक शब्द तथा मुहावरे आ सकें। शब्दों एवं मुहावरों का भाव पूर्णतया स्पष्ट हो सके इस दृष्टि से इन्हें देहाती भाषा के गठित वाक्यो के साथ रखने की चेष्टा की गई है। विविध शब्दो के साथ प्रयुक्त होने वाली धातु तथा वाक्यांश भी दिए गए हैं। उद्योग-धन्धों की शब्दावली विशेष (टेकनिकल) अर्थों मे प्रयुक्त होती है अतः उनके समझाने के लिए उद्योग-धन्धों की प्रत्येक प्रक्रिया का पूर्ण विवरण अपेक्षित है; इसीलिए प्रबंध के प्रथम खण्ड में खेती तथा अन्य समस्त उद्योगों का विवरणात्मक वर्णन दिया गया है। इस विवेचन शैली से एक लाभ यह भी है कि किसी भी उद्योग मे प्रयुक्त होने वाले शब्द और मुहावरे यथासंभव छूट नहीं सके हैं। यों तो यह शब्द-सागर ऐसा है कि इसमें जितनी बार कोई डुबकी लगावे उतनी बार उसे शब्द रत्न प्राप्त होंगे, सरस्वती का यह अपूर्व भांडार कभी रिक्त होने का नहीं।

प्रबन्ध के द्वितीय खण्ड में समस्त पारिभाषिक शब्दों की अनुक्रमणिका अकारादि-क्रम से दी गई है। शब्दो के साथ उनके प्रयोग के अनुच्छेदों की संख्या देते हुए उनका व्याकरण और उनकी व्युत्पत्ति भी दी गई है। इसमें लगभग २५०० शब्द हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से हिंदी भाषा का कोई प्रामाणिक कोश अभी तक नहीं है। श्री टर्नर महोदय की 'नेपाली डिक्शनरी' ही एक मात्र इस क्षेत्र मे एक वैज्ञानिक अनुशीलन है। अतः व्युत्पत्ति का कार्य अत्यन्त जटिल है। बहुत से ऐसे ठेठ शब्द हैं जिनकी व्युत्पत्ति के लिए भारत की विभिन्न भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षित है, जिसका अभी सर्वथा अभाव है। श्री के० पी० कुलकर्णी का 'मराठी व्युत्पत्ति कोश' इस दिशा में एक सुन्दर प्रयास है। वस्तुतः अभी तक ग्रामीण बोलियों के अतुल शब्द भांडार की ओर हमारा ध्यान ही नहीं गया है, उनकी व्युत्पत्ति का प्रश्न तो दूर है। अस्तु, यह अनुशीलन विषय-विवेचन और शब्दों की निरुक्ति दोनों दृष्टियों से नितांत मौलिक है तथा सारा कार्य स्वतंत्र ढंग से करना पड़ा है।

मेरे इस शोध-कार्य के संपन्न होने का श्रेय वस्तुतः गुरुवर प्रो० धीरेन्द्र वर्मा जी को है जिन्होंने इसका श्रीगणेश करा कर अपने निरीक्षण में ही इसे डी० फिल्० उपाधि के लिए पूर्ण कराया। गुरु-ऋण से मैं कभी मुक्त नहीं हो सकता हूँ। मैं अपने पूज्य गुरु डॉ० बाबूराम सक्सेना, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, विश्वविद्यालय, प्रयाग का भी हृदय से अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने, स्नेह के कारण ही, अपना अमूल्य समय देकर व्युत्पत्ति के कार्य को वैज्ञानिक शैली पर सम्पन्न कराया, वस्तुतः उनकी असीम कृपा का ही यह फल है। मैं अपने थीसिस के परीक्षकों—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी तथा डॉ० बनारसीदास जैन, भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पंजाब यूनिवर्सिटी का भी उपकृत हूँ जिन्होंने कार्य को अधिक पूर्ण बनाने के लिए अपने अमूल्य सुझाव दिये थे। डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, विश्वविद्यालय, कलकत्ता के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करना आवश्यक समझता हूँ जिन्होंने सदैव मुझे स्वर्गीय डॉ० ग्रियर्सन की 'बिहार पेजेंट लाइफ' के अनुकरण पर यू० पी० पेजेंट लाइफ़ लिखने की प्रेरणा दी। उनकी इस शुभेच्छा को मैं आंशिक रूप में पूर्ण कर सका हूँ इसका मुझे संतोष है। मुझे विश्वास है कि उनके आशीर्वाद एवं प्रोत्साहन से उनकी यह अभिलाषा अवश्य पूर्ण होगी। उनकी अमूल्य सम्मतियों के लिए मैं हृदय से आभारी हूँ। लोक-जीवन एवं साहित्य के पुजारी आचार्य काका कालेलकर का भी मैं कम उपकृत नहीं हूँ जिनके द्वारा मैं ग्रामोद्योग के प्राण स्वर्गस्थ राष्ट्रपिता बापू के संपर्क में आ सका तथा एतदर्थ उनके शुभाशीर्वाद प्राप्त कर सका (दे० कर्मयोग, आगरा, १६ जुलाई १९४६)। प्रातःस्मरणीय संत विनोबा एवं श्री बी० जी० खेर, अध्यक्ष आफिशियल लैंग्वेज कमीशन के शुभाशीषों ने भी मुझे इस साधना को पूर्ण करने के लिए समर्थ बनाया, अतएव मैं इनका भी आभारी हूँ। स्वर्गीय डॉ० अमरनाथ झा, डॉ० सम्पूर्णानंद, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० दीनदयालु गुप्त, डॉ० विश्वनाथ प्रसाद पटना विश्वविद्यालय, डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा, डॉ० नगेन्द्र, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी प्रभृति विद्वानों ने इस कार्य की उपादेयता बतलाते हुए समय-समय पर मुझे प्रोत्साहित किया है अतः इसकी पूर्ति में इनका भी हाथ है, मैं इनके प्रति भी आभार-प्रदर्शन करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ। परन्तु इस कार्य को पूरा करने में मुझे जितनी कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं और जितना समय देना पड़ा उससे घबड़ाकर मैंने इस महत्वपूर्ण कार्य को कभी छोड़ दिया होता यदि मेरे पूज्य भ्राता डॉ० माताप्रसाद गुप्त, एम० ए०, डी० लिट्, रीडर, हिन्दी-विभाग, विश्वविद्यालय, प्रयाग (अधुना विशेष पदाधिकारी, आफ़िशियल, लैंग्वेज कमीशन) ने अपने अमूल्य सुझावों से मेरा मार्ग-प्रदर्शन एवं मुझे प्रोत्साहित न किया होता। मैं उनके इस ऋण से सदैव बाधित हूँ।

मैं उत्तरप्रदेशीय सरकार के शिक्षा-विभाग के अधिकारियों का भी आभारी हूँ जिन्होंने मुझे इस शोध-कार्य की सहर्ष अनुमति प्रदान की थी।

अन्त में मैं उस क्षेत्र के समस्त अध्यापकों को विशेषतः अहिरौला निवासी श्री रामऔतारलाल तथा स्वर्गीय श्री रामसमझ पांडे को धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने ग्रामोद्योगों के निरीक्षण तथा उनकी शब्दावली के संग्रह में अत्यधिक रुचि के साथ मेरी निरंतर सहायता की थी।

इस ग्रन्थ के कई निबन्ध 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका', 'हिन्दुस्तानी', 'हिन्दी अनुशीलन', 'लोकवार्त्ता, 'मधुकर','जनपद' आदि शोध पत्रों में समय-समय पर प्रकाशित हुए हैं अतः इन पत्रों के संपादकों का भी मैं उनके अमूल्य सहयोग के लिए कृतज्ञ हूँ।

शोध सम्बन्धी ग्रन्थों के प्रकाशकों के अभाव से ही यह कृति पाठकों को इतने विलम्ब से प्राप्त हो रही है इसका मुझे दुःख है।

मेरी इच्छा है कि मैं इस शब्दावली का तुलनात्मक अध्ययन करूँ अतः विभिन्न जनपदों एवं प्रान्तों के जो साहित्य-सेवी इसमें सहयोग प्रदान कर सकेंगे उनका मैं अनुगृहीत हूँगा। ग्रामजीवन की सांस्कृतिक शब्दावली का अध्ययन भी लेखक कर रहा है जो यथासंभव शीघ्र ही प्रकाशित हो सकेगा।

परम आदरणीय पुरातत्त्वविद् एवं भाषा-मनीषी डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल जी ने इस प्रबंध की भूमिका लिखकर इसके वास्तविक मूल्य को पाठकों के सम्मुख रखा है, उनकी इस स्वाभाविक स्नेहमयी कृपा से मैं कभी उऋण नहीं हो सकता हूँ।

प्रयाग
होलिकोत्सव सं० २०१२

हरिहरप्रसाद गुप्त

सूची

खण्ड १

संक्षेप-सूची

अँ०	.....	अँग्रेजी	प०	...	पाली
अ०	.	अव्यय	पुं०	...	पुंलिङ्ग
अ० मा०	.	अर्द्धमागधी कोष	प्रा०		प्राकृत
अप०	...	अपभ्रंश	प्रे०	...	प्रेरणार्थक रूप
अनु०	.	अनुकरणात्मक	फ़ा०	..	फ़ारसी
अर०	...	अरबी	म०	..	मराठीव्युत्पत्ति कोश
अल्पा०	...	अल्पार्थक रूप	मुहा०	...	मुहावरा
क०		कनाडी	यौ०	...	यौगिक
कहा०	..	कहावत	वि०		विशेषण
क्रि०	....	क्रिया	वै० सं०	...	वैदिक संस्कृत
क्रि० वि०	...	क्रिया विशेषण	सं०	...	संस्कृत
तु०	.	तुलना कीजिए	स०	...	सकर्मक
तुर०	.	तुर्की	स्त्री०	...	स्त्री लिंग
दे०	.	देखिए	हि०	...	हिन्दी
ने०	...	नेपाली डिक्शनरी	*	.	कल्पनात्मक रूप
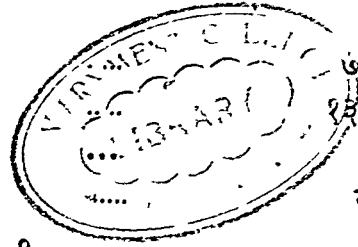
खण्ड १

१

मिट्टी और खेत

मिट्टी का वर्गीकरण

१. किसान ने विभिन्न प्रकार की मिट्टियों के, उनकी विशेषताओं के आधार पर, कुछ नाम रख लिये हैं। इन विशेषताओं के आधार पर इनका वर्गीकरण, निम्न ढंग से, किया जा सकता है—

जाति के आधार पर :

मटियार—मिट्टी को **माटी** कहते हैं। जिस मिट्टी में बालू की मिलावट नहीं होती है उसे **मटियार** कहते हैं। ऐसी मिट्टी खेती के लिए अच्छी होती है, इमारत आदि बनाने में भी इसका प्रयोग होता है। यह कड़ी होती है। खोदने पर यह **चाका-चाका** (चक्का-चक्का) निकलती है। इसका रंग **करछहूँ** (हलका काला) होता है।

बलुही या बलुआह—जिस मिट्टी में बालू का अंश होता है, उसे **बलुही** या **बलुआह** कहते हैं। इस पर वर्षा का प्रभाव नहीं जान पड़ता है क्योंकि इसके अन्दर पानी तुरन्त चला जाता है। विशेष **बलुही माटी** खेती के योग्य नहीं होती है।

बालू के दो भेद होते हैं—(१) **मटमैल** (२) **उजरकी** । जिस बालू में मिट्टी अधिक रहती है वह मटमैल और जिसमें मिट्टी कम होती है वह **उज्जर** (उज्ज्वल) दिखाई पड़ती है। **उज्जर बालू** को **उजरकी** बालू भी कहते हैं।

दुइमट या दुइरसा—मटियार और बलुही के बीच की मिट्टी को **दुइमट**, अथवा **दुइरसा** कहते हैं। कुछ शिक्षित-ग्रामीण इन्हें क्रमशः **दोमट** अथवा **दोरसा** भी कहते हैं। खेती के लिए यह अच्छी होती है और इसके जोतने आदि में परिश्रम कम पड़ता है। यह मिट्टी **भुसभुस** होती है; जोतने और हेंगाने पर **भुरभुरी** हो जाती है। मटियार प्रधान दोमट को **मटियार दोमट** तथा बालू प्रधान दोमट को **बलुही दोमट** कहते हैं।

उसराह या उसरही—ऊसर की मिट्टी को **उसराह** या **उसरही** कहते हैं। ऊसर को उपजाऊ बनाने के लिए उसमें, वर्षा के दिनों में, **साटा** (चौड़ी नहर) बना देते हैं जिससे ऊसर वर्षा का जल सोखता है। जिस ऊसर में रेह अधिक होती है

उसे रेहकट अथवा रेहटा कहते हैं। ऐसी मिट्टी खेती के योग्य नहीं होती है। जहाँ उसरौंडी (ऊसर की घास) होती है वहाँ केवल मेंडुआ या मकरा की पैदावार हो सकती है।

नोनही या लोनही—इसमें एक प्रकार का नमक मिला रहता है। जहाँ पुरानी आबादी होती है वहाँ यह पायी जाती है। दीवारमें नोना लगने से जो मिट्टी गिरती है उसे भी नोनही कहते हैं। इसे गोभी आदि पौधों की खाद के रूप में कीड़ों से रक्षा के लिए प्रयोग करते हैं।

रङ्ग के आधार पर :

२. करइल—यह मिट्टी रंग में काली और लसदार होती है। यह साधारणतः ऐसी जगह पायी जाती है जहाँ वर्षा का जल रुकता है। पानी सूखते ही यह फट जाती है और इसमें इतने चौड़े दर्रे फट जाते हैं कि इनमें पशुओं के पैर फँस जाते हैं। यह धान के लिए अच्छी समझी जाती है।

काबिस या कबिसाह—यह पीले रंग की होती है और उपज की दृष्टि से अच्छी नहीं समझी जाती है। इसका प्रयोग कोंहार (कुम्हार) बरतन रँगने में करते हैं।

किसी अन्य विशेषता के आधार पर :

चनबागर—नदी के कछार के अतिरिक्त जो जमीन होती है, उसे बागर कहते हैं। चनबागर ऐसी मिट्टी को कहते हैं जहाँ पानी ठहरता नहीं शीघ्र चन्न या भन्न हो जाता है अर्थात् सूख जाता है। इसलिए जिस खेत में जितनी दूरतक यह मिट्टी पायी जाती है, वहाँ इस प्रकार की खेती नहीं हो सकती जिसे सिंचाई की आवश्यकता पड़ती हो। यदि ऐसी मिट्टी धान के खेत में, जहाँ पानी लगा रहता है, हो तब इससे कोई हानि नहीं होती है।

भेलघघरा या तेलघघरा—यह ताल और नारा (नाला) के किनारे होती है। थोड़े ही दबाव से इसमें पानी चुकचुका (पसीज) आता है।

चवनिहा—कंकड़ की चवन या चवनि (चट्टान) से युक्त मिट्टी को कहते हैं।

कँकरही या ॲकड़ही—कंकड़ मिली हुई मिट्टी को कँकरही या ॲकरही मिट्टी कहते हैं।

रोरही या छर्रही—जिस मिट्टी में कंकड़ के छोटे-छोटे रोरे (गोटे) या छर्रे मिले रहते हैं उसे रोरही या छर्रही कहते हैं।

ठिकरही—जिस में खपड़े के टुकड़े मिले रहते हैं, उन्हें ठिकरही कहते हैं।

चिकनी या पोतनी—यह मिट्टी चिकनी एवं कुछ सफेद होती है और मकान पोतने के काम में आती है।

नीमन या निम्मन—यह टिकाऊ या मजबूत होती है।

हलुक—ऐसी मिट्टी को कहते हैं जिसमें उपज कम होती है।

जबर माटी—जिस माटी में उपज अच्छी होती हो उसे जबर कहते हैं।

कड़ी माटी—ऐसी माटी को कहते हैं जिसमें कुदार और फरसा धँसने में कठिनाई हो।

नरम माटी—ऐसी माटी को कहते हैं, जिसमें कुदार आसानी से चल सकती हो।

ठनकी माटी—ऐसी माटी को कहते हैं जो खेत का पानी सूख जाने पर कड़ी पड़ जाती है और गोड़ाई के योग्य नहीं रह जाती है।

कच्ची माटी—जब खेत गीला रहता है और जोतने के योग्य नहीं होता तब ऐसे खेत की माटी को कच्ची माटी कहते हैं।

अरइठ—खेत की जोती हुई माटी के नीचे की कड़ी और बिना कमाई हुई माटी को अरइठ कहते हैं।

तावा माटी—खेत जब लगातार कुछ दिनों तक जोता नहीं जाता या बहुत मामूली जोता जाता है तब खेत की निचली सतह की माटी बहुत कड़ी हो जाती है। ऐसी माटी को तावा कहते हैं।

कमायल माटी—खाद-पात डालकर जो माटी तैयार की जाती है उसे कमायल (कमाई हुई माटी) कहते हैं।

बहेंत माटी—पानी के बहाव के साथ बहकर आई हुई मिट्टी को बहेंत माटी कहते हैं। पानी के बहाव से जमीन कटकर ऊँचो-नीची हो जाती है जिसे खुडुरी-खुडुरा या खुढुरी-खुढुरा कहते हैं।

खेत का वर्गीकरण

किसान अपनी सुविधा के लिये खेतों का भी, उनकी विशेषताओं के आधार पर, नाम रख लेता है। ऐसे नामों का, निम्न ढंग, से वर्गीकरण किया जा सकता है—

मिट्टी के आधार पर:

४. मटियरा—जिस खेत की माटी मटियार हो उसे मटियरा कहते हैं। इसकी जोताई और हेंगाई में बहुत परिश्रम पड़ता है, क्योंकि इसकी माटी जल्दी टूटती नहीं, किंतु अनाज के लिए यह खेत सबसे अच्छा होता है। मटियरा में पेड़ छोटा होता है परन्तु बाल बड़ी और दाना मोटा होता है। मटियरा खेत पर पाले का प्रभाव कम पड़ता है।

बलुहा या बलुआह—जिस खेत की माटी बलुही होती है उसे बलुहा खेत कहते हैं। इसमें अनाज की पैदावार हलकी होती है। इसमें पौधा और बाल

उसे रेहरू अथवा रेहटा कहते हैं। ऐसी मिट्टी खेती के योग्य नहीं होती है। जहाँ ऊसरौंड़ी (ऊसर की बंजर) होती है वहाँ केवल सेहुआ या नकरा की पैदा-वार हो सकती है।

नोनही या लोनही—इसमें एक प्रकार का नमक मिला रहता है। जहाँ पुरानी आबादी होती है वहाँ यह पायी जाती है। दीवारमें नोना लगने से जो मिट्टी गिरती है उसे भी नोनही कहते हैं। इसे गोभी आदि पौधों की खाद के रूप में कीड़ों से रक्षा के लिए प्रयोग करते हैं।

रङ्ग के आधार पर:

१. करइल—यह मिट्टी रंग में काली और लसदार होती है। यह साधा-रणतः ऐसी जगह पायी जाती है जहाँ वर्षा का जल रुकता है। पानी सूखते ही यह फट जाती है और इसमें इतने चौड़े दरें फट जाते हैं कि इनमें पशुओं के पैर फँस जाते हैं। यह धान के लिए अच्छी समझी जाती है।

कॉबिस या कबिसाह—यह पीले रंग की होती है और उपज की दृष्टि से अच्छी नहीं समझी जाती है। इसका प्रयोग कोंहार (कुम्हार) बरतन रँगने में करते हैं।

किसी अन्य विशेषता के आधार पर:

चनबागर—नदी के कछार के अतिरिक्त जो जमीन होती है, उसे बागर कहते हैं। चनबागर ऐसी मिट्टी को कहते हैं जहाँ पानी ठहरता नहीं शीघ्र जज्ब या मज्ज हो जाता है अर्थात् सूख जाता है। इसलिए जिस खेत में जितनी दूर तक यह मिट्टी पायी जाती है, वहाँ इस प्रकार की खेती नहीं हो सकती जिसे सिंचाई की आवश्यकता पड़ती हो। यदि ऐसी मिट्टी धान के खेत में, जहाँ पानी लगा रहता है, हो तब इससे कोई हानि नहीं होती है।

भेलघवरा या तेलघवरा—यह ताल और नारा (नाला) के किनारे होती है। थोड़े ही दबाव से इसमें पानी चुकचुका (पसीज) आता है।

चवनिहा—कंकड की चवन या चवनि (चट्टान) से युक्त मिट्टी को कहते हैं।

कँकरही या अँकड़ही—कंकड मिली हुई मिट्टी को कँकरही या अँकरही मिट्टी कहते हैं।

रोरही या छर्रही—जिस मिट्टी में कंकड के छोटे-छोटे रोरे (रोड़े) या छर्रे मिले रहते हैं उसे रोरही या छर्रही कहते हैं।

ठिकरही—जिस में खपड़े के टुकड़े मिले रहते हैं, उसे ठिकरही कहते हैं।

चिकनी या पोतनी—यह मिट्टी चिकनी एवं कुछ सफेद होती है और मकान पोतने के काम में आती है।

नीमन या निम्मन—यह टिकाऊ या मजबूत होती है।

हलुक—ऐसी मिट्टी को कहते हैं जिसमें उपज कम होती है।

जवर माटी—जिस माटी में उपज अच्छी होती हो उसे जवर कहते हैं।

कड़ी माटी—ऐसी माटी को कहते हैं जिसमें कुदार और फरसा धँसने में कठिनाई हो।

नरम माटी—ऐसी माटी को कहते हैं, जिसमें कुदार आसानी से चल सकती हो।

ठनकी माटी—ऐसी माटी को कहते हैं जो खेत का पानी सूख जाने पर कड़ी पड़ जाती है और गोड़ाई के योग्य नहीं रह जाती है।

कच्ची माटी—जब खेत गीला रहता है और जोतने के योग्य नहीं होता तब ऐसे खेत की माटी को कच्ची माटी कहते हैं।

अरइठ—खेत की जोती हुई माटी के नीचे की कड़ी और बिना कमाई हुई माटी को अरइठ कहते हैं।

तावा माटी—खेत जब लगातार कुछ दिनों तक जोता नहीं जाता या बहुत मामूली जोता जाता है तब खेत की निचली सतह की माटी बहुत कड़ी हो जाती है। ऐसी माटी को तावा कहते हैं।

कमायल माटी—खाद-पात डालकर जो माटी तैयार की जाती है उसे कमायल (कमाई हुई माटी) कहते हैं।

बहँत माटा—पानी के बहाव के साथ बहकर आई हुई मिट्टी को बहँत माटी कहते हैं। पानी के बहाव से जमीन कटकर ऊँचो-नीची हो जाती है जिसे खुडुरी-खुडुरा या खुढुरा-खुढुरा कहते हैं।

खेत का वर्गीकरण

किसान अपनी सुविधा के लिये खेतों का भी, उनकी विशेषताओं के आधार पर, नाम रख लेता है। ऐसे नामों का, निम्न ढंग, से वर्गीकरण किया जा सकता है—

मि ट्टी के आ धा र पर :

१. मटियरा—जिस खेत की माटी मटियार हो उसे मटियरा कहते हैं। इसकी जोताई और हेंगाई में बहुत परिश्रम पड़ता है, क्योंकि इसकी माटी जल्दी टूटती नहीं, किंतु अनाज के लिए यह खेत सबसे अच्छा होता है। मटियरा में पेड़ छोटा होता है परन्तु बाल बड़ी और दाना मोटा होता है। मटियरा खेत पर पाले का प्रभाव कम पड़ता है।

बलुहा या बलुआह—जिस खेत की माटी बलुही होती है उसे बलुहा खेत कहते हैं। इसमें अनाज की पैदावार हलकी होती है। इसमें पौधा और बाल

उसे रेहकट अथवा रेहटा कहते हैं। ऐसी मिट्टी खेती के योग्य नहीं होती है। जहाँ उसरौड़ी (ऊसर की घास) होती है वहाँ केवल मेड़ुआ या मकरा की पैदावार हो सकती है।

नोनही या लोनही—इसमे एक प्रकार का नमक मिला रहता है। जहाँ पुरानी आबादी होती है वहाँ यह पायी जाती है। दीवारमें नोना लगने से जो मिट्टी गिरती है उसे भी नोनही कहते हैं। इसे गोभी आदि पौधों की खाद के रूप में कीड़ों से रक्षा के लिए प्रयोग करते हैं।

रङ्ग के आधार पर:

२. करइल—यह मिट्टी रंग मे काली और लसदार होती है। यह साधारणतः ऐसी जगह पायी जाती है जहाँ वर्षा का जल रुकता है। पानी सूखते ही यह फट जाती है और इसमे इतने चौड़े दर्रे फट जाते हैं कि इनमें पशुओं के पैर फँस जाते हैं। यह धान के लिए अच्छी समझी जाती है।

काबिस या कबिसाह—यह पीले रंग की होती है और उपज की दृष्टि से अच्छी नहीं समझी जाती है। इसका प्रयोग कोहार (कुम्हार) बरतन रंगने में करते हैं।

किसी अन्य विशेषता के आधार पर:

चनबागर—नदी के कछार के अतिरिक्त जो जमीन होती है, उसे बागर कहते हैं। चनबागर ऐसी मिट्टी को कहते हैं जहाँ पानी ठहरता नहीं शीघ्र चन्न या झन्न हो जाता है अर्थात् सूख जाता है। इसलिए जिस खेत मे जितनी दूरतक यह मिट्टी पायी जाती है, वहाँ इस प्रकार की खेती नहीं हो सकती जिसे सिंचाई की आवश्यकता पडती हो। यदि ऐसी मिट्टी धान के खेत मे, जहाँ पानी लगा रहता है, हो तब इससे कोई हानि नहीं होती है।

भेलघघरा या तेलघघरा—यह ताल और नाग (नाला) के किनारे होती है। थोडे ही दबाव से इसमें पानी चुकचुका (पसीज) आता है।

चवनिहा—कंकड की चवन या चवनि (चट्टान) से युक्त मिट्टी को कहते हैं।

कॅकरही या अँकड़ही—कंकड़ मिली हुई मिट्टी को कॅकरही या अँकडही मिट्टी कहते हैं।

रोरही या छर्रही—जिस मिट्टी मे कंकड़ के छोटे-छोटे रोरे (रोडे) या छर्रे मिले रहते हैं उसे रोरही या छर्रही कहते हैं।

ठिकरही—जिस में खपड़े के टुकडे मिले रहते हैं, उसे ठिकरही कहते हैं।

चिकनी या पोतनी—यह मिट्टी चिकनी एवं कुछ सफेद होती है और मकान पोतने के काम में आती है।

नीमन या निम्मन—यह टिकाऊ या मजबूत होती है।

हलुक—ऐसी मिट्टी को कहते हैं जिसमे उपज कम होती है।

जबर माटी—जिस माटी में उपज अच्छी होती हो उसे जबर कहते हैं।

कड़ी माटी—ऐसी माटी को कहते हैं जिसमें कुदार और फरसा धँसने में कठिनाई हो।

नरम माटी—ऐसी माटी को कहते हैं, जिसमें कुदार आसानी से चल सकती हो।

ठनकी माटी—ऐसी माटी को कहते हैं जो खेत का पानी सूख जाने पर कड़ी पड़ जाती है और गोड़ाई के योग्य नहीं रह जाती है।

कच्ची माटी—जब खेत गीला रहता है और जोतने के योग्य नहीं होता तब ऐसे खेत की माटी को कच्ची माटी कहते हैं।

अरेठ—खेत की जोती हुई माटी के नीचे की कड़ी और बिना कमाई हुई माटी को अरेठ कहते हैं।

तावा माटी—खेत जब लगातार कुछ दिनों तक जोता नहीं जाता या बहुत मामूली जोता जाता है तब खेत की निचली सतह की माटी बहुत कड़ी हो जाती है। ऐसी माटी को तावा कहते हैं।

कमायल माटी—खाद-पाँस डालकर जो माटी तैयार की जाती है उसे कमायल (कमाई हुई माटी) कहते हैं।

बहेत माटी—पानी के बहाव के साथ बहकर आई हुई मिट्टी को बहेत माटी कहते हैं। पानी के बहाव से जमीन कटकर ऊँचो-नीची हो जाती है जिसे खुड़री-खुड़रा या खुड़री-खुड़रा कहते हैं।

खेत का वर्गीकरण

किसान अपनी सुविधा के लिये खेतों का भी, उनकी विशेषताओं के आधार पर, नाम रख लेता है। ऐसे नामों का, निम्न ढंग से वर्गीकरण किया जा सकता है—

मि ट्टी के आ धा र प र :

१. मटियरा—जिस खेत की माटी मटियार हो उसे मटियरा कहते हैं। इसकी जोताई और हेंगाई में बहुत परिश्रम पड़ता है, क्योंकि इसकी माटी जल्दी टूटती नहीं, किंतु अनाज के लिए यह खेत सबसे अच्छा होता है। मटियरा में पेड़ छोटा होता है परन्तु बाल बड़ी और दाना मोटा होता है। मटियरा खेत पर पाले का प्रभाव कम पड़ता है।

बलुहा या बलुआह—जिस खेत की माटी बलुही होती है उसे बलुहा खेत कहते हैं। इसमें अनाज की पैदावार हलकी होती है। इसमें पौधा और बाल

दोनों छोटे होते हैं। साधारण जोतनी (जोताई) से ही काम चल जाता है।

दुइरसा (दोरसा) या दुइमट (दोमट)—दो रस माटी वाला खेत दुइरसा कहलाता है इसमें मटियार और बलुही दोनों मिट्टियाँ मिली होती हैं। इस मिट्टी में जौ-गेहूँ का पौधा लंबा होता है पर पैदावार मटियरा से कम होती है। पेड़ उखाड़ने पर, मिट्टी भुस-भुस होने के कारण, भुस की ध्वनि होती है।

उसरहा—उसरही माटी वाला खेत उसरहा कहलाता है। रेह मिले रहने के कारण इसकी मिट्टी चिकनी होती है और थोड़ी वर्षा से ही खेत चिक्कन (चिकना) हो जाता है।

स्थिति के आधार पर :

५. गोंइड़, गोंयड़ या गोंएड़ का खेत—गाँव के समीपवर्त्ती स्थान को गोंइड़ गोंयड़ या गोंएड़ और समीपवर्त्ती खेत को गोंइड़, गोंयड़ या गोंएड़ का खेत कहते हैं। यह खेत हर प्रकार से अच्छा होता है। आबादी के आरी-पास (निकट) होने के कारण यह गाँव का निकार (शौच का स्थान) होता है। अतः इसमें खाद की कमी तो होती नहीं, इसकी देख-रेख भी भली-भाँति होती है।

सिवाने का खेत—गाँव की सीमा पर स्थित खेत को सिवान या सिवाने का खेत कहते हैं।

पलई का खेत—गाँव से दूर के खेत को पलई का खेत कहते हैं। ऐसे खेत की मरम्मत बहुत कम हो सकती है। अतः इसमें उपज अच्छी नहीं होती है।

डाँड़े का खेत—दूर का खेत डाँड़े का खेत कहलाता है। डाँड़ शब्द मेंड़ के साथ मेड़-डाँड़ के रूप मे खेत की विभाजक मेंड़ के अर्थ मे भी प्रयुक्त होता है।

टाँड़े का खेत—गाँव से बहुत दूरवाले खेत को टाँड़े का खेत कहते हैं। साधारणतः टाँड़ शब्द लम्बे-चौड़े मैदान के लिए प्रयोग मे आता है।

पाही का खेत—असली मकान से दूर ठहरने के स्थान को पाही कहते हैं और वहाँ के खेत को पाही का खेत कहते हैं।

उपरवारे या ऊँचासे का खेत—जो खेत ऊँचाई पर होता है उसको उपरवारे या ऊँचासे का खेत कहते हैं।

खलारे या खलपटे का खेत—खलार (नीची जमीन) मे स्थित खेत को खलारे या खलपटे का खेत कहते हैं।

डिहवा का खेत—डीह (ढहे हुए मकान) पर जो खेत बना होता है, उसे डिहवा का खेत कहते हैं। इसमे जोन्हरी और अरहर की पैदावार अच्छी होती है।

कोटे या कोटिया का खेत—पुरानी राजधानी के स्थान को कोट कहते हैं। यह ऊँची जगह पर बनता था। उजड़े हुए कोट पर बने हुए खेत को कोटे या कोटिया का खेत कहते हैं।

भिटवा का खेत—भीटा (ऊँचा स्थान) के आस-पास के खेत को भिटवा का खेत कहते हैं।

आ का र के आ धा र प र:

६. कोलई, कोलवा—खेत के टुकड़ों को कहते हैं। कोलई छोटे तथा कोलवा बड़े टुकड़े के लिए व्यवहृत होता है।

एक चक—जब कई बड़े खेत एक जगह होते हैं, तब उनके समूह को एक चक कहते हैं।

पटिया—ऐसे खेत को कहते हैं जो चौड़ाई की अपेक्षा अधिक लम्बा होता है।

द शा के आ धा र प र:

७. ठिकरहवा खेत—जिस खेत में ठिकरा (खपड़ा) अधिक मिलता है उसे ठिकरहवा खेत कहते हैं।

कँकरहवा खेत—जिस खेत में कंकड़ अधिक निकलता है, उसे कँकरहवा खेत कहते हैं।

ढेलार खेत—जो खेत भली भाँति जोता-हेंगाया न गया हो और जिसमें ढेले हों, उसे ढेलार या ढेलगर खेत कहते हैं।

चवनिहा खेत—जिस खेत में चवन (कंकड़ की चट्टान) हो उसे चवनिहा खेत कहते हैं।

मरैलवा खेत—जिस खेत को किसी पेड़ की छाँही मारती है और छाँही के कारण पैदावार कम होती है उसे मरैलवा (मरा हुआ) कहते हैं। छाँही और पेड़ की घाँध (गर्मी) से खेत की नमी सूख जाती है।

कमायल खेत—जो खेत खाद-पाँस से भली भाँति कमाया हुआ होता है उसे कमायल खेत कहते हैं।

जबर या बरियार खेत—जिस खेत में उपज अच्छी होती है उसे जबर या बरियार खेत कहते हैं।

हलुक, पातर या दूबर खेत—जो खेत कमजोर हो, जिसकी मरम्मत न होती हो तथा जिसमें पैदावार कम होती हो उसे हलुक, पातर या दूबर खेत कहते हैं।

अफार खेत—बिना जोते हुए खेत को कहते हैं।

चनवागर खेत—ऐसे खेत को कहते हैं जिसमें कहीं चनवागर माटी पड़ गई हो। ऐसे खेत में पानी शीघ्र सूख जाता है।

थलगर खेत—ऐसे खेत को कहते हैं जिसमें पानी भली-भाँति रुकता हो।

परती खेत—ऐसे खेत को कहते हैं जो जोता-बोया न जाता हो।

परतिया या परुइयाँ—ऐसे खेत को कहते हैं जो परती पड़ी हुई जमीन को तोड़कर बनाया गया हो।

नौतोरवा—परती पड़ी हुई जमीन तोड़कर बनाया गया नया खेत नौतोरवा खेत कहलाता है।

चौमासा या पलिहर—ऐसे खेत को कहते हैं जो वर्षा भर—लगभग चार मास—जोता जाता है और तदुपरांत उसमे चैती फसल बोई जाती है।

अठवाँसा—ऐसे खेत को कहते हैं जो आषाढ़ से लेकर माघ तक—लगभग आठ महीना—कमाया जाता है और फिर उसमें ईख बोई जाती है।

फसल के आधार पर :

८. उखाव—खरीफ फसल काट लेने पर जिस खेत को ईख बोने के लिए तैयार करते हैं।

बियास—जिस खेत में कुवारी धान होता है।

कियारी—जिस खेत में केवल अगहनी धान होता है।

कियारा—कियारी के समूह को कहते हैं।

जड़हन—जिस खेत मे जड़हन (अगहनी धान) बोया जाता है।

रोपहँड़—जड़हन धान रोपा जाता है, इसलिए जड़हन के खेत को रोपहँड़ भी कहते हैं।

एक फर्दा खेत—जिस खेत मे वर्ष भर में एक फसल होती है।

दुइ (दो) फर्दा खेत—जिस खेत मे वर्ष भर में दो फसले होती हैं।

बेहनौर—जड़हन के लिए जिस खेत में बेहन डाला जाता है उसे बेहनौर कहते हैं। बेहन उखड़ जाने के बाद भी उस खेत को बेहनौर कहते हैं।

कोइराड़—जिस खेत में साग-तरकारी उत्पन्न की जाती है। कोइरी जाति का साग तरकारी की खेती करना विशेष उद्यम है।

पेड़ी—ईख कट जाने पर उसकी जड़ को पेड़ी या पेड़ा कहते हैं इसी आधार पर खेत को भी पेड़ो कहते हैं। पेड़ी खनकर निकालने को पेड़ी या पेड़ा मारव (मारना) कहते हैं। पेड़ी से ही जब ईख की अगली फसल काटनी होती है तब पेड़ी को खेत में पड़ा रहने देते हैं; इस प्रकार पेड़ी छोड़ देने को पेड़ी या पेड़ा राखव (रखना) कहते हैं। पेड़ी का खेत सब खेतों से मूल्यवान् होता है, इसलिए गृहस्थ इसको निकालना उतना ही पाप समझता है जितना कन्या का; यथा, कहावत है 'पेड़ी औ बेटी न निकारे का।' यहीं तक नहीं, कहते हैं, 'पेड़ी निकारे रोगी होइ बेटी निकारे कोढ़ी होइ' अर्थात् पेड़ी बेच देने पर मनुष्य रोगी हो जाता है और बेटी निकालने पर कोढ़ी। किसान को पेड़ी पर इतना गर्व होता है कि वह किसी साधारण व्यक्ति से झगड़ा होने पर कह बैठता है, 'का तू हमार पेड़ी निकार लेब ?' अर्थात् क्या तुम हमारी पेड़ी छीन लोगे ? इसी प्रकार जब कोई किसान किसी की धमकी-पटकी सुनकर क्रोधित हो उठता है तब कहता है, 'जा हमार पेड़ी निकार ल अउर का ?' अर्थात् जाइये हमारा पेड़ी का खेत निकाल

लीजिए और इससे अधिक क्या ? इसीलिए किसान जब किसी की पेड़ी जोतता है तब उससे दबकर रहता है। जिससे वह दबा नहीं रहता उसके सामने तो वह सिर ऊँचा करके कह उठता है 'का तोहार पेड़ी जोते हई ?' अर्थात् क्या तुम्हारी पेड़ी जोते हुए हूँ ?

कटी हुई फसल के आधार पर:

६. जरी—खरीफ के खेतों को फसल कट जाने पर जरी का खेत कहते हैं। फसल कटने पर खेतों में जर (जड़) रह जाती है इसीलिए यह नाम है। जिस खेत से जो वस्तु कटती है उस खेत को उस वस्तु की जरी कहते हैं यथा सनई की जरी, बजरा की जरी, सावाँ की जरी आदि।

धनखर या धनहा—जिस खेत से धान की फसल कटी हो।

सनइहा या सनइहटा—जिस खेत से सनई कटी हो।

सौंहटा—जिस खेत से सावाँ कटा हो।

जोन्हरिहा—जिस खेत से जोन्हरी कटी हो।

बजड़हा—जिस खेत से बजड़ा कटा हो।

चरिहटा—जब बजड़ी चारा के लिए घनी बोई जाती है तब उसे चरी कहते हैं, और खेत को चरिहटा कहते हैं।

केरौटा—जिस खेत से केराव (मटर) काटी गई हो।

जवनार—जिस खेत से जौ कटा हो।

चनहटा या चनहा—जिस खेत से चना कटा हो।

खुँटिहन—अरहर कट जाने पर उसकी जड़ खूँटी के रूप में रह जाती है, इसीलिए अरहर कटे खेत को खुँटिहन कहते हैं।

२

खेती की साधारण बातें

खोदना

खोदने का औजार :

१०. फरसा या फरुहा—इसके दो भेद हैं :

(क) देसी—इसे देहाती लोहार बनाते हैं।

(ख) विलायती—इसे तबलिहा, तवलिअहवा या दवलिअहवा भी कहते हैं। यह कारखानो से बनकर आता है। इसका लोहा ढला हुआ होता है। इसका रूप डुग्गी वाले तबले के सामने वाले भाग से मिलता है। इसीलिए इसे तबलिहा कहते हैं। यह देशी फरसे से हलुक (हलका) होता है।

फरसे के विभिन्न अंग :

(क) पासा—फरसे के पिछले भाग में जो सूराखदार गोला भाग होता है।

(ख) बेंट—यह वह लकड़ी है जो पासा में डाली जाती है और जिसे पकड़ कर फरसा चलाया जाता है। तबलिहा का बेंट टेढ़ (टेढ़ा) होता है जिससे यह अधिक लहता या बहता (काम देता) है। इस प्रकार लहने वाले फरसे को लहाँकू कहते हैं।

(ग) पत्तर—पासा से लगा हुआ जो लोहे का चद्दर होता है उसे पत्तर कहते हैं। यह पासे के पास लगभग सात-आठ इञ्च और किनारे पर चार-पाँच इञ्च चौड़ा होता है। तबलिहा का पत्तर लगभग सब जगह एक सा होता है।

(घ) धार—पत्तर के किनारे के पतले हिस्से को धार कहते हैं। देसी फरुहा की धार तबलिहा से लंबी होती है जिससे वह गहरा घाव करती है। फरसा एक बार में जितनी मिट्टी उठाता है उसे एक छेव या छेही कहते हैं।

खेत खनना :

११. खेती को सफल बनाने के लिये यह आवश्यक है कि खेत प्रत्येक दूसरे-तीसरे वर्ष खन (खोद) दिया जाया करे। खनाई न होने से खेत की मिट्टी कड़ी पड़

जाती है। खेत के भीतरी भाग की मिट्टी की सतह जिसे तावा कहते हैं खेत न खनने से कुछ दिनों में बहुत कड़ी हो जाती है, जिससे हल चलने में कठिनाई होती है। तावा के इस प्रभाव को तावा मारब (मारना) कहते हैं। खेत खनने पर जो नीचे की मिट्टी ऊपर आ जाती है उसे अरइठ कहते हैं। यह मिट्टी खेती के लिए तब तक उपयुक्त नहीं होती जब तक धूप और पानी पाकर यह ठीक न हो जाय। पानी खाने से अरइठ का दोष नष्ट हो जाता है। पानी खाने को ओयट, ओवँट या वैट खाब (खाना) कहते हैं। ओयट खाने से खनी हुई मिट्टी गल जाती है।

साधारणतः किसान भदवारा (भादों की वर्षा) में खेत खनता है। वर्षा समाप्त होते ही वह उसे जोत और हेंगाकर चैती फसल बोने के योग्य बना लेता है। जो खेत देर में खने जाते हैं और बोने के समय तक पक (तैयार) नहीं जाते उनको अच्छा नहीं माना जाता। ऐसे खेत पर अरइठ का प्रभाव बना रह जाता है इसे अरइठ मनाइब (मनाना) कहते हैं। खरीफ फसल काट लेने के बाद भी खेत खनते हैं। माघ में खने खेत को मघौटल कहते हैं। माघ में खेत को धूप, वर्षा तथा ओस सब कुछ मिलता है, इसलिए माघ का खना हुआ खेत अच्छा माना जाता है। यह महीना किसान के लिए बैठक का होता है जिससे खनाई के काम में सुविधा होती है।

आ रि झा र ना :

१२. खेत खनते समय उसकी मेंड़ को काट-छाँट कर ठीक करते हैं। इस प्रकार मेंड़ का किनारा सुडौल हो जाता है। इसे आरि झारब (झारना) या आरि मारब (मारना) कहते हैं। मेड़ के अगल-बगल की जमीन को मेंड़ौरी कहते हैं। जो खेत खने नहीं जाते उनकी आरि लगातार जोताई तथा हेंगाई से ऊँची हो जाती है; ऐसे खेत की आरि झारने का कार्य जोताई के समय होता है। जोताई समाप्त करते समय हर को मेंड़ की बगल-बगल दबाकर घुमाते हैं जिससे मेंड़ सुडौल हो जाती है। इस प्रकार मेंड़ की बगल जो नाली बनती है और उससे जो मिट्टी बाहर आती है उसे खेत के अंदर की ओर फेंक दिया जाता है। इस क्रिया को आरि फेंकब (फेंकना) कहते हैं।

छँ ट नी मा र ना :

१३. खेत खनने से उसकी घास नष्ट हो जाती है। जो खेत नहीं खने जाते उनकी घास को जोताई के पूर्व खनकर निकाल देते हैं। यह कार्य बहुधा वर्षा के पूर्व होता है। इसे छँटनी मारब (मारना) कहते हैं।

आरि झारने तथा छँटनी मारने के महत्त्व के संबंध में एक उक्ति है—

"आरि मेड़ सुडौल करि रहै न पावै दूब,
सबसे पहले बोइये खेत जोत के खूब।"

अर्थात् खेत की मेंड़ तथा आरि को ठीक करके जब खेत में दूब न रहे और खेत खूब जोता गया हो तब बोना चाहिए।

जोतना

जो त ने का औ जा र :

१४. जोताई के लिए हर (हल) का प्रयोग होता है। हल के नीचे लिखे मुख्य भाग होते हैं। (१) हर (२) परिहथ (३) हरिस (४) नाधा (५) जूआ।

ह र :

हर—उस लकड़ी को कहते हैं जिसमें फार लगा होता है। जोताई का कार्य इसी के सहारे होता है। इसका पिछला भाग मोटा और अगला पतला होता है। यह बबूल की लकड़ी का अच्छा होता है।

टोड़ा—यह हर का अगला पतला भाग है। इसी पर फार बैठाया जाता है। टोड़ा के अगल-बगल की लकड़ी खिया (घिस) जाने पर उसे मोटा करने के लिए दोनों ओर लकडी का जोड़ लगा देते हैं। इन लकड़ियों को कानी कहते हैं।

माथ, मूँड़ या मूँड़ा—हर के पिछले मोटे भाग का यह नाम है। यह जितना ही मोटा होगा उतना ही चौड़ा कूँड़ बनेगा। हर से बनाए हुए निशान को कूँड़ कहते हैं।

फार—यह एक या डेढ हाथ लम्बा चौपहल (चौकोर) दो अंगुल मोटा लोहे का बनता है। इसके धार वाले भाग को पीट कर नुकीला कर देते हैं। यह भाग टोड़े पर बैठाया जाता है। टोड़े पर फार अच्छी तरह बैठा रहे इस उद्देश्य से कुछ लोहे की कीलों को टोडा में धँसा कर फार के ऊपर से मोड देते हैं। इन्हें करुवार या करुवारी कहते हैं।

पाटा—हर मे जहाँ हरिस डाली जाती है वहाँ पर उसका कोण ठीक करने के लिये एक लकड़ी का टुकड़ा हर के पिछले भाग में ठोंक देते हैं यही पाटा है।

पाती—पाटा के बिलकुल विपरीत हरिस की दूसरी ओर भी एक चैली (पतली लकड़ी) ठोंक देते हैं। यह भी हरिस और हर के कोण को ठीक रखने में सहायक होती है। इसे ही पाती कहते हैं।

तरइली—यह लकड़ी हरिस को कसने के लिये हर के तरे (नीचे) से ठोंकी जाती है।

ह र के भे द :

१५. (क) नौहरा या नवहरा—यह नया हल होता है। इसका हर तीन-चार बीता लम्बा होता है। इससे गहरी जोताई होती है। ईख की खेती के लिये यह बहुत आवश्यक है।

(ख) अधहरा—यह नौहरा का छोटा रूप है। साधारण जोताई में यह काम आता है।

(ग) खुँटहरा—यह अधहरा से भी घिसा हुआ और छोटा रूप है। यह लगभग डेढ़ और दो बीता लम्बा होता है। फसल बोने के समय इसी का प्रयोग होता है। इसी हर से की गयी बोआई को खुँटहरा की बोआई कहते हैं। खेत [illegible] ंभिक जोताई भी इसी से होती है क्योंकि इस समय खेत की मिट्टी कड़ी होती है और दूसरे हर पूरा काम नहीं दे सकते।

(घ) दुविहरा या दुवेहरा—यह सबसे मजबूत हर है क्योंकि इसमें जोड़ कम होता है। इसमें हर और परिहथ एक ही लकड़ी में बने रहते हैं। दूसरे हरों में ये लकड़ियाँ अलग-अलग लकड़ी की बनी होती हैं। अफार (बिना जोता खेत) और पेड़ी को जोतने के लिये यह सब से अच्छा होता है।

परिहथ :

१६. इसके ऊपरी भाग को हरवाह अपनी मूठी से पकड़ता है। इसे मुठिया कहते हैं। परिहथ का निचला भाग इस प्रकार टेढ़ा रहता है कि वह हर से जोड़ा जा सके। यह हर के मूँड़ के नीचे रहकर उसके आश्रय का काम देता है। इन दोनों को जोड़ने का कार्य हरिस से होता है। हरिस के निचले भाग में एक चौकोर छेद बना रहता है इसी में एक लकड़ी की गुल्ली डाल देते हैं जो परिहथ को नीचे खिसकने से रोकती है। परिहथ को परिहथी, परेहथी या परेथी भी कहते हैं।

हरिस :

१७. यह पाँच छः हाथ लंबी दो अंगुल मोटी तथा चार-पाँच अंगुल चौड़ी लकड़ी होती है। इसका एक भाग हर में होता है, दूसरा भाग जुआठ से सम्बन्धित रहता है। हरिस लगाते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि उसकी लकड़ी पट्ट न होकर खड़ी हो ताकि मोटाईवाला भाग ऊपर रहे। इस मोटाईवाले भाग के निचले भाग में हरिस लटकाने के लिए थोड़ी-थोड़ी दूर पर आवश्यकतानुसार दो या तीन खाहीं या खाड़ी (गड्ढा) कटी रहती है।

नाधा :

१८. यह एक रस्सी है जो हरिस और जुआठ को सम्बन्धित करती है; हरिस इसी पर लटकता है। हर को अबाह करने के लिये इसका उपयोग होता है। हरिस की ऊपरी खाड़ी में नाधा रहने से हर अबाह होता है अर्थात् हर गहराई में धँसता है। नीचे की खाड़ी में नाधा रहने से हर सेव चलता है अर्थात् हर गहराई में नहीं धँसता है। बैलों की ऊँचाई-नीचाई, उनकी शक्ति तथा अपनी आवश्यकता सभी बातों पर ध्यान देते हुए हर का नाधा ठीक किया जाता है। हर खूब बहे (चले) तभी नाधा ठीक समझना चाहिए।

जूआ :

१६. यह बैलों की गर्दन में डालने के लिये होता है। यह आम, कटहल आदि हलकी लकड़ी का बनता है। इसका आकार चौकोर होता है। ऊपर की लकड़ी जो बैलों के कान्ह (कंधा) पर रहती है उपल्ला कहलाती है। तरे (नीचे) की लकड़ी को, जो उपल्ला के समानांतर होती है, तरल्ला, तरेला, तरेली, तरइली या तरेहटा कहते हैं। तरल्ला बाँस का होता है। उपल्ला के बीचोबीच थोड़ा सा उठा हुआ भाग होता है जिसे महदेउवा कहते हैं। इसी पर से नाधा डाला जाता है। महदेउवा के दोनों बगल कुछ हट कर उपल्ला मे सूराख होते हैं। इसी की सीध मे तरल्ले मे भी सूराख होते हैं। इन सूराखों में लकडियाँ डाल दी जाती हैं जिन्हें पचार कहते हैं। पचार उपल्ला और तरल्ला दोनों लकड़ियो को सदा समानांतर दूरी पर स्थित रखते हैं। पचार के लिए दो बाँस की कइन लेकर उसके किनारों को आवश्यकतानुसार छीलकर पतला कर देते हैं ताकि वे उपल्ला और तरल्ला की सूराखों में जा सके। उपल्ला और तरल्ला बाहर की ओर न निकल जायँ इसके लिए उन्हे आपस में, पचार पर से, रस्सी से बाँध देते है। इन रस्सियो को जोधन कहते हैं। इनको कसने और ढीला करने पर जुए का घेरा सकरा और चौड़ा होता है। तरल्ला और उपल्ला के किनारों पर भी सूराख होते हैं इनमे भी लकडियाँ डाली जाती हैं। ये लकड़ियाँ उपल्ला की सूराख में से होकर तरल्ला की सूराख में से निकलती हैं। इन्हें सइल कहते हैं। इस प्रकार बैलो की गरदन के लिए एक घेरा बन जाता है जिसे माला कहते हैं। जब बैल बीचो-बीच माला में न चलकर पचार या सइल से हिरिक (सट) कर चलता है तब हरवाह को हाँकने मे कठिनाई होती है, लेकिन कुछ बैलो की ऐसी आदत पड़ जाती है। जूआ को जुआ, जुआठ या जुआठा भी कहते हैं।

हर नाधना :

२०. बैलो के गले में जुआठा डालने को जोखरब (जोखरना) कहते हैं। बैलों को जोखर कर खेत में ले जाते हैं और वहाँ जोताई आरंभ करने के पूर्व हरिस और नाधा को संबधित करते हैं जिसे हर नाधब (हर नाधना) कहते हैं। ऐसा करने पर हरिस नाधा के बल पर झूलता रहता है। बैल हर को इसी नाधा के सहारे खींचता है। नाधा की रस्सी पर बहुत जोर पड़ता है इसलिए इसे बहुत मजबूत होनी चाहिए। नाधा की रस्सी महदेउवा के दोनों ओर रहने पर दोनों बैलों पर बराबर जोर पडता है। जब कभी एक ही बैल पर जोर देना इष्ट होता है तब नाधा को एक ही ओर कर दिया जाता है। इसे एक नद्धी नाधा कहते हैं। नाधा को महदेउवा के दोनों ओर करने को गंगा-जमुनी करब (करना) कहते हैं। जोताई समाप्त करने पर जब नाधा खोला जाता है तब उसे नाधा छटकाइब (छटकाना) कहते हैं। बैलों को जुआठ से अलग करने को बैल-

छटकाइब (छटकाना) कहते हैं; सइल निकालने से बैल जुआठ से अलग हो जाते हैं इसलिए इसे सइल छटकाइब (छटकाना) भी कहते हैं।

हरवाह की सांकेतिक बोली :

२१. हरवाह (हर जोतने वाला) परिहथ की मुठिया को बाएँ हाथ से पकड़कर हर जोतना आरंभ करता है। उसके दाहिने हाथ में बैलों को हाँकने के लिए एक छोटा डंडा होता है जिसे पैना, पटकन या हरजोत्ता कहते हैं। इसके एक सिरे पर बैलों को मारने के लिए बहुधा पतली रस्सियाँ या चमड़े के तीन-चार तार बँधे रहते हैं। हरवाह बैलों को हाँकते समय उनके संकेत के लिए नीचे लिखी बोली बोलता है :—

वह, ना, आँ, नाँ—वह इन्हें बैलों को चलाने के लिए बोलता है।

होर—वह इसे बैलों को रोकने के लिए प्रयोग में लाता है।

बॉव, बाँ—वह इसे बाँए बैल को संबोधन करने के लिए प्रयोग करता है।

दाहिन, या दहिना—वह इसे दाहिने बैल को संबोधन के लिये प्रयोग करता है।

नउ-नउ—वह इसे बैलों को दाएँ या बाएँ झुकाने के लिए प्रयोग में लाता है।

पइलो-पइलो—इसका प्रयोग बैलों को खेत के माथ तक ले जाने के लिए होता है।

हराइ :

२२. जोतने के लिए पूरे खेत को एक ही बार में नहीं फानते (शुरू करते) हैं बल्कि सुविधानुसार उसे कई टुकड़ों में करके जोतते हैं। जोताई के लिए गोले घेरे बनाये जाते हैं चौकोर नहीं, क्योंकि बैलों को गोलाई में घूमने में सुविधा होती है। एक बार में खेत का जितना भाग जोतने के लिए घेरा जाता है उतने को एक हराइ कहते हैं और इस क्रिया को हराई फानब (फानना = शुरू करना) कहते हैं। एक हराई जब समाप्त होने में कुछ बाकी रह जाती है तभी दूसरी हराई फान ली जाती है। ऐसा करने से जोताई में आसानी पड़ती है। पहली हराई के बिना जोते हुए भाग को आँतर कहते हैं। दूसरी हराई जोतते समय इस आँतर को भी ले लेते हैं।

जोताई सम्बन्धी विशेष बातें :

२३. हर से खेत में जो निशान बनता है उसे कूँड़ कहते हैं। किन्तु ईख और तीसी के कूँड़ को मूहि कहते हैं। मूहि कूँड़ की अपेक्षा कुछ गहरी होती है। सिंचाई के लिए जो चौड़ी कूँड़ बनाई जाती है उसे बरहा कहते हैं। चौड़े बरहे को दहला कहते हैं।

हर एक बार में जितना घूमता है उसे फेरा कहते हैं। जोताई के समय हर

को खेत के कोनों तक ले जाकर घुमाने में कठिनाई होती है। अतः कोन के स्थान पर पहुँचने के पहले ही हर को मोड़ देते हैं। इस तरह कोन का कुछ भाग छूट जाता है। इसे कोन काटब (काटना) कहते हैं। इन कोनों को बाद में कुदार से गोड़कर ठीक करते हैं जिसे कोन घींचब (घींचना) कहते हैं।

खेत जोतते समय हराई मे भी इसी प्रकार कोन काटना पड़ता है इस छूटे हुए स्थान को कोन्छो कहते हैं। इसे भी कुदार से गोड़कर ठीक करते हैं। कोन्छी छोड़ने से खेत की जोताई जल्दी समाप्त होती है। जोताई समाप्त होने को खेत गिरब (गिरना) कहते हैं।

जोताई करते समय खेत में कहीं-कहीं बिना जोती जमीन छूट जाती है उसे ठेहरी कहते हैं।

वर्षा मे जोतते समय हर मे घास-पात और मिट्टी बझ जाती है इसे लेट कहते हैं। हरवाह परिहथ• उठाकर इसे पैना से छुड़ा देता है जिसे लेट मारब (मारना) कहते हैं।

गहरी जोताई को अवाह तथा छिछली जोताई को सेब कहते हैं। बहुत मामूली जोताई की खेत चिरचिराइब (चिरचिराना) कहते हैं। यह जोताई ऐसे समय होती है जब खेत की मिट्टी बहुत कडी होती है या हलकी जोताई करने की आवश्यकता होती है।

खेत की एक बार की जोताई को एक बाह या सिंव कहते हैं। दो बाह जोते हुए खेत को दुबहल तथा तीन बाह जोते हुए खेत को तिब ल कहते हैं।

बर्षा में खेत की जोताई आरम्भ होती है। पहली वर्षा को लबनरा और पहली जोताई को उठौनी या उठावन कहते हैं। कभी भी वर्षा के बाद जब खेत फिर से जोता जाता है तब पहली जोताई को उठौनी कहते हैं। उठौनी के बाद की दूसरी जोताई को दोखड़ा तथा तीसरी जोताई को तेखड़ा कहते हैं।

खड़े-खड़ (लंबे-लंबे) खेत जोतने के ढंग को खड़िया तथा बेंड़े-बेड़ खेत जोतने के ढंग को बेड़िया कहते हैं। तिरछा या तिरकोन्ना जोतने को कोन करब (करना) कहते हैं। कोन नौहरा से किया जाता है क्योंकि इससे खेत में ठेहरी नहीं छूटती और माटी फाफर (पोली और नरम) हो जाती है।

फसल बोये हुये खेत की भी जोताई होती है इस जोताई को बिदहब (बिदहना) कहते हैं। धान की खेती मे यह क्रिया होती है। ऐसा करने से पैदावार अच्छी होती है। धान के खेत मे जब पानी रहता है उस समय उसे लेव कहते हैं और उस समय की जोताई को लेव मारब (मारना) कहते हैं।

बिना जोते हुये खेत को अफार कहते हैं। जब मिट्टी कची रहने पर ही खेत जोत दिया जाता है तब ऐसे खेत के लिये कहा जाता है कि 'खेत कचट ग'। खेत की नमी नष्ट होने पर कहते हैं, 'खेत ठनक ग'।

हेंगाना

हेंगाने का औजार :

२४. जोताई के पश्चात् खेत को सम करने के लिये हेंगा प्रयोग में आता है। वर्षा में हेंगे का प्रयोग कम होता है। हेंगा पाँच-छः हाथ लंबी छः-सात इंच चौड़ी और चार-पाँच इंच मोटी लकड़ी होती है। खेत हेंगाते समय यह पट्ट अवस्था में रहता है। हेंगा के दोनों किनारों पर खूँटियाँ होती हैं। इन खूँटियों में रस्सी बाँध कर हेंगा को जुआठ के दोनों सैलों के ऊपरी भाग से सम्बन्धित कर देते हैं। इन रस्सियों को बरही कहते हैं। यह लगभग छः-सात हाथ लम्बी होती है। रस्सियाँ बहुत मजबूत होनी चाहिए क्योंकि हेंगाते समय इन्हीं पर जोर पड़ता है।

लकड़ी की कठिनाई से बाँस के हेंगा की प्रथा हो चली है। तीन बराबर बाँसों को एक साथ जोड़कर हेंगा के सदृश बना लेते हैं। बाँस का हेंगा ढेला खूब फोड़ता है लेकिन समतल न होने से यह कूदता चलता है और बैलों को अखरता (कष्ट प्रद होता) है।

जिस हेंगा में दो बैल लगते हैं उसे दुइबैलिया तथा जिसमें चार बैल लगते हैं उसे चरबैलिया कहते हैं। दुइबैलिया में दोनों ओर की बरही जुआठ के दोनों किनारों पर बाँधी जाती है। चरबैलिया में दो जुआठ होते हैं इसलिए इसमें एक बरही एक जुआठ के महदेउवा के पास और दूसरी दूसरे जुआठ के महदेउवा के पास बाँधी जाती है।

हेंगाई सम्बन्धी विशेष बातें :

२५. हेंगा पर चढ़कर हेंगवाही या हेंगाई की जाती है। हेंगाने वाले को हेंगवाह (हेंगवैया) या हेंगवइया कहते हैं। वह बरही को अपने हाथ से पकड़े रहता है। जब आदमी हेंगा पर नहीं चढ़ा रहता तब ऐसे हेंगा को छुच्छ (छूँछ) हेंगा कहते हैं और इस प्रकार की हेंगवाही को छुच्छ (छूँछ) हेंगवाही कहते हैं। हेंगाते समय हेंगा के सामने मिट्टी एकत्र होने को हेंगा भरब (भरना) कहते हैं, ऐसी दशा में हेंगा को कुदार से ठोक देते हैं जिससे हेंगा आगे खसक जाता है और मिट्टी हेंगा के नीचे दब जाती है। एक बार में जितनी जमीन हेंगाई जाती है उसे पहँटा या पलटा कहते हैं। एक पहँटे को दूसरे से मिला होना चाहिए। जब एक पहँटा दूसरे पहँटे से सटकर नहीं होता और किसी ओर जमीन छूटने लगती है तो उसे पहँटा छूटब (छूटना) कहते हैं। ऐसा उस समय होता है जब हेंगा कुछ तिरछा हो जाता है। ऐसी दशा में जिधर पहँटा छूट रहा हो उसी ओर हेंगे का रुझान करना पड़ता है। हेंगा का रुझान जिधर करना होता है उस ओर के लात (पैर) को हेंगा पर रक्खा रहने देते हैं

और दूसरा पैर हटा लेते हैं। इसे एक लत्ती मारब या लत्ती मारब (मारना) कहते हैं।

हेंगाई का नियम यह है कि खड़िया जुताई पर बेंड़िया हेंगाई और बेंड़िया जुताई पर खड़िया हेंगाई होनी चाहिए अर्थात् जोतने के विरुद्ध दिशा में हेंगाई होनी चाहिए। जब हेंगा लगता अर्थात् बराबर मिट्टी लेता है और पूरा पहँटा हेंगाता है तब खेत जल्दी गिरता (समाप्त होता) है; जब हेंगा बराबर नहीं लगता तब हेंगाई में अधिक समय लगता है।

फसल बोने पर अंकुर निकलने के पूर्व यदि वर्षा हो जाय तब खेत में पोगरी (पपड़ी) पड़ जाती है जिससे अंकुर के बाहर निकलने में कठिनाई होती है। इस समय पपडी तोड़ने के लिये किसान एक विशेष प्रकार का हेंगा बनाते हैं—एक बाँस में छोटी-छोटी खूँटियाँ गाड़ कर उसीसे खेत हेंगाते हैं, इससे पपड़ी टूट जाती है।

सींचना

२६. सिंचाई के निम्न साधन प्रचलित हैं—(१) बेंड़ी (२) ढेंकुर या ढेकुल (३) चरखी (४) पुर या पुरवट (५) घर्रा (६) रहँट।

बेंड़ी :

ताल. पोखरा या गड्ढा के पानी को बेड़ी द्वारा उबह करके सिंचाई की जाती है। बेड़ी बाँस की होती है। इसे धरिकार—एक जाति विशेष—बनाते हैं। यह बहुत कुछ दौरी (बाँस का एक बरतन) के आकार की होती है, अंतर केवल यह है कि दौरी जमीन पर रखने से सीधी बैठ जाती है पर बेंड़ी एक ओर झुक जाती है क्योंकि इसकी पेंदी सम नहीं होती है। दौरी की भाँति इसकी बारी पर भी मेखड़ा या मेड़रा बना रहता है मेड़रा के पास चार स्थानों पर. बराबर दूरी पर, छेद कर के रस्सी का चुल्ला बनाकर लगा देते हैं जिसे नाथा कहते हैं। बेड़ी चलाने के लिये दो रस्सियाँ होती हैं जिन्हें दवन कहते हैं, ये रस्सियाँ पेंदी पर होती हुई आमने-सामने की नाथियों में से निकाली जाती हैं। दवन छोटी पड़ जाने पर जो रस्सी जोड़ी जाती है उसे गोडा कहते हैं। दवन के सिरों पर उन्हें पकड़ने के लिये छोटी लकड़ी बँधी रहती है जिसे गुल्ला कहते हैं।

बेंड़ी को दो आदमी आमने-सामने खड़े होकर चलाते हैं। जिस स्थान पर खड़े होकर बेंड़ी चलाई जाती है उसे पौढ़ा कहते हैं। सिंचाई की सुविधा की दृष्टि से पौढ़ा कुछ खाल (नीचा) रक्खा जाता है। बेंड़ी के पानी के लिये जो गड्ढा तैयार किया जाता है उसे चोंदर कहते हैं। बेंड़ी का पानी जहाँ गिराया जाता है उसे चौंढ़ा कहते हैं। ताल या गड्ढा जहाँ से पानी लेना होता है उस

जगह से बोदर तक जो नाली बनाई जाती है उसे गोल कहते हैं। जब गोल में कम पानी आने लगता है तब उसकी मिट्टी निकालकर उसे कुछ और गहरा कर देते हैं, इस क्रिया को गोल झारब (झारना) कहते हैं। बोदर में जब पानी कम पड़ने लगता है और बेंड़ी बोरने के लिये बेंड़ी चलाने वाले को बहुत झुकना पड़ता है तब एक छोटी बोदर और बनाते हैं जिसे ठेउँका या ठेउँकी कहते हैं। गोल से पानी ठेउँका मे आता है और ठेउँका से बेड़ी द्वारा बोदर में ले आया जाता है। एक दिन मे एक बेंड़ी से जितना पानी उबहा जाता है उसे एक पइन कहते हैं। जितने दिन पानी चलता है उतने पइन होते हैं। पानी जाने वाले रास्ते को भी पइन कहते हैं।

ढेंकुर या ढेंकुल :

२७. ढेकुर की सिंचाई कुओं से होती है। ढेंकुर के निम्न अंग हैं—

(अ) थाम्ह या थाम (आ) ढेंकुर या बल्ला (इ) कूँड़ (ई) बरहा।

थाम्ह—कुएँ के पास दो कछादार या कन्नादार लकड़ियाँ आमने-सामने गाड़ी जाती है। उन्हे थाम्ह कहते हैं। दो थाम्ह गाड़ने के बजाय एक ही थाम्ह से काम चल सकता है लेकिन थाम्ह मजबूत हो और उसके कंछो के बीच मे यथेष्ट अन्तर हो। बल्ला इन्हीं थाम्हों के सहारे रहता है।

२८. बल्ला—इसे बाँस या ढेंकुर भी कहते हैं। ढेंकुर का यह मुख्य भाग है। पानी के लिये कुएँ की ओर यही झुकाया जाताहै। कुएँ की दूरी तक पहुँचने के लिये जितना बल्ला आवश्यक है उतने भाग को छोड़ कर बल्ले मे एक सूराख करके एक इतनी बड़ी लकड़ी डालते हैं जो थाम्हो के दोनों कछो तक आसानी से पहुँच सके। यह लकड़ी घुल्ला या घुर्रा कही जाती है। इसी के सहारे बल्ला नीचे-ऊपर आता-जाता है। इसके दोनो किनारे थामो या थाम्हो के कंछो पर रक्खे रहते हैं अथवा थाम्हो मे सूराख करके बैठा दिये जाते हैं। बल्ले में घुल्ला डालने पर उसके फटने का डर होता है अतः बहुधा घुल्ले को पहले एक दूसरी लकड़ी मे सूराख करके या छेद करके ठोंक देते है। इस लकड़ी को पिढ़ई या बिनुली कहते हैं। इसी पिढ़ई को फिर बल्ले में बाँध देते है।

बल्ले के पिछले भाग को भारी बनाना आवश्यक है ताकि बल्ला कुएँ के ऊपर एक उझुक्के (झटके) या एक फलाँस मे चला आया करे। बल्ले को भारी बनाने के लिये उसके पिछले भाग में सरपत या पुअरा की ऐंठी हुई रस्सी लपेट देते है। इस रस्सी को गूर्ही या जोइना कहते हैं। और फिर इसी रस्सी पर मिट्टी छोप देते है जिसे लेदी कहते हैं।

२६. कूँड़—यह लोहे और मिट्टी दोनों की बनती है। मिट्टी की कूँड़ मे चुल्ला नहीं होता। लोहे की कूँड़ सादी और चुल्ले सहित, दोनो ढंग की बनती है। जैसे नारियल का निचला भाग कुछ नोकीला होता है और जमीन पर रखने से

वह ढुलक जाता है उसी प्रकार कूँड़ भी जमीन पर बराबर नही बैठती। कूँड का ऊपरी भाग ऐसा होता है जैसा नारियल को आधे पर काट देने से होता है। कूँड को बरहा से संबधित करने के लिये एक गुल्ला या घुल्ला (छोटी लकड़ी) चाहिए। जब कूँड़ मे चुल्ले रहते हैं तब तो उन्हीं मे गुल्ला बाँध देते है अन्यथा गुल्ले को कूँड़ की मुँह पर रस्सी से बाँधते है। साधारणतः गूहीं रस्सी कूँड़ के मुँह पर बाँधी जाती है। इस बाँधने की क्रिया को कूँड़ गूहब (गूहना) कहते है। कूँड़ पेंदा की हलकी और मुँह की भारी होनी चाहिए, ऐसा होने से कूँड़ के मुँह मे सुविधा से पानी चला जाता है। यदि कूँड़ का पेंदा भारी होगा और मुँह हलका तो कूँड़ पानी पर तैरने लगेगी और वह झटका देने पर ही डूबेगी। ऐसी दशा मे कूँड़ में पानी देर मे भरेगा।

कूँड़ का केन्द्र भी ठीक होना चाहिए। ऐसा न होने से ढेकुर ठीक से नही बह-ा (चलता), वह हिलता-जुलता है। इस दोष को अवड़ब (अवहना) कहते हैं और ऐसी ढेकुर को उछाढ़ि कहते हैं।

ढेकुर का गुल्ला जब ठीक नहीं रहता तब ढेंकुर थाम्ह से सटकर चलता है जिसे जघा लगब (लगना) कहते हैं।

३०. बरहा या बरेन—यह रस्सी एक ओर ढेकुर मे बाँधी जाती है और दूसरी ओर इसमें कूँड़ बंधी रहती है। यह लगभग सोलह हाथ लंबी होती है। बरहा के दोनों सिरों पर पतली रस्सियाँ रहती हैं जिन्हे छार कहते हैं। कुएँ की गहराई से जितना बरहा अधिक होता है उसे बल्ले मे लपेट देते हैं।

३१. ढेकुर चलाने के लिए कुएँ के आरपार एक लकड़ी रखी जाती है जिसे सरदर कहते हैं। लकडी न होने पर तीन बाँसो को जोडकर हेगा की तरह बना लेते हैं, और उसी से सरदर का काम लेते हैं। ढेकुर चलाने वाला सरदर पर खड़ा होकर ढेकुर चलाता है। कुएँ के मुँह की बारी को लिलारी भी कहते हैं। सरपत, पुआरा या ईख की पत्ती को चोटी की भाँति बनाकर लिलारी पर रखते हैं इसे चाटा कहते हैं। इसके रखने से कूँड़ मे चोट नहीं लगती और लिलारी की रक्षा होती है। इसके अतिरिक्त लिलारी ऊँची भी हो जाती है। बल्ला झुकाकर पानी गिराने को बल्ला तोरब (तोरना) कहते हैं। कूँड़ से पानी गिरने को कूँड़ टूटब (टूटना) कहते है। जिस स्थान पर पानी गिराते हैं उसे थोड़ा घेर लेते हैं ताकि पानी बाहर न जाय। इस स्थान को चौंड़ा कहते है। इसी में से नारी (नाली) द्वारा पानी खेत में जाता है।

३२. ढकुचा—ढेंकुर के छोटे रूप को ढेकुचा कहते हैं। इसका प्रयोग कुएँ पर साधारणत. नहीं होता। इसे नदी, नारा या ताल से सिंचाई करने में, जहाँ बेड़ी चलाने का दाँव (अवसर) नहीं होता, प्रयोग में ले आते हैं। किसी नीचे स्थान से जब पानी ऊपर चढ़ाना होता है तब भी इसका प्रयोग होता है।

च र खी :

३३. चरखी के लिए भी थाम्ह, कूँड़ तथा बरहा चाहिए। चरखी का स्वरूप पतंग की डोरी लपेटने वाले परेते की भाँति होता है। इसे हम एक मोटा और पोला बेलन भी कह सकते हैं। चरखी की धुरी जब लकड़ी की होती है तब इसे डंडा कहते हैं और जब यह लोहे की होती है तब इसे गुर्रा या घुर्रा कहते हैं। परेते की भाँति चरखी के दोनो ओर चक्के होते हैं और इन चक्को पर बाँस के फलठे जड़े रहते हैं। इसी पर से बरहा आता जाता है। चरखी जितनी ही हलकी बनी रहेगी उतना ही चरखी चलाने वाले को सुख मिलेगा, इसीलिए यह भरतू न होकर पोली बनाई जाती है। जितनी ही तेजी से बरहा के साथ चरखी चलेगी उतनी ही तेजी से कूँड आ जा सकेगी।

चरखी के दोनो ओर के चक्कों में सूराख रहते हैं। जिनसे डंडा बाहर निकला है। सूराख गोल होने पर डंडा भी गोल होता है। जब डंडा गोल होता है तब वह स्थिर रहता है और केवल चरखी का चक्का घूमता है। सूराख चौकोर होने पर चरखी का डंडा चक्के में बिलकुल बैठा हुआ होता है और चरखी पूरे डंडे के साथ घूमती है। पहले ढंग की चरखी को साधारणतः डंडादार अथवा घुर्रादार तथा दूसरे ढंग की चरखी को बेलनदार कहते हैं।

कूएँ के दोनो ओर दो-दो थाम्ह गड़े रहते हैं जिनपर एक-एक बाँस रख दिए जाते हैं। एक बाँस चौढ़ा की ओर तथा दूसरा उसके विरुद्ध होता है इन्हीं बाँसो पर चरखी का डंडा रहता है। डंडा एक ही जगह घूमे और इधर-उधर न खसके इस उद्देश्य से डंडे के अगल-बगल बाँस में काँटी ठोंक दी जाती है। इस प्रकार चरखी का एक निश्चित स्थान बना रहता है।

चरखी चलानेवाला भरदर पर खड़ा होकर चौढ़ा की ओर मुँह करके चरखी के दोनो ओर लटकते हुए बरहे को, जिसमे कूँड़ें बँधी रहती हैं, दोनो हाथों से पकड़कर एक साथ एक कूँड को बारता और दूसरे से पानी गिराता है। जिस समय एक कूँड़ पानी में डूबता है ठीक उसी समय दूसरा कूँड़ चौढ़ा पर टूटता है। इस प्रकार चरखी चलती रहती है। एक ही कुएँ पर स्थानानुसार कई चरखियाँ चल सकती हैं।

चरखी चलाते समय यदि टूट जाय तो चरखी चलाने वाले के सिर पर उसके गिरने का डर रहता है और गिरने पर बरहा गरदन पर आ जाता है। ऐसी दशा मे कभी-कभी बरहा कमर तथा पैरों में लिपट जाता है और चरखी चलाने वाला कुएँ में गिर सकता है।

पु र या पु र व ट :

३४. यहाँ पुर से सिंचाई की प्रथा कम है। पुर की सिंचाई बैलों द्वारा होती है। जिस कुएँ पर पुर चलता है उस पर बैलों के चलने के लिए जो रास्ता होता है

उसे पउदर कहते हैं। पउदर कुएँ के पास ऊँची और बाद मे क्रमशः ढारू (ढालू) होती जाती है ताकि बैलो को पुर खींचने में आसानी हो। एक जुआर (जोड़ा) बैल साधारणतः एक पहर तक चलता है। इन बैलो को पुरवटिहा बैल कहते हैं।

३५. थून्ह, बाँस या बल्ला—साधारणतः कुएँ के दोनों बगल आमने-सामने दो थून्हे गाड़ दी जाती है और इन पर बाँस या बल्ला रखकर बाँध देते हैं। इसी बाँस पर धुरई खडी करते हैं। थून्ह के स्थान पर दोनों ओर ईंट या मिट्टी की छूही या पावा भी बनाते हैं। और इन पर लकडी या बाँस रख देते हैं।

३६. धुरई—इसमे दो बाँस होते हैं। इन बाँसों का निचला भाग एक दूसरे से जुटा रहता है। पर इनके ऊपरी भाग मे एक या डेढ़ हाथ का अंतर रहता है। दोनो बाँसों के बीच में एक खूँटी डाल दी जाती है जिससे बाँसो में अंतर हो जाता है। बाँसो के ऊपरी भाग मे गड़ारी का गुर्रा, घुर्रा या सर्रा रखने के लिए खूँटियाँ गड़ी रहती हैं। धुरई बल्ले पर ढालू रक्खी जाती है और इसका निचला भाग पउदर में कुएँ के पास गाड़ देते हैं। इस भाग को एड़ा कहते हैं। एड़ा जमीन में ठीक तरह से गड़ा रहे अतः उसके रोक के लिए उसके सामने एक खूँटा गाड़ देते हैं।

३७. गड़ारी—यह लकड़ी की होती है। इसके बीच मे एक घर (गड्ढा) बना रहता है जिस पर से नार (मोटा रस्सा) आता जाता है।

३८. नार—कुएँ की गहराई के हिसाब से यह लम्बा होता है। इसका एक किनारा बैल के जुआठ मे और दूसरा मोट में बँधा रहता है।

मोट—यह चमड़े का होता है। इसके किनारे पर बराबर दूरी पर चमड़े की चकतियाँ लगाते हैं जिन्हें दीया कहते है। इससे किनारा मजबूत बना रहता है। दीया पर कई छेद बना दिए जाते हैं। मोट के मुँह पर एक गोली लकड़ी लगाई जाती है जिसे मेड़रा कहते हैं। मोट और मेड़रा को आपस में, दियों के छेदों में रस्सी डालकर, सिउर (नाथ) देते हैं जिसे मोट सिउरब (सिउरना) कहते हैं। मोट को नार मे लटकाने के लिए दो धनुषाकार लकड़ियाँ एक दूसरी को पार करती हुई मेड़रा मे बराबर दूरी पर बाँध दी जाती हैं। इन लकड़ियों को घुरई कहते हैं। मेड़रा और घुरई के लिये सिंघोर की लकडी अच्छी है क्योंकि यह ओनान (झुकाने) पर टूटती नहीं। जहाँ एक घुरई दूसरे को पार करती है वहीं नार बाँधा जाता है। बड़ी मोट को चरसा कहते हैं। इसमें लगभग सोलह घड़ा पानी आता है। मोट से पानी गिराने को मोट तोरब (तोरना) कहते हैं। मोट तोडने वाले व्यक्ति को टेकवैया (टेकने वाला) कहते हैं। वह चौंढ़ा मे खड़ा रहता है और मोट के ऊपर आते ही उसे चौढ़ा में खींचकर तोड़ देता है। धुरई से एक रस्सी चौढ़ा में लटकती रहती है, उसे टेकवैया बाएँ हाथ से पकड़े रहता है ताकि मोट तोड़ने के बाद जब मोट झटके से कुएँ में फेकी जाती है वह स्वयं भी न झटक उठे।

घर्रा

३९. यह भी पुर की तरह खींचा जाता है लेकिन इसमें बैल नहीं लगते बल्कि इसे आदमी खींचते हैं। नार में तीन-चार स्थानों पर बराबर दूरी पर छोटे-छोटे डंडे बँधे रहते हैं; इन डंडों के दायें-बायें आदमी खड़े होते हैं और बीच में नार रहता है। घर्रे में ग्यारह आदमी लगते हैं।

साठ मोट खींचने पर एक बार विश्राम का समय आता है। एक मोट खींचने पर एक गोटी (कंकड़ का टुकड़ा) अलग निकाल कर रख देते हैं इसी से गिनती गिनते रहते हैं जब साठ गोटी हो जाती है तब दो आदमी छूट जाते हैं और उनकी जगह पर सुस्ताये हुए आदमी आ जाते हैं। गिनने के इस ढंग को भी गोटी कहते हैं।

गड़ारी चलते-चलते गरम होकर आवाज करने लगती है जिसे चिहुकब (चिहुकना) कहते हैं इसे शान्त करने के लिए गड़ारी के छेद में रेंड़ी का तेल देते हैं।

रहँट:

४०. यह सिंचाई का सबसे अच्छा साधन है किंतु इसके लिए बड़ा कुआँ होना चाहिए। एक बार यदि रहँट लगा दिया जाय तो बहुत दिन तक चलता है। सिंचाई के तरीकों में यह सबसे अधिक मूल्यवान् है. इसलिये केवल बड़े किसान ही इसे लगा सकते हैं।

रहँट में तीन चाक अर्थात् चक्कर लगाने वाले पहिये होते हैं जिनमें दो कुएँ के बाहर होते हैं और एक कुएँ के भीतर। कुएँ के भीतर वाले चाक को चलाने के लिए ही ऊपर वाले चाकों की आवश्यकता होती है। ऊपर के जिस चाक में बैल चलता है वह मझला चाक है। यह बाएँ से दाहिने को चलता है इसके चलने पर छोटा चाक पहिये की भाँति ऊपर से नीचे को चलता है। इसके चलने पर कुएँ के भीतर वाला चाक पहिये की भाँति चक्कर करता है। घड़ी के चाक की भाँति इन चाकों का किनारा कटा हुआ दन्दानेदार होता है; इस कटे हुए अंश को छीनी कहते हैं। मझले चाक की छीनी छोटे चाक की छीनी से फँसी होती है और फिर इस छोटे चाक से कुएँ वाले चाक का सम्बन्ध रहता है। इस तरह ये तीनों चाक एक साथ चलते रहते हैं।

कुएँ के अंदर वाले चाक में चारों ओर सीढ़ी की तरह छड़ लगे रहते हैं जिन्हें पखी कहते हैं। प्रत्येक पंखी में एक बालटी होती है। इस प्रकार पूरे चाक में बालटियाँ लगी रहती हैं, इन्हीं बालटियों में पानी भरता है। जब चाक घूमता है तब इन बालटियों में पानी भरता जाता है। कुएँ के मुँह के पास एक टिन का बड़ा टुकड़ा लगा रहता है इसी में बालटी का पानी गिरता है। इस स्थान को चौंढ़ा कहते हैं। दस-बारह हाथ लंबी, लगभग एक बीता चौड़ी तथा चार अंगुल नीची

लकड़ी के बीच मे एक सूराख करते हैं इस लकड़ी को मझले चाक के साम या मूसर मे जड़ देते हैं। इसी लकड़ी के सहारे लकड़ी के दोनों ओर एक-एक जोड़ी बैल लगे रहते हैं जो रहँट खीचने का काम करते हैं। इनका चक्कर कोल्हू के बैलों की भाँति गोलाई में होता है। इस लकड़ी को हरिस कहते हैं।

सि चा ई सं ब न्धी वि शे ष बा तें :

४१. ढेकुल तथा चर्खी के चलाने में सहयोग का नियम है। सहयोग की प्रथा मे काम के बदले में काम किया जाता है, मजदूरी का प्रश्न नहीं उठता है। पानी चलाते समय बीच-बीच मे आदमी बदलते रहते हैं: जितनी देर एक आदमी या एक गिरोह काम करता है उतनी देर को ओहार कहते हैं। एक हॉडी में, जिसकी पेंदी मे एक छेद होता है, पानी भर कर रख देते हैं। इसका पानी धीरे-धीरे चुआ करता है। पानी समाप्त होने पर हॉड़ी फिर भर दी जाती है। एक ओहार मे जितनी बार हॉड़ी का पानी समाप्त होता है उतने समय को ओहार का माप समझ लेते हैं। इसी माप से सभी काम से छूटते हैं और उनकी जगह पर दूसरे आते हैं। इस तरह सब लोग बराबर समय काम करते हैं। लेकिन अंतिम ओहार का बदला नहीं होता। इस ओहार का नाम मुर्रा है।

गर्मी मे सिंचाई साधारणतः दोपहर तक ही होती है। क्योंकि एक तो दोपहर के बाद परिश्रम नहीं होता दूसरे मामूली कुऍं में पानी भी कम पड़ जाता है। दूसरे दिन जब पानी फिर अपनी जगह आ जाता है, तब पानी चलाने का कार्य आरंभ करते हैं। पानी के इस प्रकार पूर्ववत् हो जाने को बोर पर आइब (आना) कहते हैं।

कुएॅ का पानी कम हो जाने पर ढेंकुल का कढाव समाप्त हो जाता है और बरहा छोटा पड जाता है। अतः बरहा को बढ़ाना पड़ता है। लेकिन बरहा बढ़ जाने पर लेदी जमीन छूने लगती है। ऐस दशा मे जहॉ पर लेदी जमीन छूती है वहॉ गडदा बना दिया जाता है, ताकि लेदी उसी गड़हे (गड्ढे) के अंदर चली जाय। ऐसा करने से ढेकुल का कढ़ाव बढ़ जाता है और ढेंकुल चलाने में सुविधा हो जाती है।

ढेकुल तथा चरखी चलानेवालो के हाथों मे घट्ठे पड़ जाते हैं। बरहा की लगातार रगड़ से हाथ सुरक उठता है अर्थात् हथेली का चमड़ा उकिल (निकल) जाता है। इस प्रकार सुरका से हाथों से खून तक बहने लगता है।

ढेकुल, चर्खी, पुर आदि आरंभ करने को पानी नाधब (नाधना) या पानी जोरब (जोरना) तथा इन्हें चलाने को पानी चलाइब (चलाना) कहते हैं। पानी बन्द करने के लिये खेत में काम करने वाला आदमी कुऍं पर वाले आदमी को गोहरा (पुकार) कर कहता है, 'राम कहि द' अर्थात् राम कह दो।

४२. पनिबट—कुऍं से खेत तक पानी जाने के लिये रास्ता निश्चित होता

है। जिस रास्ते से सिंचाई की जाती है उस रास्ते पर किसान का हक हो जाता है। उस सिचाई के रास्ते को कोई बन्द नहीं कर सकता। इसे पनिवट कहते हैं।

नारी—पनिवट से खेत तक जो रास्ता पानी जाने के लिये बनाया जाता है उसे नारी (नाली) कहते हैं. पतली नारी को बुलारा कहते हैं। नारी से खेत तक पानी ले जाने में यदि कहीं कुछ जमीन नीची पड़ जाय तो उसे पाटना पड़ता है। इस प्रकार मिट्टी पाटकर ऊँचा करने को बहर चढ़ाइब (चढ़ाना) कहते हैं और उसके ऊपर जो नारी बनती है उसे बहरी कहते हैं। नारी में जब पानी मुहेमुँह भरा रहता है तब ऐसी नारी को बुजकल या बुजे-बुज भरी नारी कहते हैं। यदि नारी कहीं कटी होती है तो उसे ठीक करने को तावन लगाइब (लगाना) अथवा तावन फेरब (फेरना) कहते हैं। एक नारी से दूसरी नारी में पानी फेरने के लिये पहली नारी का रास्ता मिट्टी रखकर बन्द किया जाता है। इस मिट्टी को गरबध तथा इस क्रिया को गरबध बाँधब (बाँधना) या गरबध फेरब (फेरना) कहते हैं।

मतबरहा तथा बरहा—खेत के माथ पर जिधर से सिंचनी (सिंचाई) की सुविधा होती है बड़ी नारी बना देते है। इस नारी को मतबरहा या मथबरहा कहते है और इससे निकलने वाली नारियों को बरहा कहते है। मतबरहा से जिस स्थान पर बरहा निकलता है उसे गलारा कहते है। यदि खेत सम न होकर बीच में ऊँचा हुआ तो मतबरहा नहीं बनाते, उसकी जगह पर खेत में तिरछे-तिरछे एक कोन से दूसरे कोन तक बीचो-बीच नाली बना देते हैं जिसे बड़ेरा कहते हैं।

पनिहाव—सिंचाई को अत्यंत ठेठ बोली में पनिहाव भी कहते हैं। ऐसी जमीन जहाँ पानी नहीं पहुँचता उद्धध कहलाती है।

४३. फरुही—यह लकड़ी की होती है। इसी के द्वारा नारी बनाई जाती है। फरुही अर्द्धचंद्राकार होती है। यही फरुही का मुख्य अग है। इसमें एक छेद होता है जिसमें डंडा डाला जाता है। डंडा लगभग चार हाथ लम्बा होता है। इसको पकड़कर फरुही से काम लिया जाता है। फरुही में डंडा रुका रहे इस दृष्टि से फरुही के पिछले भाग में डंडे का जो भाग निकला रहता है उसमें एक गुल्ली (लकडी का काँटी) डाल देते हैं। कुछ लोग फरुही की सूराख में ही खीपा या पाचर (लकड़ी का टुकड़ा) ठोंककर डंडा बैठा (स्थिर कर) देते है पर यह ढीला पड़ जाता है।

४४. कियारी—सिंचाई के लिए ईख के खेत में छोटे-छोटे घेरे बनाये जाते हैं जिन्हें कियारी कहते हैं। कियारी बनाने को कियारी गढ़ब (गढ़ना) कहते हैं। कियारी की मेंड़ को डुड़ही कहते हैं। कियारी द्वारा सींचने को कियारी भरब (भरना) अथवा कियारी देब (देना) कहते हैं। सिंचाई जब हलकी की जाती है तब उसे हलुक कियारी कहते हैं, इससे कियारी में पानी फैल जाता है

और भरपूर सिंचाई नहीं होती। इस सिंचाई को छलकउआ (छलकने वाली) कियारी भी कहते हैं। जब कियारी की डुड्ही बराबर पानी दिया जाता है तब उसे गँभीर कियारी कहते हैं। इस प्रकार कियारी देने को गहिर के कियारी देब (देना) या चभोर के कियारी देब (देना) कहते हैं। इस प्रकार जब सिंचाई होती है तब खेत अच्छी तरह पानी सोखता है। चूँकि खेत इस सिंचाई में अपनी इच्छा भर पानी सोखता है इसलिए इस प्रकार पानी रेंगने (चलने) को अपने मुखे पानी रेंगब (रेंगना) कहते हैं। एक खेत से दूसरे खेत में या एक कियारी से दूसरी कियारी मे अथवा मतबरहा से बरहा में पानी ले जाने को पानी बराइब (बराना) कहते हैं। पानी बरानेवाले को बरवैया और कियारी बराने वाले को कियरिहा कहते हैं।

४५ पाहा—चना का खेत सींचने के लिए बड़ी-बड़ी कियारियाँ बनानी पडती हैं जिन्हें पाहा कहते हैं। पाहा में पानी भरपूर नहीं दिया जाता। पानी रेंगते ही बरहा कर मुँह बाँध देते हैं अतः इस प्रकार की सिंचाई को पाहा रेंगाइब (रेंगाना) कहते हैं।

४६. चढान और लौटान—बरहा के दोनों बगल के खेतों मे एक ओर की सिंचाई पानी के चढ़ाव (जाते समय) पर होती और उस ओर की सिचाई समाप्त होने पर दूसरे बगल की सिंचाई लौटान के समय होती है। इसीलिए इन सिंचाइयो को क्रमशः चढ़ान और लौटान की सिंचाई कहते हैं।

बरही—दो बरहों के बीच जो खेत का भाग होता है उसे बरही कहते हैं।

एकबड़या—खेत के किनारे के भाग को जो मेंड और बरहा के बीच मे होता है एकबड़या या एकबैया कहते हैं।

४७. हाथा—यह चिलबिल, गूलर, कटहल, बढ़हल आदि हलकी लकडी का अच्छा होता है। इसकी लंबाई एक लाठी के बराबर होती है। इसके निचले भाग को, जिससे पानी उलीचा जाता है खोरिया कहते है। हाथा के ऊपरी भाग को, जिसे दोनों हाथों से पकड़ते है, डाँड़ी कहते है।

हाथा से सिंचाई के लिए बरहा मे थोड़ी-थोडी दूर पर थाला बनाना पडता है। थालों मे बरहे का पानी एकत्र होता है और वह हाथा द्वारा उलीचा जाता है। हाथा चलाने वाले को हथवाहा या हथवैया कहते हैं। हाथा की सिंचाई जब बहुत मामूली होती है तब उसे पानी बुदकारब (बुदकारना) कहते है। इसे धूल बुताइब (बुताना) भी कहते हैं। इस प्रकार की सिचाई मिट्टी को नरम कर देती है। यहाँ रबी की सिंचाई साधारणतः हाथा द्वारा ही होती है क्योंकि यदि पानी खेत में रेंगा दिया जाय तो फसल चौपट (नष्ट) हो जाय। हाथा चलाने को हाथा मारब (मारना) कहते हैं और थाला या थाल्हा बनाने का थाल्हा बान्हब (बाँधना) या थलबंदी करब (करना) कहते हैं।

खेत रखाना

४८. खेत बोने के बाद उसकी रक्षा का प्रबन्ध आवश्यक है। खेती की रक्षा पशु, पक्षी तथा आदमी तीनों से करनी पड़ती है।

पशुओं से रक्षा :

जंगली पशुओं में नीलगाय या नीलगाय या घँड़रोज, हिरन, गीदड़, तथा सुअर विशेष हानि पहुँचाती है। किसान इनसे बचने के लिए खेत के चारों ओर खाई मार देते या टट्टी खड़ी कर देते हैं। लेकिन यह प्रबन्ध बहुत अच्छे किसान ही कर पाते हैं।

साँड़ और मवनिहा भैंसा जो धार्मिक दृष्टि से छुट्टे छोड़ दिये जाते हैं, चारों तरफ स्वच्छंदता से घूमते हैं और खेती को बहुत हानि पहुँचाते हैं।

कुछ पालतू पशुओं का यह स्वभाव हो जाता है कि वे अवसर पाने पर खेत को चोर खाने के लिए भागा करते हैं। ऐसे जानवरों को हरहा कहते हैं। ये भी खेती को बहुत हानि पहुँचाते हैं। जानवरों को चराते समय भी बड़ी सावधानी चाहिए नहीं तो ये भी हानि पहुँचा देते हैं। जब चरवाहा खेत का डाँड़ सावधानी से नहीं देखता तब गोरू खेत में पड़कर खेती खा जाते हैं।

पशुओं से रक्षा के निमित्त साधारणतः निम्न उपाय किये जाते हैं। खेत में आदमी के स्वरूप का एक ढाँचा खड़ा कर देते हैं। इस ढाँचे को धोख कहते हैं। धोख बनाने के लिए एक लकड़ी गाड़कर उस पर पुराना कपड़ा और पत्तियाँ लपेटते हैं और उसके सिर पर काली हाँड़ी रख देते हैं। जानवर इसे आदमी समझ कर धोखा खा जाते हैं।

एक अन्य उपाय यह है कि खेत रखाते समय किसान जानवर के पीछे कुत्ते को दौड़ाता है। कुत्ते से जानवर बहुत घबड़ाते हैं। जब कुत्ते नहीं रहते तब भी रखवार लुहा-लुहा या लिहा लिहा करके कुत्ते को ललकारने या तू-तू करके कुत्ते को बुलाने का संकेत करता है। जानवर यह सुनते ही भाग जाता है क्योंकि उसे यह भय हो जाता है कि कुत्ता आ रहा है।

एक तीसरा उपाय यह है कि खेत में कनस्टर टाँग देते हैं और इसे कभी-कभी जानवरों को भगाने के लिए पीट देते हैं। अवाज होने से जानवर डरकर भाग जाता है।

पक्षियों से रक्षा :

४९. पक्षियाँ भी खेती की जजात या जेदाद (जायदाद) को बहुत हानि पहुँचाती हैं। इनमें कौआ, गौरैया, सुग्गा, किलहटी तथा गोबरहिया चिरई विशेष हानिकारक हैं। ये बाल को तोड़ करके उसके दानों को छिटका देती हैं। इस प्रकार ये जितना खाती नहीं उससे अधिक बरबाद करती हैं।

कौवे के दो भेद है—(१) डोमरा (२) कौआ। डोमरा बड़े और अधिक काले कौवे को कहते हैं। कौवे को उड़ाने के लिए हड़ा-हड़ा सांकेतिक शब्द प्रयोग करते है।

छोटी-छोटी चिडियाँ खेत में सुबह-शाम अधिक आती हैं। फुरगुद्दी नाम की चिड़िया झुंड के झुंड आती है और खेतों को बहुत हानि पहुँचाती है। इनको उडाने के लिए भी कनस्टर पीटते हैं पर इससे काम नहीं चलता. अतः इन्हे मारने के लिए ढेलवाँस का प्रयोग करते है। ढेलवाँस रस्सी से बुना जाता है यह ढला या चेका फेंकने के लिये होता है। इसके द्वारा ढेला बहुत दूर तक जाता है। इसे हाथ मे पकड़कर बहुत जोरों से घुमाते है और निशाना लगाकर फेक देते है। ढेलवाँस को गोफना भी कहते हैं।

बच्चे पक्षियों को उड़ाने के लिए इस प्रकार गाते हैं—

हा हो चहरी, हा हो चहरी,
एक्कै बलिया तोरिहा हो चहरी,
मामा की मेड़िया बइठि कुटुराया,
सुतुहिन मांड़ पसाया हो चहरी।

अर्थात्, हे चहरी, तुम एक ही बाल तोड़ना और उसे मामा के मेड़ पर बैठकर खाना न कि हमारी मेंड़ पर और सुतुहियाँ भर-भर कर माँड़ पासना। हे चहरी, अब उड़ जाओ। बच्चे का भाव यह है कि चहरी ने जो कुछ तोड़ा है उसे लेकर वह उड़ जाय खेत को अब और न हानि पहुँचावे।

एक गीत इसी प्रकार और है, यथा—

हा हो चहरी, हा।
म्हार जिन खाया,
रान परोसिन क लुटि-पुटि खाया,
हा हो चहरी, हा।

अर्थात् हे चहरी, हा हो, हा हो, (उड़ो, उड़ो, मेरा खेत मत खाओ बल्कि अड़ोसी-पड़ोसी का खाओ और खूब खाओ।

बच्चे यह गीत गाते हुए ढेलवाँस चलाते है।

इसी प्रकार किलहटी उडाने के लिए भी एक गीत है—

किला किलहटी ढकना टूट,
अब जिन आया बापौ पूत।
अउबौ किहा तो हमार जिन खाया,
हमरे अड़ोसो-पड़ोसी का कूद-काद खाय।

अर्थात् किलहटी उड़ो, तुम्हारा डैना टूट गया। अब बाप-बेटे कभी न आना; यदि आना तो हमारा मत खाना—अड़ोसी-पड़ोसी का कूद-कूद कर खाना।

टाँड़ी (टिड्डी) का झुंड आने पर खेत की बहुत अधिक रखवाली करनी पड़ती है। टिड्डियाँ साधारणतः वर्षा के आरम्भ में आती हैं। जिस साल नड़का (सूखा) पड़ता है उस साल इनके आने की और भी अधिक संभावना होती है।

टिड्डियों के हमले पर किसान बाल बच्चों के सहित खेत पर पहुँच जाता है और कनस्टर थरिया (थाली) आदि को बजाता है ताकि टिड्डी उड़ जायँ लेकिन इतने से सफलता नहीं मिलती। वह कूँचा और झाड़ लेकर पौधों को झाड़ता है ताकि उस पर से टीड़ी दल उड़ जाय। टीड़ी दल थोड़ी देर में ही पौधे को चट कर जाता (खा जाता) है अतः टीड़ी खेती के लिए अत्यन्त हानिकारक है।

कहा जाता है कि टीड़ियों से फतिगों की उत्पत्ति होती है अतः जिस वर्ष टीड़ी आती है उसके दूसरे वर्ष फतिंगों का प्रकोप होता है। इस तरह टीड़ी बहुत ही हानि पहुँचाती है। फतिंगा ईख की खेती में लगता है।

चूहे से रक्षा :

५०. चैती फसल की खेती में विशेषतः जौ-गेहूँ के खेत में, मूस (चूहा) अधिकता से लगते हैं। इनसे बचने के लिए निम्न उपाय किए जाते हैं—(१) चूहे की बिल पर धुआँ किया जाता है। ऐसा करने के लिये एक ऐसी हाँड़ी लेते हैं जिसकी पेंदी में सूराख रहता है। इस हाँड़ी में कंडी सुलगाते हैं और इसे उलट कर बिल पर रखते हैं इस प्रकार रखने से बिल में धुआँ जाता है। इस क्रिया को धुँकनी कहते हैं। (२) चूहे की बिल पर मिट्टी के पिहान (ढक्कन) को एक धनुही के सहारे खड़ा करते हैं। धनुही की रस्सी में एक पतली लकड़ी लगा कर उसमें रोटी का टुकड़ा खोंस देते हैं। जब चूहा रोटी की लालच से रोटी को छूता है तब धनुही गिर जाती है और उसी के साथ पिहान भी गिर जाता है। पिहान के गिरने के साथ चूहा दब जाता है। इस प्रयोग को जाँती कहते हैं। (३) बिल के पास छोटी-छोटी लकड़ियाँ गाड़ देते हैं, इन लकड़ियों पर रात में कुचकुचवा (उल्लू) आ कर बैठते हैं। रात में जब मूस बाहर निकलते हैं तब उल्लू उन्हें पकड़ कर खा जाते हैं।

मूसों से खेती को जो हानि पहुँचती है उसे मूस की हई कहते हैं। जहाँ पशुओं से हानि होती है वहाँ पशुओं की हई कही जाती है। फसल कटने पर किसान चूहों की बिल को खनकर उसमें एकत्रित अनाज को निकाल लेता है।

आदमियों से रक्षा :

५१. चरवाहे गोरू चराते समय खेत से जायदाद की चोरी कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त राह चलने वाले गरीब लोग भी पौधों से बाल तोड़ लेते हैं। बाल नोचने से बड़ा टूटा पड़ता है। किसान का जिससे मुदैपन (वैर) रहता है वह भी

कभी-कभी रात में फसल काट लेता है चोर तो जायदाद काटते ही हैं। जो लोग फसल को इस प्रकार हानि पहुँचाते हैं उन्हें कयार कहते हैं।

५२. खेत की रखवारी (रखवाली) की दृष्टि से यह सुविधाजनक है कि गाँव के एक टोक (किनारे) पर एक ही प्रकार की फसल हो। जिस टोक पर जो फसल होती है उसी के नाम से वह टोक कहा जाता है यथा, ईख का टोक। इससे खेत की रक्षा में सुविधा होती है। कई रखवार होने पर मनलायन या चुहल अर्थात् सजीवता रहती है. किसी दुश्मन की हिम्मत नहीं पड़ती। वर्षा में मचान बनाकर खेत रखाते हैं। जाडे में खेत में छोटी सी मड़ई या टाटी डाल लेते है। जिनके खेत गाँव से बहुत दूर होते हैं वे अपने रहने के लिए वहीं प्रबन्ध करते हैं ऐसे स्थान को पाही कहते हैं और उस खेत को पाही का खेत कहते हैं।

खाद डालना

५३. साधारणतः वर्षा का गोबर खाद के काम में लाते हैं और शेष महीनों में गोबर से उपले पाथते हैं। वर्षा का गोबर खेत के एक कोने पर या किसी और जगह एकत्र करते हैं। इस एकत्र गोबर को घूर कहते हैं। प्रायः जेठ सुदी दसहरा (ज्येष्ठ शुक्ल दशमी) से कार्तिक अमावस्या तक यह घूर एकत्र किया जाता है। वर्षा में जहाँ पशु बाँधे जाते है वहाँ पत्ती बिछा दी जाती है ऐसा करने से पशुओं को आराम मिलता है। पशुओं के मल-मूत्र से पत्तियाँ सड़कर खाद का काम देती है. इस खाद को ओछरा या कचरा कहते हैं। एकत्र घूर को वर्षा के उपरांत खेत में डालकर जोताई करते हैं। फसल बोने के समय भी इसका उपयोग करते हैं। पुरानी कराइन (छान की पत्तियाँ) तथा अरहर की पत्ती खेत में खाद के लिए डाली जाती है। नीम की खली भी बहुत अच्छी खाद मानी जाती है।

५४. ईख कट जाने पर उसकी पत्तियों को जलाया जाता है। ये पत्तियाँ जलने पर खाद का काम देती हैं। इनके जलाने से ईख में फतिंगे नहीं लगते। ऐसा विश्वास है कि पत्तियों को जलाने से फतिंगों के अंडे नष्ट हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप वर्षा में फतिंगों की उत्पत्ति नहीं होती है।

५५. हरी खाद की दृष्टि से सनई उत्तम समझी जाती है। सनई के पौधे जब हाथ-दो हाथ लंबे हो जाते हैं तब खेत हेंगा दिया जाता है। ऐसा करने से सनई का सब अंग खेत में मिल जाता है और वह धीरे-धीरे खाद बन जाता है।

५६. भेड़ी-छेड़ी का मल-मूत्र बहुत अच्छी खाद है। इसके लिए खेत में भेड़-बकरी बैठाई जाती है। ऐसा करने के लिए गड़ेरिया को बुलाकर तै कर लिया

जाता है। गड़ेरिया इसकी मजदूरी भेड़ों की गिनती पर लेता है। सौ भेड़ों का एक लेहँड़ा माना जाता है; फी लेहँड़ा चार पसेरी (११० तोला = एक सेर। ५ सेर = १ पसेरी) अन्न दिया जाता है। एक बीघा खेत में साधारणतः पाँच या छः लेहँड़ा भेड़ें बैठाई जाती हैं। इस प्रकार चार या पाँच दिन तक भेड़ें बैठाई जाती हैं। उखाव (ईख के खेत) में विशेषरूप से भेड़ें बैठाई जाती हैं। ईख के जम आने पर भी भेड़ें बैठाई जाती हैं। चैती फसल के लिए भदवारा (भादों) और कुवार में भेड़ें बैठाना ठीक होता है। भदवारा में भेड़ बैठाने से एक प्रकार का कीड़ा लेंड़ी को भुर भुरा चाल डालता है; और लेंड़ी खाद के रूप में हो जाती है। बियास (धान के खेत) में माघ-फाल्गुन में भेड़ बैठाते हैं। भेड़ बैठाने के बाद खेत को एक या दो बाह जोतते हैं। आलू के खेत में भी भेड़ें बैठाई जाती हैं। भेड़ों के बदन से जो गन्हि (गन्ध) निकलती है उससे भी खेत को लाभ पहुँचता है।

लेहुर (एक प्रकार की लता) को असाढ़ में खेत में डालते हैं इसके डालने से दो-तीन साल तक खेत उपजाऊ बना रहता है।

बोना

५.०. खनने, जोतने, खाद डालने तथा हेंगाने के बाद जब खेत भली भाँति तैयार हो जाता है तब बोने का कार्य होता है। बोआई को बाना या बोउनी भी कहते हैं। बोने की दो रीतियाँ हैं एक पेरा (बीज) छींटकर दूसरा हर द्वारा।

पेरा की बोवाई—यह साधारणतः नम जमीन में की जाती है क्योंकि नम जमीन बीज को आसानी से पकड़ लेती है। मटियरा में भी पेरा बोने की प्रथा है लेकिन बहुत कम। पेरा बोने का ढंग इस प्रकार है—बीज को मुट्ठी में लेकर एक बार खेत में खड़-खड़ बोते हैं और फिर बेंड़-बेंड़े बोते हैं अर्थात् आधा बीज लम्बाई की ओर से बोते हैं और आधा चौड़ाई की ओर से। पेरा छींटने के बाद खेत जोत कर हेंगा देते हैं। ऐसा करने से बीज मिट्टी में भली भाँति मिल जाता है। इस क्रिया को मेरउव (मिलाना) कहते हैं। पेरा बोने में शीघ्रता होती है। कुवारी धान की बोआई पेरा के ढंग से ही की जाती है। पेरा बोने से कुछ बीजों की हानि होती है क्योंकि जो बीज ऊपर रह जाते हैं उन्हें चिड़ियाँ खा जाती हैं।

खूँटहर की बोआई—इसमें आगे-आगे हल चलता है और उसके पीछे बोवैया (बोने वाला पुरुष) या बोउनहरि (बोनेवाली स्त्री) कूँड़ में बीज डालती जाती है। बोने के उपरांत खेत हेंगा दिया जाता है। बोआई की क्रिया खूँटहर से की जाती है। इसीलिए इस बोआई को खूँटहर की बोआई कहते हैं।

५८. अरहर, सनई तथा मेडुवा को अफार (बिना जोता खेत) मे छीट देते हैं और छीटने के बाद खेत जोतकर हेंगा देते है।

बोने की क्रिया जब बराबर से नही होती है तो ऐसी बोआई को लुतराइ या लुदकाह कहते हैं। इस बोआई मे फसल बराबर से नहीं जमती।

५९. रोपना—इस क्रिया मे बीज को पहले बो देते हैं और जब पौद तैयार हो जाता है तब उखाड़कर दूसरी जगह लगाते हैं। इस प्रकार की बोआई धान मे होती है। रोपने के लिए की गई बोआई को बेहन डालब (डालना) कहते है और बीज द्वारा उगे पौधे को बेहन कहते हैं। इस बेहन को दूसरी जगह उखाड़कर लगाने को रोपब (रोपना) या बेहन रोपब (रोपना) कहते है। जिस खेत मे बेहन डालते हैं उसे बेहनौर कहते हैं। बेहन रोपने को बेहन बठाइब (बैठाना) भी कहते हैं।

ईख की बोआई भिन्न प्रकार से होती है। इसके लिये गहरी कूँड बनाई जाती हैं जिसे मूहिं कहते हैं। ईख के छोटे-छोटे गाँठ युक्त टुकड़ों को काटकर मूहिं मे बड़े-बेड़ डालते हैं। इन टुकड़ो को पर्तांड़ कहते हैं।

गोड़ना

६०. फसल बोने के बाद सिचाई तथा गोडाई की क्रिया बराबर होती रहती है। सिंचाई के उपरान्त यदि गाड़नी (गोड़ाई) न हो तो खेत की मिट्टी बैठ जाय और फसल खराब हो जाय। खेत की नमी कायम रखने के लिए गोड़ाई अत्यन्त आवश्यक है। ईख के सम्बन्ध मे एक कहावत है 'तीन कियारी तेरह गोड़ नव ताका होदा का ओर' इससे गोड़ाई का महत्त्व स्पष्ट है। ज्वार की गोड़ाई भी बहुत आवश्यक समझी जाती है। तरकारियों मे आलू, गंजा, अरुई तथा गोभी की गोड़ाई भी अत्यन्त आवश्यक है।

गोड़ाइ का औजार:

६१. कुदार—इसके विभिन्न अंग इस प्रकार हैं:—

(क) बेंट—कुदार मे लकडी का जो डंडा होता है उसे कहते हैं। बेंट पकड़कर कुदार चलाई जाती है।

(ख) पासा—यह कुदार का पिछला गोला भाग है जिसमें बेट डालाजाता है।

(ग) धार—यह कुदार का नुकीला भाग है।

(घ) पवाँरी—यह पासा और धार के बीच का भाग है।

कुदार की धार थोंठिल या गोठिल (कुंद) हो कर जब मोटी हो जाती है तब

खुरपे की धार जब गोंठिल हो जाती है तब कहा जाता है कि खुरपे में ठेहरी पड़ गई है। लोहार इसे पीटकर ठीक करता है। तेज करने के लिए कुदार की भाँति इसे भी पत्थर पर पानी डालकर पहँटते हैं। पहँटने को पथरना भी कहते हैं। पथरते-पथरते जब धार खुल जाती है तब धार पर से एक लोहे का बार छूट जाता है।

खेत निराने मे खुरपी का प्रयोग होता है क्योंकि इसमें पौधे घने होते हैं। निराई बड़ी सावधानी से करनी चाहिए अन्यथा पौधो के कट जाने का भय रहता है।

खुरपे का प्रयोग घाँग्यारे घास छीलने मे करते हैं। घास छीलने वाली स्त्री को घसनहरि कहते हैं। बाजड़ा तथा ईख आदि बड़े पौधों के काटने में भी खुरपे का प्रयोग होता है।

काटना

६५. फसल की कटाई के लिए कटिया शब्द अधिक प्रयुक्त होता है। चैती फसल ही मुख्य फसल है और इसी समय कटिया आरम्भ होती है।

क टि या का औ जा र :

हँसुआ या हँसिया—यह दो प्रकार का होता है :

(क) सादा हँसुआ—इसे धमउनवा हँसुआ भी कहते है। इसकी धार सादी होती है।

(ख) दँतारा हँसुआ—इसकी धार मे दाँत बने होते हैं। दाँतों के कारण हरी फसल काटने मे सुविधा होती है। यह धान तथा सनई के काटने में विशेष रूप से प्रयुक्त होता है। सरपत भी इसी से काटते हैं।

हँसुआ—इसके विभिन्न अंग इस प्रकार है :—

(क) बेंट —हँसुआ पकडने के लिए जो लकडी लगी रहती है उसे बेंट कहते है।

(ख) गूँज—बेंट के अन्दर डालने के लिए हँसुआ मे जो नोकीला भाग होता है उसे गूँज कहते है।

(ग) धार—हँसुए की शकल टेढ़े चाँद ऐसी होती है। हँसुए के जिस भाग से कटाई का काम लिया जाता है उसे धार कहते है।

(घ) डाँड़ी—हँसुआ की धार और बेंट के बीच मे जो लोहे का मोटा भाग होता है उसे डाँड़ी कहते हैं। यही लोहा किनारे की ओर पीटकर धार के रूप में पतला कर दिया जाता है।

कटिया का ढङ्ग:

६६. कटिया के दो ढंग हैं—(१) लेहना (२) लवनी।

लेहना—फसल काटते समय कटवैया बाएँ हाथ की मूठी द्वारा पौधों को पकड़ता है और दाहिने हाथ में हँसुआ लेकर उन्हें काटता है। एक बार में जितना वह काटता है उसे मूठा कहते हैं। कटवैया. कुछ मूठों को काट कर एक जगह एकत्र कर देता है और फिर आगे बढ़ता है। इस प्रकार वह काट-काट कर छोटा-छोटा ढेर लगाता चला जाता है। इस ढेर को लेहना और इस प्रकार ढेर लगाने को लेहनियाइब (लेहनियाना) कहते हैं। यह बोझ इतना होता है जितना कि अँकवार में आ सकता है। खेत कट जाने पर कटवैया लेहना को एकत्र करता है। मजदूरी के रूप में कटवैया प्रति बीस, पचीस अथवा तीस लेहनों के पीछे एक लेहना पाता है जिसे क्रमशः बीसा, पचीसा और तीसा कहते हैं।

६७. लवनी—इस प्रथा के अनुसार कटवैया को कटे हुए बोझों में से नहीं बाँटा जाता बल्कि वह स्वयं अपने लिए एक बोझ विशेष ढंग से बनाता है। यह बोझ अन्य बोझों से अधिक बड़ा होता है और इसके बाँधने का ढंग भी भिन्न होता है। साधारण बोझों में बाल की जड़ एक ओर रहती है और बाल दूसरी ओर पर लवनी (कटवैया का बोझ) में बाल अन्दर होती है और जड़ें दोनों ओर निकली रहती हैं। थोड़ी-थोड़ी बालों को लेकर उनको इस प्रकार बैठाते हैं कि बालें अधिक आती हैं। इस क्रिया को लवनी बैठाइब (बैठाना) या लवनियाइब (लवनियाना) कहते हैं। किसान लवनी का कुछ भाग निकाल कर बाकी कटवैया को दे देता है।

दाँना

६८. कटिया होने के बाद सारा अनाज एक स्थान पर रक्खा जाता है। इस स्थान को खरिहान या खलिहान कहते है। इसे किसान ऐसे स्थान पर बनाता है जहाँ उसे अनाज की दँवाई में सुविधा होती है। वर्षा से बचत के लिए वह बाग में खरिहान बनाता है। गाँज रखने मे इस बात का ध्यान रखते है कि उसमे पानी न समस (समा) सके। गाँज में बाल अन्दर की ओर रहती है और जड़ बाहर की ओर। गाँज गोलाई में बनाया जाता है।

किसान जब चैती फसल काट चुकता है और ईख की सिंचाई आदि से खाली पा जाता है तब वह दँवाई की ओर ध्यान देता है। यह कार्य बैसाख और जेठ में होता है। पछुवाँ हवा इस कार्य के लिए अनुकूल होती है क्योंकि इसमें डाँठ (डंठल) खर हो जाता है और उसके टूटने में आसानी पड़ती है। दँवाई

का कार्य दो, चार या छ बैलों द्वारा होता है। बैलों द्वारा डंठल को कुचलवा कर दाना अलग करने को दाँउब (दाँना) कहते हैं।

६९. दँवाई के समय जो बैल नाधे जाते हैं उन सब के गेराव (गले में पड़ी रस्सी) को एक रस्सी द्वारा संबंधित कर देते हैं इस रस्सी को दँवरी कहते हैं। दँवाई के कार्य को भी दँवरी कहते हैं। दँवरी में जो बैल बाहर को ओर रहता है वह दाहिने पड़ता है इसलिए उसे दहिना कहते है। बाईं ओर का बैल दँवरी चलते समय मध्य मे पड़ता है अतः उसे मेहिया या मेहियवा अथवा मेंहियवा कहते हैं।

दँवरी के लिए गाँज से अनाज फैलाने को गाँज फोरब (फोरना) कहते है; फैलाने के लिए ओहब (ओहना) क्रिया भी प्रयुक्त होती है इसीलिए इसे गाँज ओहब (ओहना) भी कहते हैं। दँवरी के लिए जितना डाँठ एक बार मे फैलाया जाता है उसे पइरि कहते है। इसी पइरि पर बैल चलते हैं। बैलों को पइरि पर चलाने को दँवरी नाधब (नाधना) या दँवरी हाँकब (हाँकना) कहते है। जब पइरि के डाँठ टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं तब उन टुकड़ों को पँड़उस या खँड़हुला कहते हैं।

दँवाई सम्बन्धी औजार:

७०. अखनी—यह एक डंडा होता है जिसके किनारे का भाग लग्गी की भाँति टेढ़ा होता है। इस लग्गी के सहारे ही पइरि को उलटते-पलटते रहते हैं। ऐसा करने से डाँठ आसानी से टूटता है।

पाँचा—जिस प्रकार कंकड़ एकत्र करने के लिए दाँतेदार लम्बा फरसा होता है उसी प्रकार छिटके हुए पँड़उस को एकत्र करने के लिए पाँचा होता है। इसका नाम पाँचा इसलिए है कि इसके एक ओर डाँठ खींचने के लिये अंगुलियों की भाँति पाँच लकड़ियाँ बनी रहती है।

कूँचा—यह रहठे का होता है। इसे पइरि को कुचउरने (बटोरने) के लिए प्रयोग में लाते हैं। कूँचे के द्वारा पइरि के बड़े-बड़े पँड़उस ऊपर आ जाते हैं। ऐसा होने से पइरि बराबर टूटती है। पँड़उस टूट कर जब बारीक टुकड़ों मे हो जाता है तब उसे भूसा कहते हैं। भूसा तैयार हो जाने पर पइरि ग्योंझा (तैयार) समझी जाती है। पइरि तैयार होने पर उसकी ढेर लगाते हैं जिसे उकाव कहते हैं।

ओसाना

७१. दँवाई के फलस्वरूप जब उकाव तैयार हो जाता है तब ओसाई का कार्य होता है। इस क्रिया को ओसाइब (ओसाना) कहते हैं। ओसाने के कार्य को ओसउनी अथवा ओसवाई भी कहते हैं। ओसाने वाले पुरुष को ओसवैया

तथा ओसाने वाली स्त्री को ओसनहारि कहते हैं। ओसाने के फलस्वरूप भूसा और अनाज अलग-अलग हो जाते हैं।

७२. ओसाने के लिए यह आवश्यक है कि हवा बहती हो। हवा न रहने पर किसी मोटे कपड़े यथा, खोल अथवा कम्बल से हवा करते हैं। इस प्रकार हवा करने को बींग मारब (मारना) कहते हैं। हवा के द्वारा भूसा अलग गिरता है। ओसाने के लिए एक दौरा में अनाज रक्खा जाता है। ओसानेवाला इस प्रकार खड़ा होता है कि ओसाते समय हवा ठीक से लगे। ओसाने के लिए जिस टोरी में अनाज रक्खा जाता है उसे डाली कहते हैं। हवा का रुख देख कर यह निश्चय किया जाता है कि किधर से डाली दी जाय। डाली के समय जो हवा बहती है उसी के नाम से डाली बोली जाती है यथा पूरब की हवा बहने पर पूरब की डाली तथा पश्चिम की हवा बहने पर पश्चिम की डाली। हवा जब तेज बहती है तब अनाज खूब भरभरा कर तेजी से गिराया जाता है। किन्तु अधिक तेज हवा में भी ओसाई का कार्य ठीक नहीं होता है। ओसाने के फलस्वरूप भूसा कुछ दूर पर जाकर गिरता है और अनाज भारी होने के कारण, वहीं नीचे गिरता जाता है। गाँठ भूसा से भारी होने के कारण अनाज से कुछ दूर पर अर्थात् अनाज और भूसा के बीच में गिरती है। इस गाँठ के समूह को उसी स्थान पर मेड़ के रूप में एकत्र कर देते हैं, इस मेड़ को गारी कहते हैं। गारी बनाने का गारी काटब (काटना) कहते हैं। भूसा बहुत दूर उड़कर न गिरे अतः उसे रोकने के लिए चारपाई खड़ी कर देते हैं। सारे भूसे को अलग एकत्र कर देते हैं और ओसाए हुए अनाज की राशि लगा देते हैं। इस क्रिया को रसियाउब (राशि लगाना) कहते हैं।

७३. हरियाना—ओसाई के पश्चात् राशि को टोरी से हरियाते हैं समय जो गाँठ गिरती है उसे तिसकुट (तीसी की डाँठ) या रहठा की पलौंठी (पलई का भाग) से मारकर अलग करते जाते हैं। इस क्रिया को गाँठ मारब (मारना) कहते हैं। ओसाते तथा हरियाते समय जो अनाज इधर-उधर छिटिक (छिटक) कर गिर जाता है वह हरवाह का होता है। इस अनाज को अँगवार कहते हैं।

ओसाने और हरियाने के बाद जो गाँठ या डंठल के टुकड़े निकलते हैं उन्हें हरवाह फिर से दाँता है और इससे जो कुछ दाना-भूसा निकलता है वह भी उसी का होता है, और इसे भी अँगवार कहते हैं।

३

विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन

जौ

७४. जौ के लिए मटियरा की अपेक्षा दोमट अच्छा माना जाता है। मटियरा का पौधा और उसकी बालें मोटी होती हैं। दोमट की बालें और पेड़ लम्बे होते हैं। दोमट में भूसा अधिक निकलता है। जौ के लिए केरौटा खुँटिहन तथा पेड़ी का चौमासा सब से अच्छा होता है; यदि खना हुआ खेत हो तो और भी अच्छा।

वर्षा आरम्भ होते ही खेत की जोताई होने लगती है। आर्द्रा से हस्त नक्षत्र तक जोताई होने के बाद चित्रा से बोनी आरम्भ हो जाती है। किन्तु जौ के लिए स्वाति नक्षत्र सब से उत्तम समझा जाता है; कहावत है चित्रा गेहूँ, सवार्ती जवा, गेरुई ढाहा क हौ दवा अर्थात् चित्रा मे गेहूँ और स्वाति में जौ बोने से गेरुई और ढाहा रोगों का भय नहीं रहता है। चित्रा की वर्षा तथा ओस जौ के लिए हानिकर है, ऐसा लोगों का विश्वास है। स्वाति को ओस जौ के लिए लाभप्रद बताई जाती है। चित्रा की वर्षा का दोष स्वाति की वर्षा से नष्ट हो जाता है इसलिए स्वाति जौ के लिए अत्यन्त उपयुक्त माना जाता है। एक उक्ति और भी है सवाती जवा, बिशाखा भूसा, लगत अनुराधा नाधा छूटा अर्थात् स्वाति में जौ बोने से दाना अधिक पड़ता है और विशाखा में बोने से भूसा अधिक पड़ता है; अनुराधा नक्षत्र लगते ही बोआई बन्द कर देनी चाहिए। महीने के हिसाब से कार्तिक के बाद की बोआई अच्छी नहीं होती है; उक्ति है, 'सावन सावाँ अगहन जवा, जितनइ बोवा उतनइ भवा' अर्थात् यदि सावन में सावाँ तथा अगहन में जौ बोया जाय तो कठिनाई से बीज के बराबर उपज होती है।

जौ की बोआई पेरा और खुँटहर दोनों ढंग पर होती है। जहाँ नम जमीन होती है वहाँ पेरा अन्यथा सब जगह खुँटहर की बोआई होती है। जिस दिन बोआई करते हैं उस दिन हेंगाते नहीं, खेत को रात भर ओस खाने के लिए छोड़ देते हैं और अगले दिन हेंगाते हैं।

७५. बोउनी के तीसरे-चौथे दिन अँखुआ (अंकुर) निकल आता है। अँखुआ निकलने को अँखुआइब (अँखुआना) कहते हैं। अँखुआ सूई सदृश पतला एवं नोकदार निकलता है इसलिए इस अवस्था को सुइआब (सुइआना) भी कहते हैं। अँखुआ जब पत्ती का रूप ग्रहण करता है तब उसे डोभी कहते हैं। डोभी निकलने को डिभियाब (डिभिआना) कहते हैं। डोभी बढ़ जाने पर उसे पोटी कहते हैं और इस अवस्था को पोटियाब (पोटियाना) कहते हैं।

जब जौ का पौधा कुछ बढ़ जाता है तब सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है; उक्ति है, 'गेहूँ बारे जौ पोटियारे' अर्थात् गेहूँ की सिंचाई छोटे रहने पर तथा जौ की सिंचाई पोटियाने पर करनी चाहिए। यह सिंचाई हाथा द्वारा की जाती है।

अगहन की वर्षा फसल के लिए अच्छी नहीं मानी जाती है; कहावत है, 'अगहन बरसे बूढ़ बियाय नउन देस निराकुल जाय' अर्थात् अगहन में वर्षा और वृद्धा को बच्चा उत्पन्न होने से देश उजड़ जाता है। पूस की वर्षा लाभप्रद होती है: यथा 'जो बरसे पूस आधा दाना आधा भूस' अर्थात् पूस की वर्षा से दाना और भूसा बराबर पैदा होते हैं। पूस में वर्षा न होने पर खेत सींच दिया जाता है। पहली सिंचाई को एकरौनी और दूसरी बार की सिंचाई को दोहरौनी कहते हैं।

७६. सिंचाई के अनंतर पौधे में बियास आने लगता है अर्थात् एक पौधे में कई पौधे निकल आते हैं। पौधों के इस समूह को पँजा कहते हैं। पौधे की बाढ़ को हबसब (हबसना) कहते हैं। इसी भाव से हरे-भरे खेत को हबसल खेत कहते हैं। पौधा जब बढ़ता नहीं और केवल इतना बड़ा होता है कि उसमें कौआ छिप सके तब उसकी बड़ाई का बोध कराने के लिए कौआ ढुकान विशेषण का प्रयोग होता है। यह प्रयोग अच्छी फसल के लिए नहीं किया जाता है।

७७. पूस मास तक पौधा अपनी युवावस्था को प्राप्त हो जाता है और गर्भधारण के योग्य हो जाता है। इस समय पौधे का रंग कुछ पीला पड़ जाता है। इस अवस्था को पुपोटब (पुपोटना) कहते हैं। विशेषण के रूप में इस भाव के लिए पुपोटल शब्द का प्रयोग होता है। बाल के निर्माण की अवस्था को रेंड़ब (रेंड़ना) कहते हैं; इस समय पौधे का वह भाग जहाँ बाल छिपी रहती है मोटी पड़ जाती है। बाल बाहर निकलने को जौ फूटब (फूटना) कहते हैं। बाल के सिरे पर पतले-पतले नोकीले टूँड़ रहते हैं। जिस डंठल में बाल लगी रहती है उसे सींका कहते हैं।

७८. बाल के दाने जब कुछ पोढ़ (पुष्ट) हो जाते हैं तब उन्हें उम्मी कहते हैं और इस दशा को उम्मियाब (उम्मियाना) कहते हैं। उम्मी को ईख की पत्ती से भूँज (भून) कर खाते हैं। भूनी हुई उम्मी को कच्ची मटर के साथ लून

कर भी खाते है। इस खाद्य पदार्थ को भी उम्मी कहते है। जब दाना और पुष्ट हो जाता है तब उसे गदराब (गदराना) कहते है। बालो को गॅड़सा से बाल वर दाना अलग करते हैं और इस दाने को भड़भूॅजे के यहाॅ भुनाकर खाते है। इस भूॅजे हुए दाने को चिउरी अथवा चूरी कहते है। गदरा दाने का सतुवा भी बनता है जिसे गादा को सतुवा कहते है। अच्छे मोटे दाने को रातुल कहते हैं। प्राय: अच्छे दाने के टूॅड की जड़ कुछ लाल दिखाई पड़ती है। जब बाल कुछ और सूख जाती है तब उसके दाने को ददरी कहते हैं। ददरी या जौ के भूने हुए रूप को बहुरी कहते है। ददरी का आटा पीस कर रोटी बनाते है जो बहुत मीठी होती है।

७६. बाल जब बिल्कुल सूख जाती है तब उसका टूॅड सफेद पड़ जाता है और झुक जाता है। इस अवस्था को टूॅड़ मरकब (मरकना) कहते है। ज्यों-ज्यों बाल सूखने लगती है उसके दाने छितराने लगते हैं जिसे बिथरब (बिथरना) कहते हैं। बाल बिलकुल सूख जाने पर लरक (झुक) जाती है। मेड़ पर चलने वाले गरीब लोग बहुधा खेत की बाल तोड़ लेते हैं, इस कार्य को टोटा तोड़ब (तोड़ना) या टोटा नोचब (नोचना) अथवा टोटा मारब (मारना) कहते हैं। बाल टूट जाने के बाद सींक को नरई कहते हैं। पौधे के बिलकुल सूख जाने को तड़कब (तड़कना) कहते हैं क्योंकि सूखे हुए पौधों को काटने पर तड़ तड़ की ध्वनि निकलती है। बहुत अधिक सूखे हुए पौधे को चबायल (चबाया हुआ) कहते हैं। सूखने को रवाब (रवाना) भी कहते हैं।

८०. जौ के पौधे में साधारणतः निम्न रोग लगते हैं—

(क) ढाहा—इस बीमारी में पौधा पीला पड़ जाता है और पत्तियाॅ सूख कर गिर जाती हैं; धीरे-धीरे पेड मर जाता है।

(ख) गेरुई—इस बीमारी मे पौधे का रंग गेरू सदृश हो जाता है इसीलिए इसे गेरुई कहते हैं।

जौ की कोई-कोई बाल काली रहती है, ऐसी बाल को लेढ़ा कहते हैं। कमजोर और पतले जौ की समता लीभी से देते हैं। [अपटन (उपटन) छुड़ाने पर जौ के आवार की जो मैल मे छूटती है उसे लीभी कहते है। क्रिया के रूप मे लिभियाब (लिभियाना) प्रयुक्त होता है।] पौधा जब विकसित न हो कर छोटा ही रह जाता है तब उस दशा को टिसुरियाब (टिसुरियाना) कहते हैं।

८१ जौ की कटिया भी गेहूॅ के बाद होती है। गेहूॅ का पौधा कुछ नरम काटा जाता है। जहाॅ उपजाऊ जमीन नहीं होती और पौधे छोटे-छोटे रह जाते हैं उसी जगह जौ नरम काटा जाता है क्यो कि ऐसे पौधो को मूठी द्वारा पकड़ने में कठिनाई होती है। यदि ऐसे पौधे अधिक सूख जाने पर काटे जायॅ तो दानों के गिरने का भय रहता है।

८२. गेहूँ की अपेक्षा जौ की दँवाई आसान होती है क्योंकि जौ के डंठल गेहूँ की अपेक्षा कहीं अधिक नरम होते हैं। जौ का भूसा भी गेहूँ के भूसे से नरम होता है इसलिए पशु इसे बहुत चाव से खाते हैं।

गेहूँ

८३. गेहूँ के दो मुख्य भेद प्रचलित हैं—एक देसी जिसका बीज स्थानीय होता है दूसरा देसावरी जिसका बीज बाहर से आया है। देसी दो प्रकार का पाया जाता है—

(क) मुड़िया—यह सफेद और गोलछहूँ अर्थात् कुछ गोला होता है। इसकी बाल में टूँड़ नहीं होता है। नुंडा होने के कारण ही इसे मुड़िया कहते हैं। इसे दाउदी भी कहते हैं।

(ख) ललिया—यह लाल रंग का और लमछर अर्थात् कुछ लम्बा होता है। मुड़िया से यह पतला होता है। इसकी बाल में टूँड़ होता है।

८४. गेहूँ की खेती कम होती है क्योंकि गेहूँ सयार नहीं धरता अर्थात् अधिक नहीं पैदा होता। अधिक होने के भाव के प्रदर्शन के लिए सयराब (सयराना) प्रयोग में आता है। गेहूँ के लिए खेत अच्छा होना चाहिए। मटियरा जमीन इसके लिए अच्छी होती है। बहुधा लोग जौ-गेहूँ मिला कर बोते हैं जिसे गोजई कहते हैं।

गेहूँ के बोने का ढंग जौ सदृश है। यह जौ से पहले बोया जाता है। गेहूँ की बोआई चित्रा में की जाती है जब कि जौ स्वाति में बोया जाता है। गेहूँ की सिंचाई भी जौ से पहले होती है। गेहूँ की सिंचाई जब पौधा छोटा ही रहे करनी चाहिए। जौ की अपेक्षा यह सुकुवार (सुकुमार) होता है।

८५. जौ की अपेक्षा गेहूँ हिरार या मिसमसिन अर्थात् ओद काटा जाता है क्योंकि गेहूँ सूखने पर काटने से बाल के दानों के झरने का डर रहता है। गेहूँ की बाल पक जाने पर पके बेल के सदृश हो जाती है जिसे बेलौन्हब (बेलौन्हना) कहते हैं।

गेहूँ की डाँठ जौ की अपेक्षा कड़ी होती है। इसकी पइरि देर में सीझती है। दँवाई करने के बाद जिस बाल में दाना लगा रह जाता है उसे बलुरी कहते हैं।

८६. जौ की भाँति इसमें भी गेरुई और डाहा लगते हैं। लगातार बदली होने से ये रोग होते हैं। इन रोगों में पत्तियाँ गिर जाती हैं और पैदावार मारी जाती है।

मटर

८७ मटर को केराव भी कहते हैं। इसके निम्न भेद पाए जाते हैं—

(क) उज्जरको—इसे बड़की मटर भी कहते हैं। सब मटरों से यह उज्जर (उज्वल) होती है इसीलिए इसे उज्जर या उजरकी मटर कहते हैं।

(ख) ललकी—लाल होने के कारण ऐसा नाम है। इसके फूल भी लाल होते हैं। इसके दानों का छिलका सिकुड़ा हुआ होता है इसीलिए इसे बुढ़िया मटर भी कहते हैं। इसकी पैदावार सब से अच्छी होती है।

(ग) छोटको—छोटी होने के कारण यह नाम है। इसका रंग कुछ हरा होता है। इसकी दाल अच्छी नहीं मानी जाती है।

(घ) अँकरहिया—अँकरी एक लता है जिसके दाने बहुत छोटे होते हैं इस मटर के दाने भी लगभग उसी प्रकार होते है इसीलिए यह नाम पड़ गया है। इस मटर का रंग करछहूँ (कुछ काला) होता है इसलिए इसे करियई मटर भी कहते हैं।

८८ मटर बोने के लिए खेत को बहुत अधिक कमाने की आवश्यकता नहीं पड़ती किन्तु खने हुए खेत मे मटर बोने से उत्पत्ति अच्छी होती है। खने हुए खेत का अरइठ यदि दहारी (अधिक वर्षा) के कारण मिट गया हो तब मटर की उत्पत्ति बहुत अच्छी होती है। सुखनट (सूखा) होने पर मटर की उपज खराब हो जाती है। मटर पैरा तथा खुँटहर दोनों ढंग से बोई जाती है। चित्रा नक्षत्र में इसकी बोआई अच्छी होती है।

८९. मटर के पौधे जब कुछ बड़े हो जाते हैं तब लोग उन्हें खोंट कर उसका साग खाते हैं। खोटने से मटर में बियास आता है। जब मटर के फूलने का समय आता है तब उसे सींच देते है। फूल के साथ छीमी का जो आरम्भिक आकार होता है उसे किचोवा या किचोई कहते हैं। जब किचोवा बढ़कर पुष्ट हो जाता है और उसमें दाना पड़ने लगता है तब उसे पट्टा या पोपटा कहते हैं। अधपके दाने को गदरा कहते हैं। छीमी निकोल (छील) कर अलग किए हुए दाने को गुदुरी कहते हैं। दाने के ऊपर एक छिलका रहता है जिसे खोलरा कहते हैं। गुदुरी पीसने पर खोलरा अलग हो जाता है।

९० छीमी पक जाने पर पेड़ की पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। छीमी पकने को पकठब (पकठना) भी कहते है। मटर की डाँठ को नरी या नरचा कहते हैं। डाँठ सूखने को चबाब (चबाना) भी कहते हैं। मटर का पौधा जब अधिक बढ़ता है पर फलता नहीं तब ऐसी अवस्था को नरीब (नरीना), गजाब (गजाना), गउँजब (गउँजना), गगलाब (गगलाना) अथवा घबाब (घबाना) कहते हैं। मटर का पौधा लता की भाँति फैलता है और एक ही में अरुझा रहता है इसी-लिए इसके उलझे हुये रूप को झकटा या झगड़ा कहते हैं।

६१. मटर का पौधा उखाड़ा जाता है। मटर दाएँ जाने पर जो भूसा निकलता है उसे पतेला कहते हैं। टूटे हुए डंठल को कूटा कहते हैं। जिस छीमी का दाना नहीं निकला रहता उसे छिमउट कहते हैं। इसे पीटकर दाना निकाल लेते हैं। दॅवाई के बाद ओसाई करके दाना अलग कर लिया जाता है। खरिहान में पानी पाकर जब मटर फूल आती है तब उसे डमका कहते हैं।

चना

६२. चना दो प्रकार का होता है एक लाल दूसरा सफेद। लाल चने की उपज अधिक होती है। सफेद चना बहुत कम बोया जाता है। इसकी पैदावार बहुत कम होती है। चने का छिलका पतला और मुलायम होता है।

चने के लिए साधारण खेत चाहिए। ढेलगर खेत में भी चना होता है अतः इसके लिए खेत की बहुत तैयारी नहीं करनी पड़ती है। दोमट जमीन इसके लिए अच्छी होती है। रबी की फसल में यह सर्वप्रथम बोया जाने वाला अनाज है। हथिया नक्षत्र में ही यह बो दिया जाता है। रबी की बोनी (बोआई) की साइत चने से करते हैं। बोने की क्रिया मूठो द्वारा होती है इसीलिए संभवतः प्रथम बोआई को मूठ की साइत कहते हैं। तीसी की बोआई भी पहले होती है। अतः तीसी से भी मूठ लेने की प्रथा है। चना और तीसी दोनो मिलाकर भी मूठ ली जाती है। चना और तीसी साथ मिलाकर भी बोते हैं। तीसी को मेंड़ के अगल-बगल भी बोते हैं। चना की बोआई पैरा और खुँटहर दोनो प्रकार से होती है।

६३ विकास—चना के पौधे का साग खोंट-खोट कर खाया जाता है क्योंकि चना खोंटने से छतनार (विस्तृत) होता है। खोटने के बाद इसमें नए-नए कल्ले निकलते हैं। जिस प्रकार मटर में दाने के लिए किचाआ लगता है और उसके अंदर दाने पड़ते हैं उसी प्रकार चना के दाने के लिए जो कोष होता है उसे ढोंढ़ी कहते हैं। ढोंढ़ी में यथोचित दाना न पड़ने को घोघियाब (घोघियाना) या घोघिलाब (घोघिलाना) कहते हैं। न फलने वाले पेड़ को बंझा तथा जो पेड़ सूख जाते हैं उन्हें उकठा कहते हैं। पेड़ के सम्यक् फलने को लदरि जाब (जाना) कहते हैं। चने का पेड़ उखाड़ कर उसको आग में झुलसते हैं इसे होरहा कहते हैं। होरहा चबाने में सोंध होता है।

६४. चने में निम्न रोग लगते हैं:—

(क) गदहिला—इसके लगने पर पत्तियाँ झड़ जाती हैं।

(ख) दहिया—कटिया हो जाने के बाद जब पौधो में धूर नहीं लगती तब उनके ऊपर एक प्रकार की दही की भाँति भुकुड़ी लग जाती है इसे दहियाब (दहियाना) अथवा भुकुड़ियाब (भुकुड़ियाना) कहते हैं।

इसमें फूल आने के समय माड़ा रोग लगता है और इसके लगने पर पौधा सूख जाता है और दाना बहुत कमजोर हो जाता है।

धान

१०३. धान की दो फसलें होती हैं (१) भदईं अथवा कुआरी (२) अगहनी अथवा जड़हन।

भदईं अथवा कुवारी धान:

भदईं धान के निम्न भेद पाये जाते हैं :—

(क) साठी—यह साठ दिन अर्थात् दो मास में तैयार होता है।

(ख) सेल्हा—यह मटमैले रंग का होता है। इसकी बाल लंबी होती है। माला के फूल की भाँति इसके दाने एक के ऊपर एक बैठे रहते हैं।

(ग) नन्हिया—यह सफेद रंग का नन्हा नन्हा (छोटा) धान होता है।

(घ) रानी काजर—इसका रंग कजरा होता है।

(ङ) बगरी—यह मटमैले रंग का होता है।

(च) बाँस फूल—यह बाँस के फूल की भाँति छोटा होता है।

(छ) मरया—यह नन्हिया से कुछ बड़ा होता है। इसका रंग ललछहूँ (कुछ लाल) होता है।

१०४. जो खेत भदईं धान बोने के लिये छोड़ा रहता है उसे बियास कहते हैं। इसे साधारणतः माघ में खन देते हैं जिससे खेत का घास-पात नष्ट हो जाता है और खेत उपजाऊ हो जाता है। बियास के अतिरिक्त अन्य खेतों में भी धान बोते हैं। वर्षा आरंभ होते ही खेत की घास फरुहा (फावड़ा) या कुदार से छाँट-खोद कर निकाल देते हैं जिसे छँटनो मारब (मारना) कहते हैं। धान के लिये खेत में पानी होना आवश्यक है अतः इसके लिये मटियरा जमीन सबसे अच्छी होती है। वर्षा का पानी खेत में रुके इस उद्देश्य से खेत की मेंड़ बाँध देते हैं जिसे डाँड़-मेड़ करब (करना) कहते हैं।

भदईं धान बोने के दो ढंग है :—

१०५. (१) रसबत की बोआई—वर्षा हो जाने पर खेत जोत कर तैयार करते हैं और जब मिट्टी बोने योग्य फरहर हो जाती है तब बेगा (बिया) छीट कर हेंगा देते हैं, बेगा मिट्टी धर (पकड़) ले इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये खेत को फिर से जोतकर हेंगाते है जिसे मेरउब (मिलाना) कहते हैं। रसबत की बोआई से खेत में घास कम जमती है।

१०६. (२) लेव की बोआई—खेत में पानी लगने (एकत्र होने) को लेउ या लेव कहते हैं। इस समय खेत को जोत-हेंगा कर तब बेंगा छींटते हैं ताकि बेंगा अधिक नीचे न दब जाय। यह बोआई रसबत से अच्छी मानी जाती है।

कभी-कभी बेंगा जम आने पर भी खेत को जोतते और हेंगाते हैं किन्तु इस समय सब जोताई की जाती है, ऐसा करने से खेत का खर-पात नष्ट हो जाता है और उपज में वृद्धि होती है; इस क्रिया को बिदहब (बिदहना) कहते हैं। धान की बिदहनी पानी बरस जाने पर विशेषतः उन खेतों की होती है जो रसबत बोए गये रहते हैं। इस बिदहनी को लेव बिदहब (बिदहना) या लेव मारब (मारना) अथवा लेव हेंगाइब (हेंगाना) कहते हैं। लेव मारने से पानी खेत में भलीभाँति प्रवेश कर जाता है तथा पौधे में वियास आता है।

१०७. फसल के लिये खेत में उगने वाले घास-पात बहुत हानिकर होते हैं इसलिए इन्हें जहाँ तक होता है जमने नहीं दिया जाता और यदि ये जम आवें तो इन्हें निकाल दिया जाता है। घास-पात निकालने के कार्य को निराई, निरवही-निरवाही या सोहनी कहते हैं। सोहनी शब्द का प्रयोग कम प्रचलित है। धान की निराई दो बार की जाती है। एक बार तो तब जब पौधा लगभग एक बीता लम्बा हो जाता है और दोबारा उस समय जब धान रेंड़ने लगता है। दूसरी निरवाही पौधों के बड़े होने के कारण बहुत सँभाल कर करनी पड़ती है। पौधों को हानि न पहुँचे इसके लिये आवश्यक है कि एक सीध में खेत के एक किनारे से दूसरे किनारे तक निराई हो। इस प्रकार निराई होने पर पौधों की एक श्रेणी दूसरी से अलग हो जाती है और बीच में एक मार्ग बन जाता है जैसा कि बालों में माँग काढ़ने से होता है; इस प्रकार निराने को मँगियाइब (मँगियाना) कहते हैं।

१०८. पौधे के कुछ बड़े होने पर उसमें से नए-नए पौधे निकलने लगते हैं जिसे वियास आइब (आना) कहते हैं। एक पौधे में निकले हुए पौधे के समूह को पूँजा कहते हैं। बाल के निकलने के पूर्व डंठल का ऊपरी भाग बाल के कारण मोटा हो जाता है। विकास की इस अवस्था को रेंड़ब (रेंड़ना) कहते हैं। बाल बाहर आने को धान फूटब (फूटना) कहते हैं। सेल्हा और साठी धान फूटता नहीं तभी पक जाता है। जो धान फूटता है उसे दलिहन कहते हैं।

कोष में गर्भाधान संस्कार के निमित्त फूल के प्रवेश करने को फूल घोंटब (घोंटब=निगलना या पी जाना) कहते हैं। यह क्रिया साधारणतः दुपहरिया (दोपहर) में होती है जब कि तेज हवा के बहने से फूल झड़ते हैं। कोष में दाने की पूर्वावस्था दूध के रूप में होती है। अतः फूल घोंटने को दुद्धा लेब (लेना) या दुद्धा घोंटब (घोंटना) भी कहते हैं।

१०९. कभी-कभी धान में एक प्रकार की माछी (मक्खी) लगती है जो दानें को खा जाती है। यह दाने के रस को चूस लेती है। इसे गन्धौरी (गंधौरी) कहते हैं इसे स्पर्श करने पर हाथ बदबू करने लगता है। इससे बचने के लिए, जिस दिन मघा नक्षत्र लगता है उस दिन, खेत के चारों कोनों पर गोबर रख देते हैं। नीम की खली खेत में छिड़कते हैं। कमजोर धान को, जिसमें दाना नाम मात्र रहता है, पइया या पइयाफॉफर कहते हैं।

११०. धान की कटिया जौ-गेहूँ की भाँति लवनी प्रणाली पर होती है। धान कट जाने पर उस खेत को धनखर या धनहा कहते हैं। यदि खेतों में पानी लगा रहता है तो डाँठ को काट कर चारपाई पर रखते है ताकि पानी झर जाय। डॉठ सुखाकर बोझ बनाते हैं।

धान कट जाने पर खरिहान में गाँज के रूप में रक्खा जाता है किन्तु इसका गाँज जौ गेहूँ की भाँति नहीं बनाया जाता है। इसमें बाल जौ-गेहूँ की भाँति बैठा-बैठा कर नहीं रक्खी जाती बल्कि ओह कर (अस्त-व्यस्त करके) रक्खी जाती है। धान कुछ हिरार (हरा) काटा जाता है, यदि यह अधिक सूखने पर काटा जाय तो दानों के झर जाने का भय रहता है। ओह कर रखने से गाँज में हवा और धूप का प्रवेश होता रहता है और डॉठ (डंठल) के लगने (शीत के कारण दागी होना) का भय नहीं रहता।

दॅवाई के फल स्वरूप डंठल से धान अलग हो जाता है। धान अलग होने पर डंठल को पुआरा (पयाल) कहते हैं यह मवेशियों के चारे का काम देता है। पुआरा का बोझ उठाने के लिये उसी को रस्सी बनाते हैं जिसे गाईठ या गुइॅठ कहते हैं।

दॅवाई के बाद राशि को ओसाते हैं। ओसाने से धान में जो पइया (खोखला धान) खर-पात और गरदा (गरद) होता है निकल जाता है। पुआल के छोटे-छोटे टुकडे को पुरेसा, या पुरेसी या पोरसी कहते हैं। दीवार पर लगाने के लिए जो मिट्टी बनाई जाती है उसमें पुरेसी डालते हैं इससे मिट्टी फटती नहीं।

अगहनी अथवा जड़हन धान:

१११. जडहन धान के निम्न भेद पाये जाते हैं—

(क) सड़देइया—यह अच्छे धानों में है यह सहद (शहद) के रंग का ललछहूँ होता है।

(ख) सेल्ही—यह लम्बा व पतला धान है। यह सफेद और लाल दो रंगों का पाया जाता है।

(ग) सुगापंखी—(सुग्गा पंखी) यह सुग्गे के पंखे की तरह हरे रंग का होता है।

(घ) भिघावर—यह सबसे पहले तैयार होता है इसका टूँड़ अपेक्षाकृत बड़ा होता है।

(ङ) बोग—यह एक प्रकार का मोटा धान है। यह काला और उज्जर (उजला) दो रंग का होता है।

(च) बोरो—यह नदी में बोया जाने वाला धान है।

११२. जड़हन धान के लिए पानी बहुत ही आवश्यक है अतः खेत ऐसा होना चाहिए जिसमें ऊँची मेंड़ें बनी हों और पानी रुकता हो।

जड़हन की बोआई के दो अंग हैं—(१) बेहन डालना (२) रोपना।

असाढ़ में धान की बेहन, किसी अच्छे खेत में जहाँ सिंचाई की सुविधा होती है, डालते हैं। इस खेत को बेहनडर कहते हैं। बेहन लेव की अवस्था में अच्छी होती है। रम्मथन के ढंग पर बेहन डालने के लिए धान को दो-तीन दिन पानी में भिगो कर रखते हैं। बेहन के लिए पानी अधिक न चाहिए क्योंकि खेत में पानी लगने से बेहन पीली और कमजोर हो जाती है जिसे लरुआब (लरुआना) कहते हैं। अच्छे खेत में तीन माह में बेहन तैयार हो जाती है।

बेहन से तैयार पौधे को जरई कहते हैं। यही जरई फिर खेत में बैठाई जाती है जिसे जरई रोपब (रोपना) या जरई बैठाइब (बैठाना) कहते हैं। इसे बीया रोपब (रोपना) या बेहन रोपब (रोपना) भी कहते हैं। कियारी में बैठाये जाने के कारण इस क्रिया को कियारी बैठाइब (बैठाना) भी कहते हैं। रोपे हुये धान को रोपहँड़ कहते हैं। एक गलिया (अँगूठे और तर्जनी के बीच) में जितनी बेहन एक बार में आती है उतनी एक बार में उखाड़ते हैं। जब दो गलिया बेहन उखाड़ लेते हैं तब उसकी एक अँटिया बाँध देते हैं। धान के प्रत्येक पौधे को ताग कहते हैं। रोपाई के समय चार छः ताग मिलाकर एक स्थान पर गाड़ते या रोपते हैं। जितने ताग एक जगह रोपे जाते हैं उनके समूह को चुटकी, बान्ह या पूँजा कहते हैं। अतः रोपने की इस क्रिया को पूँजा गाड़ब (गाड़ना) भी कहते हैं। रोपाई की क्रिया ठीक हो इसके लिए खेत को खूब जोतते हैं। छोटे खेत में कुदार से गोंड़ कर रोपते हैं। जब खूब गिलई (गीलापन) हो जाती है तब रोपाई की जाती है। रोपाई के उपरांत बेहन पाली पड़ जाती है और जमीन पकड़ लेने पर हरियराती (हरी होती) है जिसे करपब (करपना) कहते हैं। जहाँ बेहन गल या सड़ जाती है वहाँ नई बेहन खिरब (बैठा) देते हैं।

जितनी अच्छी जोताई होगी उतनी ही जल्दी बेहन जड़ पकड़ेगी। रोपाई का कार्य बहुधा स्त्रियाँ करती हैं। रोपाई के लिए ऐसा समय अच्छा होता है जब बदली हो लेकिन वर्षा और तेज हवा न हो। तेज धूप से बेहन के गल जाने का भय रहता है। तेज हवा रहने पर बेहन के गाड़ने में भी कठिनाई होती है। जिधर की हवा होती है उसी ओर से रोपने का कार्य आरंभ करते हैं। तीन दिन में बेहन जड़ पकड़ लेती है।

खेती को हानि पहुँचाने के लिए दुश्मन खेत में झॉखर डालकर पौधो को खींचते है जिससे जड़ें उखड़ जाती हैं। जब वर्षा समुचित नही होती तब धान मे दाने नही पड़ते। ऐसे कमजोर पौधों को मुँगारा कहते है। यह पशुओं के चारे के काम में आता है।

जड़हन मे खुरपी से निराई नहीं होती जमी हुई घास को हाथ से उखाड़ कर फेंक देते हैं।

११३. जड़हन में चरका रोग लगता है। इसमें पत्तियाँ सफेद पड़कर गिर जाती हैं। एक अन्य रोग बँकवा है जिसमे एक प्रकार का कीड़ा पत्तियों को काटकर गिरा देता है। खैरा रोग में पत्तियों पर हलके खैरा रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। कुछ लोग इसके इलाज के लिए सुअरों को खेत मे दौड़ाते हैं।

भदईं धान की भाँति जड़हन की भी कटाई होती है।

११४. जड़हन धान के गाँज को पही कहते हैं। इसमें बालें बाहर निकली रहती हैं। जड़हन धान पीट या पटक कर निकाला जाता है। पटकने के बाद धान अलग हो जाने पर पोरा या पुअरा (पुआल) का आँटा बाँध देते हैं। लंबे पुअरा को नर्रा कहते हैं। पीटे हुए धान के पुअरा का आँटा बाँध देते हैं जिसे ऑटऊ पुअरा कहते हैं। बिखरे हुए पुअरा को छिटऊ पुअरा कहते हैं।

सनई

११५. सनई की खेती से खेत खदीला हो जाता है क्योंकि सनई बहुत अच्छी खाद मानी जाती है। सनई को केवल खाद की दृष्टि से भी बोते हैं, ऐसी दशा में सनई का पौधा जब कुछ बडा हो जाता है तब उसे हेंगा से हेंगा देते हैं।

अरहर की भाँति यह भी अफार खेत मे बोया जाता है। वर्षा आरम्भ होते ही पैरा छीटकर बो देते हैं। तीन-चार दिन में सनई जम आती है। भादों के अन्त तक यह काट ली जाती है। इसके काटने के लिए दँतारा हँसुवे का प्रयोग किया जाता है।

ऐसा अनुभव है कि असरेखा (अश्लेषा) नक्षत्र की वर्षा सनई की पलई या माथ को मार देता है। पलई मारी जाने पर पेड़ छोटे होते हैं और पेड़ छोटे होने पर रेशे भी छोटे होते हैं। अरहर की भाँति सनई के पेड़ भी कभी-कभी उकठ जाते हैं।

११६. सनई की खेती अधिकतर सन की दृष्टि से की जाती है। सन को सुतली भी कहते हैं। पौधे से सुतली को अलग करने के लिए निम्न पद्धति है। जब पौधा अपनी युवावस्था को प्राप्त होता है उस समय पौधों को काटकर आँटा

(१) सरौतिया—यह सरकंडा की भाँति पतली होती है और संभवतः इसी आधार पर इसका यह नाम है।

(२) हड़वा या हड़हिया—यह हड्डी सदृश सफेद और कडी होती है और इसी आधार पर इसका नामकरण हुआ है।

(३) रेवरा या रेवरवा—यह रेवरा मिठाई की भाँति सफेद, मोटी तथा मीठी होती है।

(४) वड़ौंखा—यह पुरानी ईखों मे सब से बड़ी और मोटी होती है इसके पोर भी बड़े-बडे होते हैं।

(५) मनगो—यह पुरानी ईखों में सब से अच्छी ईख मानी जाती है। यह चुहने (चूसने) और पेरने दोनों कामों के लिए उपयुक्त होती है। यह मोटी और सफेद रंग की होती है पर गाँठों के पास कजरी (कालापन) होती है।

(६) बजड़हिया—यह बाजड़ा (बाजरा) के पौधे सदृश होती है। यह खरीफ फसल के साथ बोई और काटी जाती है। बाजड़े की भाँति इसमें भी बालें होती है। जिसके दाने बीज का काम देते हैं। यही ईख ऐसी है जो अन्न की भाँति बीज से पैदा होती है।

(७) कतारा या केतारा—यह लाल रंग की एक मोटी ईख है।

(८) पौंढा—यह सब से मोटी सफेद रंग की ईख है।

इन पुरानी ईखों में अंतिम दो ईखें ऐसी हैं जो अपनी मोटाई के कारण पेरी नहीं जातीं, केवल चूसने के योग्य होती हैं।

११६. नई ईख का प्रचार सरकारी कृषि विभाग द्वारा होता है। अतः प्रति वर्ष एक-दो नई ईखों का प्रचार देहात में होता रहता है। नीचे इस समय प्रचलित नई ईखों का नाम दिया जा रहा है। जिन ईखों का प्रचार कृषि-विभाग द्वारा होता है उनका उनके यहाँ नम्बर होता है किन्तु किसान इन नंबरों से न तो परिचित होता है और न उसे इनके जानने की आवश्यकता पड़ती है। किसान रूप-गुण के आधार पर ईख का नाम रख लेता है जो धीरे-धीरे गाँव में प्रचलित हो जाता है। नीचे कुछ नई ईखों के नाम उनके सरकारी नम्बरों के साथ दिए जा रहे हैं जो रोचक होंगे—

(१) नरमा (नं० २९०)—यह नरम होती है। चूसने और पेरने दोनों काम के लिए यह बहुत अच्छी ईख है।

(२) भुवहिया (नं० ३१२)—इस ईख में सरपत की भाँति भुआ फूटता है।

(३) ललकी (नं० ३३१)—इसका छिलका कुछ लाल होता है।

(४) पियरकी (नं० ३७०)—यह कुछ पीले रंग की ईख है।

(५) लकड़हिया (नं० ३१३)—यह लकड़ी की भाँति कड़ी होती है।

(६) कइनहिया (नं० १०६)—यह बाँस की कइन सदृश पतली होती है।

(७) बाँसगन्ना या बाँस फारम (नं० ४२१)—इसका छिलका बाँस की तरह कड़ा होता है।

(८) क्लेक्टरहिया या कलेटरिया (नं० ११२) कलक्टर द्वारा प्रचार किए जाने के कारण यह नाम पड़ गया है।

(९) सुसइटिया या सुरसतिया—कोआपरेटिव सोसाइटी (सहयोग समिति) द्वारा प्रचार किए जाने के कारण यह नाम पड़ा है।

(१०) दुलहिनिया—इसका गेड़ा (माथ पर की पत्तियाँ अन्य ईखों के गेंड़े से हरा-भरा होता है और नीचे की ओर झुका रहता है। इसकी यह अवस्था घूँघट युक्त स्त्री की समता करता है और इसी आधार पर इसका यह नाम पड़ गया है। इसे कहीं-कहीं दुलारमती भी कहते हैं।

(११) दलबादर—इसकी पत्ती अन्य ईखों से चौडी होती है तथा गाँठो के पास इसमें कालापन होता है जो काले बादल के समूह की समता करता है।

(१२) बाबूमिश्री—यह मिश्री की भाँति मीठी होती है।

१२०. ईख के लिये दोमट जमीन अच्छी होती है। मटियरा की ईख का रस गाढ़ा और मीठा होता है। इसमें गुड़ अधिक पड़ता है। और इस गुड़ में दाना भी अच्छा पड़ता है। इस गुड का रंग अपेक्षाकृत काला होता है।

ईख के खेत की कमाई बहुत अधिक करनी पड़ती है। अच्छे किसान खेत को खन कर तथा उसमें खाद्-पाँस डाल कर तैयार करते हैं। ईख के लिए भेंड़-बकरी की खाद बहुत अच्छी होती है। खाद के लिए खेत में ईख की पुरानी एवं सड़ी हुई पत्ती, जिसे कराइन कहते हैं, डाली जाती है। ईख के निम्न प्रकार के खेत होते हैं—

(क) पेड़ी—ईख कट जाने पर जड़ का जो भाग जमीन में शेष रहता है उसे पेड़ी कहते हैं। इसी आधार पर इस खेत को भी पेड़ी कहते हैं। दुबारा ईख काटने के लिए पेड़ी छोड़ने को पेड़ी या पेड़ा राखब (रखना) कहते है।

(ख) अठवाँसा खेत—जो खेत असाढ़ (आषाढ़) से माघ अर्थात् आठ मास तक बोने के लिए तैयार किए जाते हैं उन्हें अठवाँसा (आठ मास वाला) कहते हैं।

(ग) उखाव—जो खेत खरीफ कट जाने के बाद ईख बोने के लिए तैयार किए जाते हैं उन्हे उखाव कहते हैं।

रबी कटने के बाद चैत में भी ईख बोई जाती है किन्तु इस प्रकार के खेतो का कोई विशेष नाम नहीं है। ऐसा वे ही लोग करते हैं जिनके पास खेत की कमी रहती है।

१२१. औला—छोटकी ईख बीज के लिए नाप कर बिकती है। इसके नाप के पैमाने को औला कहते हैं। एक औला बराबर चार पाई होता है और एक पाई बराबर सौ हाथ। हाथ के माप के लिए एक सीधी पतली लकड़ी ले लेते हैं जो वस्तुतः

एक हाथ और चार अंगुल होती है। एक पाई ईख नाप चुकने पर उसे गाही (गाही=पाँच) मे गिन डालते हैं फिर एक पाई मे जितनी गाही ईख होती है उतनी ईखों का अलग-अलग ढेर लगाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक ढेर एक पाई के बराबर समझा जाता है।

बो आ ई :

१२२. बीज को बीया बोलते हैं अतः बोने के लिए जो ईख होती है उसे भी बीया कहते हैं। बीज की दृष्टि से ईख का जरखर (जड़ का भाग) तथा अँगोर (आगे का भाग) अच्छा होता है क्योंकि इसमें गाँठे नजदीक-नजदीक होती है और इसमे अंकुर जल्दी निकलता है। बिचखड़ (बीच का भाग) देर में जमता है।

बीया बोने के दो नियम है। कुछ लोग ईख भिगो कर बोते है और कुछ लोग यों ही बिना भिगोए बोते है। भिगो कर बोई जाने वाली ईख कुछ समय के लिए पानी मे बोह (डुबो) देते हैं। इसे बोह वाली और जो यों ही बिना भिगोए बोई जाती है उसे अखरा कहते है; बोह वाली जल्दी जमती है।

बोने के लिए बीया को गँड़ास, गँड़सा, गेंड़सा या गँड़ासा (एक औजार) से टुकड़ों मे काट डालते हैं। एक टुकड़े में साधारणतः तीन चार गाँठें होती हैं। इन टुकडों को पताँड़ या पैंड़ कहते हैं और इन्हें काटने की क्रिया को पताँड़ मारब (मारना) कहते है। पताँड़ जब तुरन्त नहीं बोना होता तब उसे एक खाता (गड्ढा) मे नीचे-ऊपर पतई (पत्ती) रख कर ढक देते हैं और उस पर पानी का छिड़काव किया करते है ताकि तरी बनी रहे। इस प्रकार पताँड़ रखने को खाता मारब (मारना) कहते हैं।

१२३ हल द्वारा खेत में जो निशान बनता है उसे साधारणतः कूँड़ कहते है किन्तु ईख की बोआई में इसे मूहिं कहते हैं। मूहिं को चकली (चौड़ा) बनाने के लिए हल में बरही (हेंगा में प्रयोग आने वाली लगभग पाँच हाथ लम्बी रस्सी) या ईख के गेंड़ा को चोटी की तरह गुहकर बाँधते हैं। इस बँधे हुए सामान को लेदी कहते हैं। लेदी बँधे हुए हल को पहिया कहते हैं। जो साधारण किसान हैं वे इसी हल से अपना काम चला लेते हैं किन्तु अच्छी बोआई के लिए तीन हल होने चाहिए। इनमें से एक हल बोई हुई मूहिं को भाठने के लिए होता है जिसे भठुआ हल कहते है। एक दूसरा हल मिट्टी छीन (काट) कर नई मूहिं बनाता है जिसे छिनुआ हल कहते हैं। इसके पीछे उपर्युक्त पहिया हल चलता है जिसका कार्य छिनुआ द्वारा बनाई हुई मूहिं को झारकर (मिट्टी बाहर कर) चकली बनाना है। पहिया घूम जाने के बाद उसी मूहिं मे पताँड़ बोया जाता है।

१२४. ईख बोने का ढंग यह है कि एक आदमी मूहिं में थोड़ी-थोड़ी दूर पर पताँड़ गिराता चला जाता है और दूसरा आदमी उसे समुचित ढंग से गाड़ता

आँत में तरी चाहिए अन्यथा पौधों को धौंका (लू) मार देता है। मृगशिरा नक्षत्र की तपन (गर्मी) पौधे को सुखा देती है, कहावत है "मृगडाह जब तपै अँगारा, सोइ किसान जो पोय सम्हारा।" अर्थात् मृगशिरा की दाह से जिसने पोय की रक्षा कर ली वही किसान है। इसके उपरांत आर्द्रा में खेत की गोड़ाई खूब की जाती है। पुष्य की तपन ईख के लिए अच्छी मानी जाती है कहावत है, "जब तपै पुक्ख, तब होये उक्ख।" इस समय की सिंचाई बहुत लाभप्रद होती है। ईख के लिए सिंचाई के सम्बन्ध में कहा गया है, "तीन कियारी तेरह गोड़, तब ताका हौदा की ओर" अर्थात् तीन कियारी सींचने और तेरह बार गोड़ने पर ही रस से भरे हौदे की ओर देखिए।

गोड़ाई :

१२७. सिंचाई के बाद गोड़ाई आवश्यक है। कियारी देने के बाद जब पहली गोड़ाई की जाती है तब खेत मे बनी कियारियाँ गिरा दी जाती हैं। इसीलिए इस गोड़ाई को कियारी गिराइब (गिराना) कहते हैं। इसके बाद होने वाली दूसरी गोड़ाई को एकरसा गोड़ाई कहते हैं। यह गोड़ाई खेत रसगर रहने पर की जाती है। सिंचाई के लगभग तीन दिन बाद यह गोड़ाई की जाती है। यह गोड़ाई उस समय होनी चाहिए जब खेत की मिट्टी लदफद (गीली) हो ताकि गोड़ते समय कुदार में मिट्टी न लगे। मिट्टी इतनी सूखी भी न हो कि ढेले करेर (कड़े) पड़ गये हों। इस समय के लिए बरकल (न सूखी और न गीली) मिट्टी होनी चाहिए। ऐसी मिट्टी गोड़ते समय बराबर से टूटती है और भुरभुरी हो जाती है। अतः एकरसा गोडाई बहुत ताव पर होनी चाहिए। यदि गोड़ाई में देरी हुई तो खेत की नमी भँै (नष्ट हो) जाती है और खेत बइठ (दब) जाता है; मिट्टी सूखने पर खेत ठनक जाता है। जब खेत की एकरसा गोड़ाई यथोचित समय पर नहीं होती तब कहते हैं कि खेत एकरसिगा अर्थात् ताव आने पर एकरसा गोड़ाई न होने से खेत बिगड़ गया। ऐसे खेत की उपज अच्छी नहीं होती है। एकरसा गोड़ाई के अतिरिक्त अन्य गोड़ाइयों को धुरियाइब (धुरियाना) कहते हैं। इनका उद्देश्य खेत की मिट्टी को पोली तथा नरम बनाए रखना है। जब खेत में पोय बड़ी-बड़ी हो जाती है और हेंगाने से उसके टूटने का भय रहता है तब गोड़ने के बाद खेत हेंगाते नहीं बल्कि पैर से मिट्टी को पैंतर (सम कर) देते हैं। इसे पैंतरब (पैंतराना) या लतिआइब (लतियाना) कहते हैं।

पौधे का विकास :

१२८. प्रथम पोय निकलने के बाद जड़ में से धीरे-धीरे कई नई-नई पोयें निकलती हैं। इस प्रकार पौधे का विस्तार होता है जिसे बियास आइब (आना) कहते हैं। पोय बढ़कर जब करेर भनाने लगती (कड़ी हो जाती) है तब उसे डँड़वत कहते हैं। एक पताँड़ में से जितनी ईखें पैदा होती हैं उनके समूह को

थान कहते हैं। ईख बढ़ जाने पर उसके गिरने का भय रहता है इसलिए मूहिं पर अलग-बगल से मिट्टी चढ़ा देते हैं इसे मूहिं चढ़ाइब (चढ़ाना) कहते हैं। ऐसा करने से जड़ मजबूत हो जाती है। लेकिन इतने पर भी जब ईखें अपने बोझ से गिर जाती हैं तब थोड़ी-थोड़ी ईखों के समूह को गेंड़ा की सहायता से बाँध देते हैं। गोंयड़ खेत की ईख अधिक लम्बी होती है क्योंकि इसमें खाद अधिक रहती है। गोंयड़ की ईख का रस पतला और फीका होता है। ऐसी ईख को लपचा या लपची कहते हैं। कुछ गोंयड़ खेतों की ईख का रस खारा भी हो जाता है।

जिस खेत में देंवका (दीमक) होते हैं उसमें खेती को बहुत हानि होती है। क्योंकि दीमक पताॅड़ को ही खा डालते हैं। इससे बचने के लिए पताॅड़ को हींग के घोल में डुबोकर बोते हैं। लेकिन इतने पर भी दीमक हानि पहुँचा देते हैं। नीम की खली डालने से भी दीमक नष्ट होते हैं। दीमक लगने पर ईख उकठ (सूख) जाती है।

कहा जाता है कि चित्रा नक्षत्र की वर्षा से ईख का गेंड़ा (सिरे की पत्तियाँ) मारा जाता है; कहावत है "चित्रा के बरसले तीन का नास; साली, सक्कर, मास।" अर्थात् चित्रा की वर्षा से साली (शालि), सक्कर (शक्कर) तथा मास (माष-उड़द) को हानि पहुँचती है।

ईख के रोग :

१२६. ईख में निम्न रोग लगते हैं—

(१) कारो—एक प्रकार का कीड़ा है जो ईख के गेंड़ा को हानि पहुँचाता है। इसके लगने पर गेंड़ा धीरे-धीरे सूख जाता है।

(२) फनगी—(पतिंगा) इनका प्रकोप जिस वर्ष होता है उस वर्ष ईख की खेती को बहुत हानि होती है। कहते हैं जिस वर्ष टिड्डी का प्रकोप होता है उसी वर्ष वर्षा में फनगी की उत्पत्ति होती है। वर्षा के अंत के साथ इनका भी अंत हो जाता है। ऐसा विश्वास है कि टिड्डी के बीट से इनकी उत्पत्ति होती है। इनके लगने से ईख का गेंड़ा नष्ट हो जाता है और ईख सूख जाती है।

(३) पिहिका—इस रोग में गेंड़े के बीच का नरम भाग सूख जाता है। इस नरम भाग को सींका कहते हैं। ऐसी अनुभव है कि फागुन की बोई हुई ईख में यह अधिक लगता है।

(४) कानी—इस रोग से ईख का भीतरी भाग कहीं-कहीं लाल पड़ जाता है और ईख का रस दूषित हो जाता है। ऐसी ईखों में रस भी कम हो जाता है। इनको कानी, कनही अथवा किनही कहते हैं।

(५) लवाही—इस रोग के लगने पर ईख लाल पड़ जाती है और सूखकर चिचुक (सिकुड़) जाती है। यह ईख के लिए एक प्रकार का सूखा रोग

है। ऐसी ईखों में रस नाममात्र रह जाता है और किसान को बहुत हानि होती है। कहा जाता है कि जब सियार ईख काट देता है तब लवाही रोग हो जाता है।

मकरा

१३०. मकरा को मेडुआ कहते हैं। मेडुआ के लिए किसी भी ढंग की जमीन हो काम चल जाता है यहाँ तक कि ऊसर में भी यह हो जाता है। एक-दो बाह जोतने के बाद बेंगा छीट कर हेंगा देते हैं। जब पौधा कुछ बड़ा हो जाता है तब खेत बिदह देते हैं। आवश्यकता पड़ने पर निरवाही भी की जाती है।

मेडुआ जब पक जाता है तब उसे हथेली से मींजकर और उसके छिलके को फूँक कर दो-चार फाँक, स्वाद के लिए, खाते हैं इस प्रकार फाँक कर खाने को भाका कहते हैं।

१३१. फसल तैयार होने पर धान की तरह लवनी-प्रथानुसार कटिया होती है। साधारणतः अरहर के साथ इसे बोते हैं ; धान के साथ भी कुछ लोग छिटका कर बो देते हैं किन्तु इसमे धान की फसल ही मुख्य होती है। मकरा तैयार होने पर इस की बाल को हँसुआ से फाँक (काट) लेते हैं। शेष भाग धान के साथ कटता है। इसकी डाँठ को मेडुरी कहते हैं।

कटिया होने पर जब मेडुआ घर पर आता है तब डाँठ से वाल को हँसुआ द्वारा काट कर अलग कर लेते हैं। फिर बाल को एक-दो दिन पड़ा रहने देते हैं ताकि वह औंस जाय। औंसने से उसमें गरमी पैदा हो जाती है फिर उसे खटिया पर रख कर दोनों हाथों से दर्रते हैं जिससे दाना अलग हो जाता है। बाल से दाना अलग हो जाने पर शेष भाग को खूखा या खूदी कहते हैं। यदि बाल भली-भाँति पकी न हो और काटकर कई दिन पड़ी रह जाय तो उसके ममस (गर्मी से खराब होना) जाने का भय रहता है जिससे स्वाद में अन्तर पड़ जाता है।

ज्वार

१३२. इसे जोन्हरी, मकई तथा मक्का बोलते हैं। इसके तीन भेद पाये जाते हैं :

१) उजरकी (उज्ज्वल रंग की) (२) ललकी (३) पियरकी। इनमें उजरकी बड़े दाने की और अच्छी होती है। उजरकी का एक भेद गिरदा है जिसका प्रचार थोड़े दिनों से है। यह बड़े दाने की होती है। इसका पेड़ भी मोटा होता है।

यह मदई फसल का एक मुख्य अनाज है। किसी भी खेत में दो-तीन गाह की जोताई के बाद यह छुट्टर से बिड़र-बिड़र (दूर-दूर) बोया जाता है।

१३३. जोन्हरी के पौधे में गाँठों पर बाल निकलती है; बाल में जो पके बार (बाल) की तरह रेशा निकला रहता है उसे पूई कहते हैं। बाल के ढकने वाले छिलके को खूही या खूट्टा कहते हैं। बाल का दाना जब तक बहुत मुलायम रहता है तब तक उसे दुद्धा कहते हैं। बाल पक जाने पर उसे मुट्टा या होरहा कहते हैं। दाना छोड़ाने (अलग करने) पर जो भाग बचता है उसे खुखुड़ी या खुखुंडी कहते हैं। जिस बाल में कम दाना पड़ता है उसे गंडा या गंडहिया कहते हैं।

जोन्हरी के पौधे में पुलुई सिरे) पर जीरा फूटता है जिसे जीरा निकरब (निकलना) या जीरा लेब लेना) या जीरा फूटब फूटना) कहते हैं। इस समय पौधे को पानी की अत्यन्त आवश्यकता होती है। यदि इस समय पानी न मिले तो जीरा नष्ट हो जाता है जिसे जीरा मसकब (मसकना) कहते हैं। जीरा मसक जाने से पौधे को बड़ी क्षति होती है और पैदावार नहीं के बराबर होती है। बाल टूट जाने पर तने को सेंठा, लकठा या लट्ठा कहते हैं। जोन्हरी की सोर (जड़) पक्षी के चंगुल की भाँति होती है इसलिए इसे चंगुल कहते हैं और सोर फेंकने को चंगुल फेंकब (फेंकना) कहते हैं।

जोन्हरी के लिए दो गोड़ाई आवश्यक है। आवश्यकतानुसार इसे पर निराई भी की जाती है।

जोन्हरी कट जाने पर उस खेत को जोन्हराँटा कहते हैं।

सावाँ

१३४. सावाँ के दो भेद पाये जाते हैं (१) छोटका (छोटा) सावाँ (२) बड़को (बड़ा) सावाँ। यह बहुत हलका दाना है। बोने के समय यदि तेज हवा हुई तो बेंगा (बीज) कहीं अधिक गिर जाता है और कहीं कम; फल-स्वरूप खेत में कोई पहँटा (खेत का भाग) विशेष जम जाता है और कोई कम; ऐसे खेत को पहँटाह कहते हैं। सावाँ में धूल मिलाकर छींटते हैं ताकि वह हवा से न उड़े।

सावाँ का पौधा जब कुछ बड़ा हो जाता है तब खेत बिदह दिया जाता है। इससे वर्षा होने पर खेत में पानी भली प्रकार बँध जाता है और पौधे में वियास आता है।

१३५. इसकी कटिया और दवाँई धान की भाँति होती है। जो थोड़ा-बहुत दाना निकालना चाहते हैं वे लतिया कर दाना अलग कर लेते हैं। इसकी डाँठ को **सहेंड़ी** कहते हैं।

धान की ही भाँति यह ओसाया जाता है जिससे दाना अलग और छिलका तथा पत्तियाँ अलग हो जाती हैं। सावाँ के खोखले दाने को **भाभा** कहते हैं। सावाँ कटे खेत को **सौंहट** या **सौंहटा** कहते हैं।

पान

१३६ पान के निम्न भेद पाये जाते हैं—

(१) **साँची**—साँची के आधार पर यह नाम है।

(२) **कपुरी**—इसमे कपूर की भाँति सुगध निकलती है।

(३) **बँगला**—बंगाल के आधार पर यह नाम पड़ा है।

(४) **महोबिया**—महोबा के आधार पर यह नाम पड़ा है।

(५) **देसावरी**—स्थानीय किस्म के पानों के अलावा जितने भी पान पाये जाते हैं वे देसावरी कहलाते हैं।

(६) **देसी**—स्थानीय पान के किस्म को कहते हैं।

१३७ पान के लिए मटियरा मिट्टी चाहिए क्योंकि इस मिट्टी मे नमी बनी रहती है। पान **भीटा** (ऊँचे स्थान) पर लगाया जाता है। पान की खेती के लिए पानी तो चाहिए पर पानी रुकना न चाहिए। वर्षा का पानी बह जाय ऐसी जगह पान के लिए उपयुक्त होती है। पान को धूप भी अधिक न लगनी चाहिए। पान लता की भाँति चढ़ने वाली वस्तु है। इन सभी दृष्टियों से पान के लिए छप्पर बनाना पड़ता है। छप्पर थूनों के सहारे रहता है। छाजन सरपत की होती है। इस छप्पर को **माड़ो** कहते हैं। यह छाजन इतनी घनी नहीं होती कि सूर्य का प्रकाश रोक सके। पान बोने का कार्य **बरई** करते हैं इसीलिए पान के **भीटे** का नाम **बरइठा** भी है। टाटी द्वारा इसे चारों ओर से घेर देते हैं। पान की श्रेणियों को **आँतर** कहते है। आँतरों के बीच में आने-जाने के लिए जो स्थान रहता है उसे **पह** या **पाहा** कहते हैं। पान की लतर चढ़ाने के लिए आँतर में सरकंडे गाड़े जाते हैं जो छाजन के ऊपर तक निकले रहते हैं।

१३८. चैत-बैसाख में पान बोया जाता है। बोने के पूर्व आँतर को सींच कर गोड़ते हैं। खाद के लिए नीम की खली डालते हैं। जब मिट्टी तैयार हो जाती है तब उसमें नाली बनाई जाती है। नाली में पान की लतर (लता)

बैठाई जाती है। लता का टुकड़ा लगभग एक हाथ लंबा होता है। लता लगाने के समय पान का पत्ता नहीं दबने पाता। यह पत्ता बाद में नए पत्तों के निकल आने पर तोड़ लिया जाता है। यह पुराना पान होने से महँगा बिकता है। इस पुराने पान को पेड़ी का पान कहते हैं क्योंकि बोने के लिए जो पान की लता सुरक्षित रखी जाती है उसे पेड़ी कहते हैं। पान का पौधा लगाने के बाद उसे घास, सरपत या ईख की पत्ती से ढक देते हैं। इससे धूप की बचत होती है। ढकने के बाद उस पर दिन में दो बार पानी का छिड़काव करते हैं। इससे तरी बनी रहती है।

१३९ पान लगाने के लगभग चार दिन बाद उसकी गाँठों पर अँखुए निकल आते हैं। अँखुआ निकलने के बाद पौधे को ढाँकने वाली पत्तियाँ हटा ली जाती हैं। अँखुआ बढ़ते ही उसे सरहरी (सरकंडा) पर चढ़ा देते हैं। इस क्रिया को पान मोरब (मोड़ना) कहते हैं। पान की खेती में बहुत परिश्रम करना पड़ता है। खाद डालना, गोड़ना, पानी देना तथा पान उतारना (तोड़ना) सभी क्रियाओं में परिश्रम और सावधानी चाहिए। खाद के लिए सरसों की खली भी प्रयोग में आती है। नया पान गङ्गा दसहरा (जेठ सुदी दसमी) को उतारा जाता है। एक बार पान लगाने [illegible]र तीन साल तक चलता है।

१४० पान में कभी-कभी एक प्रकार के लाल कीड़े लग जाते हैं जो टेपी [illegible] पान काट देते हैं। पत्तों में काले धब्बे पड़ जाते हैं जिन्हें कारो कहते हैं। [illegible]ाला तथा ओला पान के लिए बहुत हानिकर होते हैं।

पान तोड़ने के बाद उसके सड़े हुये भाग को अलग करते हैं। इसके लिए [illegible]रकंडे या बाँस की दो फलठी ले कर उसकी कतरनी बनाते हैं। पान गिन कर [illegible]कता है। पचास पान की एक कँवरी तथा चार कँवरी बराबर एक ढोली [illegible]ोती है। ढोली को मूँज या कास से बाँधते हैं

आलू

१४१. आलू के निम्न भेद पाये जाते हैं:—

(१) कटुआ—यह काट-काट कर बोया जाता है। काटते समय आँखा (अँखुआ) न कटना चाहिए। यह आलू बड़ा और लाल होता है।

(२) फुलनहवाँ—इसके पौधे में फूल निकलता है। यह देसी आलू है। यह छोटा और सफेद रंग का होता है।

(३) पटनहियाँ या ललकी—यह पटना की ओर से आता है। यह बड़ा और लाल होता है।

(४) मँदरजिया या मँदराजी या मनराजी—यह बड़ा और सफेद होता है। मद्रास के आधार पर यह नाम है। तीन पाख (पक्ष) में तैयार होने के कारण इसे तिनपखिया भी कहते हैं।

१४२. आलू के लिए गोंयड़ खेत होना चाहिए क्योंकि इसकी मरम्मत भली-भाँति हो सकती है। पलई (दूर) का खेत अच्छा नहीं होता। इसे जौ-गेहूँ की भाँति चौमासा में बोवे तो अच्छा होता है।

आलू के लिए खेत की जोताई अच्छी होनी चाहिए। खेत घन और अवाह जोता जाना चाहिए। यदि खेत ढेलगर रहे तो पानी फुफकार (छिड़क) दे, पानी पाने से ढेला गल जायगा। दूसरे दिन माटी फरहर (सूखी) होने पर खड़े-खड़े और वेड़े-वेड़े दो हेंगा हेंगा दे। इसके बाद दो बाह जोत कर हेंगा दे। तदनन्तर सड़ी हुई खाद बिछा दे इतना करने पर खेत सज जाता है।

सिंचाई के लिए आरम्भ में ही खेत में बरहा बना दिया जाता है। बरहों के बीच वाली जमीन को जिसमें बोआई होती है पाही या परचा कहते हैं। कुदार से मूहिँ बनाकर एक-एक बीता पर आलू बोते हैं। मूहिँ पर मिट्टी चढ़ा देने पर उसे डुड़हा या डुड़ही कहते हैं। डुड़हों के बीच की गहरी जगह को नारी कहते हैं।

खेत बो जाने पर हर तीसरे-चौथे मूहिँ गोड़ने रहना चाहिए। गोड़ाई न होने पर खेत एकरस जाता है और आलू देर में तथा कम जमता है।

१४३. आलू जम आने पर नारी में पानी दौड़ाते (सिंचाई करते) हैं। और गोड़ाई के योग्य हो जाने पर कुदार से सेव गोड़ कर मिट्टी लतिया देते हैं। इस समय मूहिँ पर कुछ और मिट्टी चढ़ा कर उसे ऊँची कर देते हैं। मिट्टी चढ़ाने पर उसे हाथ या पैर से थपथपा देते हैं ताकि मिट्टी रुक जाय। फिर कई दिन बाद जब मिट्टी कुछ महुला (सूख) जाती है तब मामूली सिंचाई कर देते हैं। इसे पानी कटाइब (कटाना) या पानी रेंगाइब (रगाना) कहते हैं। पौधा बड़ा हो जाने पर भरपूर सिंचाई की जाती है। इस प्रकार तरै तापर (अंतर दे-देकर) कम से कम तीन पानी दिया जाता है। आलू में पानी देने को आलू भरब (भरना) भी कहते हैं। बरहा से आलू की नारी में पानी काटने को पानी कटाइब (कटाना) या पानी बराइब (बराना) कहते हैं।

१४४. आलू के डंठल और पत्तियों के समूह को गावा कहते हैं। गावा के सूखकर पीला पड़ने को पकठब (पकठना) कहते हैं। गावा पकठ जाने पर पेड़ महुला (कुम्हला) जाता है। इस समय समझना चाहिए कि आलू खनने के योग्य हो गई है।

आलू में गदहिला रोग लगने पर सूराख हो जाता है और आलू खराब हो जाता है।

प्याज

१४५. पियाज (प्याज) के लिए गोंयड़ का खेत चाहिए क्योंकि इसे बहुत खाद तथा पानी चाहिए। इसके लिए चैती फसल की भाँति चौमासा खेत ही अच्छा होता है। यह क्वार में बोया जाता है।

धान की भाँति इसकी भी बेहन डाली जाती है। फिर रोपाई की जाती है। बेहन डालने के पहले इसके बीज को एक दिन पानी में भिगोकर फिर गोबर में एक सप्ताह तक भाठ (ढक) देते हैं। बेहन छोड़ कर ईख की पत्ती से खेत को ढक देते हैं। चार दिन बाद डाभी निकलती है। इक्कीस दिन में बेहन तैयार होती है। बेहन बैठाने के लिए कुदार द्वारा जो पतली-पतली नाली बनाई जाती है उसे घ[illegible] कहते हैं बेहन बैठाने के उपरांत तुरंत पानी रँगाते (सींचते) हैं।

१४६ प्याज में सिंचाई प्रति सप्ताह होनी चाहिए। प्रत्येक बार सिंचाई के पश्चात् गोड़नी की जाती है। प्याज के लिए बाइस बार सिंचाई करनी चाहिए; कहावत है, "बाइस पानी पियाज नाहीं तो भइल छियाज।"

प्याज के फूल को तुक्का कहते हैं। प्याज बैसाख में खना जाता है।

प्याज में निम्न रोग लगते हैं—

ढाहा—इस रोग के लगने पर पौधा गल जाता है।

गँड़पतिया—इस रोग में पत्तियाँ मर जाती हैं।

मिरचा

१४७. मरचा (मिरचा) के लिए भी गोंयड़ का खेत होना चाहिए। [illegible] असाढ़ में बोया जाता है और कातिक से लेकर चैत तक फलता है। म[illegible] [illegible]ाघ का) मरचा अच्छा और तीत (तीता) होता है। चैत का मिरचा छोटा और [illegible]म तीत होता है।

मिरचा का बीज बहुत छोटा और हल्का होता है। इसकी बेहन डाली [illegible]ाती है। बेहन डालने में पहले कियारी को पानी से भर देते हैं। पानी रहने पर [illegible] बीज छींट देते हैं और फिर ऊपर से हलकी खाद डाल देते हैं। तत्पश्चात् [illegible]टाटी से कियारियों को ढक देते हैं। लगभग एक सप्ताह में बीज उग आते हैं [illegible]र टाटी हटा लेते हैं। बीज जम आने पर खेत में राखी छींटते हैं। बेहन [illegible]यार होने पर क्वार में इसकी रोपाई होती है।

१४८. रोपने के बाद पौधों में किसी टोंटीदार बर्तन से पानी डालते हैं जिसे टोंटियाइब (टोंटियाना) कहते हैं। तीन-चार दिन लगातार इसी

प्रकार पानी दिया जाता है फि पूरी सिंचाई की जाती है। प्रत्येक सिंचाई के बाद गोड़ाई की जाती है। फल आने पर गोड़ाई बन्द हो जाती है। आवश्यकतानुसार समय पर निराई भी की जाती है।

मिरचा में निम्न रोग लगते हैं—

ललमुँहवा कीड़ा—यह कीडा बेहन मे लगता है और उसे नष्ट कर देता है। इससे बचने के लिए राखी छीटते है।

मड़वा—यह पत्तियो का रोग है। पत्तियाँ सिकुड़ कर छोटी रह जाती हैं, बढ़ती नहीं। पत्तियो को इस दशा को **कुञ्जब** (कुँजना) कहते हैं। इस रोग के लगने पर पौधा सूख सकता है।

मूली

१४६. मूली के दो भेद प्रचलित हैं:—

(१) **मोहँवा**—यह भादों के अंत में बोई जाती और कुआर के अंत तक तैयार हो जाती है। यह पतली होती है।

(२) **नेवार या नेवरवा**—यह मोटी और अच्छी मूली है। यह कुआर के अंत में बोई जाती है और एक मास में खाने के योग्य हो जाती है। यह लगभग माघ तक खाने योग्य रहती है। इसके बीज को साधारणतः आलू की **डुडुही** पर गाड़ देते हैं।

मूली फलने के लिए उसे एक स्थान से उखाड़ कर दूसरे स्थान पर गाड़ते हैं। बीज के लिए ऐसा करना पड़ता है। मूली मे जो कल्ला निकलता है उसे **कड़री** कहते हैं।

माहो—जाड़े में **पुरवा** बहने पर या बदरी होने पर मूली में यह रोग हो जाता है। जिससे पौधे को हानि पहुँचती है।

जिस मूली के रेशे कड़े हो जाते हैं और बीच में जो रूई की भाँति सफेद हो जाती है उसे **रूर** कहते हैं।

पोस्त

१५०. पोस्त को **पोहता** बोलते हैं। इसके लिए बहुत अच्छी जमीन चाहिए। चैती फसल के साथ कातिक में इसकी बोआई होती है। यह चौमासा खेत में बोया जाता है। जिस खेत में पोस्त बोना होता है उसे खाद-पाँस से अच्छी

तरह सजाया जाता (तैयार किया जाता) है बोने से पहले बीज को रात भर पानी में भिगोते हैं। सवेरे उसे पानी से निकाल कर राखी में मिलाते हैं। फिर पैरा की रीति से बोते हैं। तीन-चार दिन पर फिर खेत जोत कर हेंगाते हैं। खेत कोई बार हेंगाते हैं ताकि खेत की नमी बनी रहे। अठइयाँ (आठवें दिन) अंकुर निकलता है। अंकुर को छोरई कहते हैं। अंकुर निकल आने पर सिंचाई के लिए क्यारियाँ बनाते हैं। पौधों के कुछ बड़े होने पर जहाँ पर पौधे घने जमे रहते हैं वहाँ के कुछ पौधों को चुटकी से उखाड़ देते हैं। इस क्रिया को चुटकियाइब (चुटकियाना) कहते हैं।

१५. पौधों के कुछ बढ़ जाने पर सिंचाई की जाती है। सिंचाई के पूर्व बरहों में पानी पहुँचा कर उसकी गीली मिट्टी निकालकर नाली के किनारे छोप देते हैं इससे नाली गहरी होने के साथ-साथ दृढ़ हो जाती है और पानी के कटने का भय नहीं रहता। इस क्रिया को मुरियाइब (मुरियाना) कहते हैं। मुरियाने का काम शाम को करते हैं और सुबह खेत भरते (सींचते) हैं। बरहा में पानी पहुँचाने को बरहा पनियाइब (पनियाना) कहते हैं। सिंचाई के बाद यथा समय खुरपी से गोड़ाई की जाती है। फागुन में ढेंका (कली) लगता है। इस समय सिंचाई करने पर फूल खिल जाता है और फल आ जाता है।

अफीम :

१५.२. फल जब इतना बड़ा हो जाता है कि उसमें अफीम (एक प्रकार का गोंद) बैठ जाती है तब शाम को नहनी या नहन्नी से उस पर निशान बनाते हैं। नहनी से चीरने में सावधानी चाहिए, न इतना कम चीरा जाय कि अफीम न बह सके और न इतना अधिक चीरा जाय कि फल खराब हो जाय। अगले दिन प्रातः सितुहा (सुतुई के आकार का लोहे का औजार) में अफीम काछ ली जाती है। अफीम को एक परई में रखते हैं। सितुहा और हाथ में जो अफीम लगी रहती है उसे किसान एक हाँड़ी में धो डालता है। जब अफीम पानी में नीचे बैठ जाती है, तब उसे निकाल कर अलग कर लेते हैं। इसी प्रकार पुनः दूसरी जून (समय) कुछ फलों को चीरा जाता है और उन्हें सुबह काँछा जाता है। चीरने और काँछने की सुविधा के लिए किसान खेत को तीन-चार भाग में बाँट लेता है।

१५३ जब माल (अफीम) आना बन्द हो जाता है तब पौधों को काट कर उन्हें आँटा के रूप में बाँधते हैं, और सूखने के लिए उनको जमीन पर खड़ा करके रखते हैं। सूखने पर फलों को डंडे से पीट कर बीज अलग करते हैं। बड़े फल को ढेढ़ा और छोटे को ढेढ़ी कहते हैं। फल के छिलके के टुकड़ों को पोस्तैरी कहते हैं। फल के अंदर पोस्त होता है।

४

पशु-पालन

गाय

१५४ स्नेह-वश या सुविधा के लिए मनुष्य पालतू पशुओं का भी नाम रख लेता है। गाय के नामों का निम्न ढंग से वर्गीकरण किया जा सकता है :—

जाति के आधार पर :

यहाँ की नस्ल वाली गायों को देसी (देशी) कहते हैं। बाहर से आने वाली गायों में चम्बली या चम्बलपारी तथा सरजूपारी हैं जो क्रमशः चम्बल और सरजू नदी के आस-पास के प्रदेश से आती हैं।

रङ्ग के आधार पर :

१५५. जो गाय जिस रङ्ग की होती है उसी के आधार पर उसे पुकारते हैं। उज्जर (सफेद) गाय को साधारणतः उजरकी या धौरी कहते हैं। अधिक श्वेत गाय को धवरचाँदी तथा बगुली कहते हैं क्योंकि चाँदी और बकुल-पंख अपनी श्वेतता के लिये प्रसिद्ध हैं। काली गाय को काली, कलूटी, कृष्णा, श्यामा, करिअई तथा करौंछी कहते हैं। भूरे रंग की गाय को भूरी, लाल रंग की गाय को ललकी या लोहिया कहते हैं। जिस गाय का रोवाँ या रोआँ (बाल) काला और उज्जर मिला हो उसे सोकनी कहते हैं। जो गाय कहीं काली और कहीं सफेद या किसी दो रंग वाली होती है उसे कबरी या चितकबरी कहते है। कई रंग की गाय को छिबरी कहते हैं। कुछ गायों के नाम उपमान के आधार पर रक्खे हुए मिलते हैं यथा महुआ के रंग वाली गाय को महुवर, महोख पक्षी सदृश रंग वाली गाय को महोखिया तथा सियार के रोंआँ से मिलने वाली गाय को सियर रोउवाँ कहते हैं।

रूप के आधार पर :

१५६ जिस गाय की चाँदी (मस्तक) पर कोई चिह्न पाया जाता है उसे चेनुली कहते हैं। मस्तक पर टीका ऐसा चिह्न होने पर टिकुई कहते हैं। आँख के चारों ओर कालापन होने पर कजरी कहते हैं। जिसके कान और

(ओहाना) या **ओहाइन पर उठव** अथवा **उठान पर उठव** (उठना) कहते हैं और ऐसी गाय को **ओहाइल** (ओहाई हुई) कहते हैं। गाय के बरदाने की क्रिया को **पाल खाव** (खाना) कहते हैं। साँड के गाय पर चढ़ने की क्रिया को **पार बहव** (बहना) कहते हैं। कुछ गायें एक पार बहने पर बरदा जाती हैं और कुछ कई पार बहने पर। गर्भ रह जाने को **ठहरब** (ठहरना) कहते हैं। ठहरी हुई गाय को **गाभिन** कहते हैं। गर्भ के कुछ मास बीतने पर गाय का पेट बाहर निकलने लगता है जिसे **पेट उभरब** (उभरना) कहते हैं। गाभिन गाय को **कोरावत** गाय भी कहते हैं। यदि किसी कारण **गाभ** (गर्भ) गिर जाय तो उसे **उलट जाव** (जाना) या **लड़ाय जाव** (जाना) कहते हैं।

जब गाय बियाने के समीप होती है तब वह थन करने लगती है जिसे **थन छोड़व** (छोड़ना) कहते हैं। थन की भरी हुई अवस्था को **थलकल थन** कहते हैं। इस अवस्था को **ओयर छोड़व** (छोड़ना) भी कहते हैं। बियाने के दिन निकट आने पर गर्भ नीचे की ओर खिसकता है। इस प्रकार जब गर्भ नाभी से नीचे आ जाता है तब उसे **ढोंढ़ा छोड़ब** या **बाँसा छोड़व** (छोड़ना) कहते हैं। बच्चे के पैदा होने के पूर्व एक प्रकार का जल गिरता है जिसे **मुतउड़ आइब** (आना) या **मुतउड़ फूटब** (फूटना) कहते हैं।

१५६. बच्चा पैर की ओर से पैदा होता है इसलिए पहले उसका खुर दिखाई देता है; बच्चे की इस दशा को **खुरिआब** (खुरिआना) कहते हैं। बच्चे के बाहर निकलने के साथ कभी-कभी गर्भाशय भी निकल आता है जिसे **फूल** या **पुरइन आइब** (आना) कहते हैं। यह खतरनाक अवस्था है। ऐसे समय कोई चतुर व्यक्ति हाथ से पुरइन को भीतर ढकेल देता है। पुरइन पैठ जाने पर गाय को कुछ समय तक बैठने नहीं देते, उसे खड़ी रखते हैं क्योंकि बैठने पर दबाव पड़ता है और पुरइन के फिर निकल आने का डर रहता है। बच्चा पैदा होने के कुछ देर बाद **खेड़ी** या **खेढ़ी** गिरती है। कभी-कभी गाय इसे खा जाती है। ऐसी दशा में गाय को **सरया धान** उबालकर खिलाते हैं ताकि खेढ़ी मल के साथ निकल जाय। बाँस की पत्ती या कच्ची तीसी भी इसी उद्देश्य से खिलाते हैं। गाय को प्रसव के दिन पीने के लिए पानी नहीं देते, अरहर का चून देते हैं। इससे दूध बढ़ता है।

१६०. पैदा होने पर बच्चे के मुँह में **गेजार** रहता है इसे अँगुली डाल कर साफ कर दिया जाता है। नवजात बच्चे को **पोआ** या **अल्हर** कहते हैं। इसके पूर्व कि बच्चे को थन में लगावें थन में घी चुपर कर उसका **पेउस** निकालते हैं। थन का मुँह पहले-पहल बन्द रहता है, उस पर एक प्रकार की खोज होती है जिसके निकलने के बाद ही दूध निकलता है। खील निकालने को **खील फोरब** (फोड़ना) कहते हैं। बच्चे के लिए स्तन में दूध उतरने को

पेन्हाव (पेन्हाना) कहते हैं। दुहने के पूर्व स्तन में दूध उतरने को ओगरब (ओगरना) कहते हैं। आरंभ के चार-पाँच दिन के दूध को पेउस या फेउस कहते हैं, इसे अशुद्ध मानते हैं। इसमें सोंठ और गुड़ डालकर पकाते हैं। पकने पर इसे इन्नर कहते हैं। आग पर रखने पर पेउस फट जाता है, इससे इसे फटउद भी कहते हैं। दूध शुद्ध होने को फरिचाव (फरिचाना) कहते हैं। लगभग ग्यारह दिन में दूध पीने के योग्य हो जाता है किन्तु सयाने (बड़े-बूढ़े) लोग बरही (बारह दिन) समाप्त होने पर दूध पीते हैं।

१६१. गाय की चारों चूँचियों में बराबर दूध नहीं होता है। यदि किसी चूँची में दूध नहीं होता है तो उसे कानी चूँची कहते हैं। यह चूँची औरों से साधारणतः छोटी होती है। चूँची को छीमी भी कहते हैं बहुत सी गायें दूध देने में कंजूसी करती हैं यानी दूध चुरा लेती हैं ऐसी गायें को चारकटि या चुट्टी कहते हैं जो गाय दूध देते समय लात चलाती है उसके पिछले पैरों को एक रस्सी से छान (बाँध) देते हैं जिसे छानब (छानना) कहते हैं। जिस रस्सी से पैर छाना जाता है उसे छाना कहते हैं। अधिक बदमाश (बदमाश) गाय की सींग भी बाँधनी पड़ती है, इस कार्य को सिंघौटा लगाइब (लगाना) कहते हैं। बच्चा दूध न पी सके इसलिए चूँची में गोबर लगा देते हैं जिसे चूँची गोबराइब (गोबराना) कहते हैं। छीमी में कभी-कभी खर्रा या खरवा फट जाता है जो घी लगाने से अच्छा होता है। कभी-कभी गाय का थन सूज आता है इसे थली कहते हैं। इसके लिये थन को गरम पानी से धोते हैं और टोटका के रूप में लकड़ी की कंघी छुआते (स्पर्श कराते) हैं।

१६२. पहला बियाना पहिलौठी कहलाता है। यदि पहली बार देर से गर्भ रहता है तो इसे चढ़ि के बियाब (चढ़ कर बियाना) कहते हैं। पहले बियाने से दूसरे बियाने में अधिक अन्तर पड़ जाने को भाँज मारब (मारना) कहते हैं। हर साल बियाने वाली गाय को कुरेधिया कहते हैं। जब गाय का बच्चा मर जाता है तब गाय को पेन्हाने के लिए उसके सामने कुछ खाने का सामान रखना पड़ता है जिसे भारा कहते हैं। भारा पर दूध देने वाली गाय को भरही कहते हैं। गाय के धीरे धीरे दूध कम कर देने को दूध तोरब (तोरना) कहते हैं। जब गाय दूध देना बिलकुल बन्द कर देती है तब उसे बिचुकब (बिचुकना) या बिसुकब (बिसुकना) कहते हैं। गाय के दूध देने को लगाब (लगना) कहते हैं। लगती हुई गाय को लगेन या लगहर कहते हैं। बियाने के पाँच-छः मास तक गाय धेनु कहलाती है। कई मास हो जाने पर जब दूध गाढ़ा हो जाता है तब गाय को बकेन या बकेना कहते हैं। ऐसी गाय को जिनके बच्चें मर जाया करें या जो बच्चे के मर जाने पर दूध देना बन्द कर दे ठाँठ कहते हैं। जो गाय कभी गर्भ न धारण करे उसे बाँझ या बहिला कहते हैं।

गाय जहाँ बाँधी जाती है उसे सारि या गउसारि कहते हैं।

बैल

१६३. बैल की ऊंचाई नापने के लिए उसके पिछले पैर के खुर से कूल्ह के नीचे तक एक लकड़ी से नापते हैं। फिर इस लकड़ी को मूठी (मुट्ठी) से नाप लेते हैं। जितनी मूठी लकड़ी होती है बैल को उतनी मूठी का कहा जाता है। गाय की भाँति बैलो के भी नाम सुविधा के लिए रख लिए जाते हैं, जिनका वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है :—

जा ति के आ धा र प र :

देवहटिया—ये बारह से चौदह मूठी तक होते है। ये देवहा (सरजू) नदी के आस-पास पाए जाने वाले बैल हैं। इन बैलो का हिक्का (पीठ से लेकर कंधे तक का भाग) चौड़ा तथा कमर पतली होती हैं। मुतान, छुच्छी या नाभी एक दम पेट से सटी रहती है। पूँछ लंबी होती है। मजबूती के कारण इन्हें 'लोहे की गाँठ' कहकर इनकी बड़ाई करते हैं।

चम्मली—चंबल नदी के किनारे पाये जाने वाले बैल चम्मली कहलाते हैं। ये सोलह से अठारह मूठी ऊँचे होते हैं। इनकी सींगे छोटी और ऐंठी हुई होती हैं। ऊँचाई के कारण ये गाड़ी के योग्य होते हैं।

ददरिहा—ददरी (बलिया) के मेले से आने के कारण इन्हें ददरिहा कहते हैं। इनकी मुतान बड़ी होती है। ये भी सोलह मूठी तक ऊँचे होते हैं किन्तु शक्ति में कम होते है, ये जल्दी बुड्ढे हो जाते हैं।

गोमतिहा—गोमती नदी के आस-पास पाये जाने वाले बैल गोमतिहा कहे जाते हैं। इनका हिक्का आगे को झुका रहता है। ये चौदह से सोलह मूठी ऊँचे होते हैं। ये भी बड़े मजबूत होते हैं।

लेहड़िहा—बहराइच और पीलीभीत की ओर से कुछ लोग बैल बेचने आते हैं। इनके साथ बैल के झुंड रहते हैं जिसे लेंहड़ या लेहड़ी कहते हैं। इन बैलों को लेंहड़ी, डेहरी या अहरी बैल कहते हैं। डेहरी के मालिक को नायक कहते हैं। इन बैलो की सींगें लंबी और ऊपर को उठी होती हैं। लेहड़ी से बैल छाँटने को लेंहड़ी बेराइब (बेराना) कहते हैं। पूरब से आने वाले बैलो को पुरबिहा तथा पश्चिम के बैलो का पछुमहा कहते हैं।

रं ग के आ धा र प र :

१६४. गाय की भाँति बैलों का भी, उनके रंग के आधार पर, नाम रक्खा जाता है। जिस प्रकार सफेद गाय को धँवरी कहते हैं उसी प्रकार सफेद बैल को धँवरा या

घँवरचाँदी कहते हैं। पक्की बइर (बैर) की भाँति लाल रंगवाले बैल को बइरिया लाल कहते हैं। गेहूँ से मिलते-जुलते रंग वाले बैल को गोहुँअन कहते हैं। हलके काले रंग वाले बैल को कँजिड़ कहते हैं। ऐसे बैलों को जिनका कान्ह (कंधा) काला होता है करकन्हा कहते हैं। ऐसे बैल अच्छे माने जाते हैं।

रूप के आधार पर :

१६५. गाय की भाँति बैल के भी मैना, सरगपताली, डुगडुगहा या डुग्गुर, मुंडी आदि नाम होते हैं। जिस बैल के ललाट पर दोनों भौं के बीच भँवर होती है उसे भँवरिहा, सँवखिहा अथवा सौफिहा कहते हैं। यह बैल पइलगहा (पैं वाला) अर्थात् दोखी (दोषी) समझा जाता है। जिस बैल की जिह्वा पर सफेद धब्बा होता है उसे समुन्नर सोख (समुद्र सोख) तथा जिस बैल की पीठ पर साँप के चिह्न हों उसे साँपिन कहते हैं। ये बैल दोखी माने जाते हैं। जिस बैल की आँख कंजा के रंग की होती है उसे कंजहा या बिलरअक्खा कहते हैं क्योंकि बिलार की आँख भी कंजे के रंग-सदृश होती है।

यदि किसी बैल की पीठ या शरीर के किसी अन्य भाग पर मांस लटक रहा हो तो उसे असहा कहते हैं। ऐसा बैल धार्मिक दृष्टि से नंदी का स्वरूप समझा जाता है। यदि बैल के शरीर के किसी भाग पर जटा की भाँति बाल निकले हों तो उसे जटहा बैल कहते हैं। यह बैल भी नंदी का स्वरूप समझा जाता है, इससे खेती का काम नहीं लेते हैं।

जो बैल वंश वृद्धि के लिए दाग कर छोड़ दिए जाते हैं उन्हें साँड़ कहते हैं।

स्वभाव के आधार पर :

१६६. चंचल बैलों को फैंकट कहते हैं। ऐसा बैल चलने में तेज होता है जो बैल चलने में अच्छे होते हैं उन्हें खर या तीखड़ कहते हैं। और जो बैल चलने में सुस्त होते हैं उन्हें गरियार कहते हैं। जो बैल चलते-चलते बैठ जाते हैं और कठिनाई से उठते हैं उन्हें परुआ कहते हैं। ऐसे बैल जो परिश्रम करने से घबड़ाते नहीं उन्हें गमहा (गम खाने वाला) कहते हैं। जो बैल किंचिन्मात्र छू देने पर छटपटा उठते हैं उन्हें छपकन कहते हैं। अच्छे मजबूत बैल को पनिगर (पानीदार) कहते हैं। गाय की भाँति बैल भी ससहा, सरकहा तथा हौंकरहा होते हैं।

अवस्था के आधार पर :

१६७. बाछा या बछवा के दूध के दाँत गिरकर जब तक नए दाँत नहीं निकलते तब तक उसे उदंत कहते हैं। प्रायः तीन वर्ष के बाद नए दाँत निकलते हैं। दो-दो दाँत एक साथ निकलते हैं। जब आठ दाँत हो जाते हैं तब बैल पूरी अवस्था को पहुँच जाता है। दाँत दिखाई पड़ने को खूँटी आइब (आना) कहते हैं। छः दाँत वाले बैल को छहदरि कहते हैं। सात दाँतवाले को सतदरि

कहते हैं। जब छः दाँत पूरे हो और बाकी दाँतो की खूँटी दिखाई पड़ती हो तो उसे **ओछाकाना** कहते हैं। जिस बाछा को केवल सात दाँत होते है और आठवाँ नहीं निकलता उसे अशुभ मानते है कहावत है '**सतदरि कहे मैं आवो जोंव कुटुंब परिवार उपरेहितहिं खाँव।**' इसी प्रकार **नौदरि** (नौ दाँत वाले) भी अशुभ माने जाते हैं यथा '**नौदरि कहै नवोदिशि खाँव, लै वढ़नी उपरे-हितहि खाँव**'। बैल के आठ दाँत पूरे हो जाने को **सोझ होब** (होना) कहते हैं। ऐसे बैल को **मिलहर** (मिला हुआ) अथवा **तउला** (तौला हुआ) कहते हैं।

साधारणतः प्रति वर्ष दो-दो दाँत निकलते हैं। इस प्रकार दाँत निकलने को **वरिसायन दाँतब** (दाँतना) कहते हैं। ऐसे बैल जिन्हें छः महीने पर ही दाँत निकल आते है उन्हें **भरदंता, भड़दंता** या **भड़कदंता** कहते हैं। इन बैलों को अशुभ मानते हैं। स्वस्थ बछवा को **लाढ़ा** कहते है। बैल को **बरद, बरदा, बरध** तथा **बरधा** कहते हैं।

व धि या क र ना :

१६८. बैल के दो भेद हो सकते हैं। एक **अंडू** दूसरा **बद्धी** या **बधिया**। अंडू बैल बहुत जोशीले और बदमाश होते हैं। इन्हें अधिकार मे करना कठिन होता है इसीलिए इन्हें बद्धी कर दिया जाता है। अंडू बैल गाय को देखकर चिल्लाते हैं और उनका वीर्यपात हो जाता है जिसे **नरियाब** (नरियाना) कहते हैं। नरियाने से उनकी शक्ति का ह्रास होता है। इसलिए जब बैल चार या छः दाँत का हो तभी उसे बधिया कर देना चाहिए। अधिक अवस्था हो जाने पर बैल की **डील गिर** जाती है। ऐसे बैल जब बद्धी होते हैं तो उन्हें **छतरभंग** कहते हैं और ये अशुभ माने जाते है।

बधिया करने का कार्य चमार जाति के लोग करते हैं। जब **पछुआ बयार** (हवा) चलती हो तब बधिया करना चाहिए क्योंकि घाव के लिए पछुआ हवा अनुकूल होती है। बधिया करते समय बाछा को **पछाड़** (लेटा) दिया जाता है। पाँच-छः आदमी उसे कसकर पकड़ते हैं इसके बाद चमार बैल के अंड-कोषों को एक लकड़ी से अलग करके उस स्थान की नसो को **मूसर** पर रखकर **लोढ़े** से कुचल देता है। इस प्रकार बैल की बद्धी हो जाती है। बद्धी सफल होने की पहचान यह है कि उस समय बैल के दाँत और मूँछ के बाल हिल जाते हैं। जिन बैलों की यह अवस्था नहीं होती है उनकी बद्धी सफल नहीं समझी जाती है। कुचली हुई जगह पर हलदी लगाई जाती है।

१६९. बद्धी करने के चार-पाँच दिन बाद तक बैल के अंडकोष फूले रहते हैं। धीरे-धीरे ये सूख जाते हैं। बद्धी सफल होने को **बद्धी मानब** (मानना) कहते हैं। जब बद्धी नहीं मानता तब कोई अंड कोष छोटा और कोई बड़ा हो

जाता है। ऐसी दशा में बैल को नसहर कहते हैं। नसहर बैलों को पुनः बधिया करना पड़ता है। ऐसे बैलों का स्वभाव क्रोधी और चिड़चिड़ा हो जाता है।

बैल निकालना :

१७०. बाछा या बछवा को हल में चलने की शिक्षा देने के लिए उसे एक अधेड़ बैल के साथ, हल के बजाय एक लकड़ी रखकर. जोतते हैं। युवा बैल सहनशील नहीं होता इसीलिए अधेड़ के साथ अभ्यास कराते हैं। जब उसे लकड़ी के साथ दौड़ने का अभ्यास हो जाता है तब उसे छोटे हल में नाँधते है। इस समय उसे बाएँ-दाँए मुड़ने के इशारों का भी ज्ञान हो जाता है। इस सारी प्रक्रिया को बैल निकारब (निकालना) कहते हैं।

बैल नाथना :

१७१. साधारणत बैलों के बाँधने के लिए उनके गले में एक रस्सी पहना दी जात है जिसे गराँव या गेराँव कहते हैं और उसी में एक दूसरी रस्सी लगाकर जानवर को एक खूँटे में बाँधते हैं। इस रस्सी को पगहा कहते हैं। लेकिन चचल या शरारती बैल इतने से काबू में नहीं आते हैं। इसलिए उनके नथने में एक रस्सी डालकर उन्हे काबू मे किया जाता है। इस रस्सी को नाथी कहते हैं। यह रस्सी पतली, चिकनी और दो-ढाई हाथ लंबी होती है। रस्सी पहनाने के लिए उसे एक सूजा में पिरोकर नथने में से निकालते हैं। फिर इस रस्सी के दोनों किनारों को सींग के पीछे ले जाकर बाँध देते हैं। इस क्रिया को बैल नाथब (नाथना) कहते हैं।

१७२. अधिक शरारती बैल के लिए दोगाही लगानी पड़ती है। दोगाही लगाने का यह ढंग है कि बैल के गर्दन में एक रस्सा पहना दी जाती है। इस रस्सी को कंठा कहते हैं। नाथी की ,रस्सी और कंठे की रस्सी दोनों को लोहे के एक चुल्ले या छल्ले में से निकालते हैं। फिर इस चुल्ले में रस्सी डालकर उसे खूँटे मे बाँधते हैं। इस रस्सी को दोगाही कहते हैं। यदि अधिक उखमजी (ऊधमी) बैल हुआ तो उसके दोनों ओर दोगाही लगानी पड़ती है दोनों ओर दोगाही लगाने को छिरकी या सिरकी कहते हैं। ऐसा करने से बैल अड़ती (अधिकार) में आ जाता है।

भैंस

१७३. भैंस की दो जातियाँ मिलती हैं एक देसी और दूसरी मुर्रा। देसी, की अपेक्षा, हर दृष्टि से घटिया होती है। लेकिन देहात में मुर्रा भैंस केव बड़े आदमियों के यहाँ ही देखने को मिल सकती है। मुर्रा का शरीर सुंदर सुडौल,

भारी तथा भरा हुआ होता है। इसकी सींग ऊपर को मुड़ी होती हैं संभवतः इसीलिए इसे मुर्रा कहते हैं। मुर्रा अधिक दूध देने वाली होती है।.

१७४. भैंस साधारणतः दो ही रंग की पाई जाती है। एक **खैरा** (खैर के रंग-सदृश) दूसरी **करिया** (काली)। खैरा को **भूरी** भी कहते है। खैरा भैंस **दुधार** मानी जाती है। जिस भैंस के रोयें पतले हों वह भी अच्छी मानी जाती है।

१७५. जिस भैंस की **चाँदी** (मस्तक) पर बाल न हों उसे **चन्नुल** कहते हैं। जिस भैंस के थन फटे हों उसे **चरकही** कहते हैं। ऐसी भैंस अच्छी नहीं मानी जाती है।

१७६. गाय की भाँति भैंस भी **लतही, मरकही, हौंकरही** तथा **छटकनही** होती है अतः गाय के स्वभाव के आधार पर रक्खे हुए नाम साधारणतः भैंस के भी है।

गर्भ धारण से बियाने तक का विवरण:—

१७७. **पाँड़ी** या **पँड़िया** जब गर्भ धारण के योग्य होती हैं तब उसे **ओसर** कहते हैं। **पाँड़ा** या **पड़वाँ** सयाना होने पर भैंसा कहलाता है। जिस समय भैंस **भैंसाने** के लिए इच्छुक होती है उस समय वह चिल्लाती है जिसे **अड़ाहर देब** (देना) कहते हैं। भैंस की इस दशा को **थिराब** (थिराना) और ऐसी भैंस का **थिरायल** (थिराई हुई) कहते हैं। ऐसे समय यह आवश्यक है कि भैंस को भैंसाने का अवसर दिया जाय अन्यथा आठ-दस घंटे बाद उसकी यह अवस्था शात हो जाती है जिसे **अथिर जाव** (जाना) कहते हैं।

भैंस के बियाने की दशा गाय की तरह समझनी चाहिए। बिया जाने पर, इसे भी **धेनु** कहते हैं और जब दूध देते हुए तीन चार मास हो जाते हैं तब **बकेन** कहते हैं। भैसा जाने के बाद भी भैंस तीन-चार मास तक दूध देती रहती है। लेकिन दूध का स्वाद भैसाने के बाद धीरे-धीरे खारा होता जाता है। साधारणतः भैंस सात-आठ **बियाना** बियाती है। बियाने वाले पशुओ का वयस् उनके बियाने से समझा जाता है।

पशुओं के रोग

१७८. पशुओं को साधारणतः निम्न बीमारियाँ होती हैं :—

जानवरों को दवा पिलाने के लिए बाँस का **ढरका** बनाते हैं। इसका एक का मुँह नोकदार और पतला रहता है और दूसरी ओर गाँठ रहती है।

ऐंसा—यह साधारणतः पिछले पैरों में होता है। पैर में कभी-कभी दर्द

होने लगता है और ऐसी दशा में पैर की नस तन जाती है। कभी-कभी पैर में झनक भी चढ़ जाती है। यह एक प्रकार का वतास अर्थात् वायु का रोग है।

खाँगा—इस बीमारी में खुर में कीड़े-पड़ जाते हैं। बैल को पानी में खड़ा करने से यह बीमारी दूर हो जाती है क्योंकि पानी से कीड़े मर जाते हैं।

गंडा—पूँछ में जब गुठली ऐसी मांस-वृद्धि हो जाती है तब उसको गंडा कहते हैं।

चाभा—बैलों की जीभ पर बड़े-बड़े दाने पड़ जाते हैं जिनके कारण उन्हें भोजन करने में कष्ट होता है। इसे किसी चाकू अथवा नमक और झावाँ से रगड़ कर साफ करते हैं।

घुरका या घुड़का— यह श्वास-कष्ट की बीमारी है। गले में घरघराहट होती है। इसमें पशु का प्राण तक चला जाता है।

ढाँसा—यह भी फेफड़े की बीमारी है। इसमें पशु ढाँसता अर्थात् खाँसता है।

हलफा—यह श्वास कष्ट का रोग है। इसे हाँफा भी कहते हैं।

नकड़ा—इस बीमारी में नाक से साँस आने-जाने में कठिनाई होती है। औषध के रूप में मदार की पतली डाली नाक में डालते हैं।

मुकडाभा—इसे मुकडैना भी कहते हैं। बैल की तारू (तालु) में एक छेद हो जाता है। इसे बन्द करने के लिए नरई के टुकड़े को छेद में डाल देते हैं।

वार्धी —यह बहुत कठिन बीमारी है। पेट के अंदर फोड़ा हो जाता है। यदि यह फूटकर बह जाय और इसका रक्त पाखाने के साथ निकल जाय तब तो बैल बच जाता है अन्यथा मरने की संभावना रहती है।

मेघी—तालू के पास दो अगुल लंबी और कुछ चौड़ी झिल्ली बन जाती है जिससे खाने-पीने में बड़ा कष्ट होता है। खुरपी गरम करके इसे दागते हैं।

पाठा—इस बीमारी में शरीर के किसी स्थान से खून बहकर निकलने लगता है। यदि यह बंद न हो जाय तो पशु मर सकता है।

पेटउख—इसमें पतले दस्त आते हैं। और पशु का भोजन कम हो जाता है। पतले दस्त आने को पोंकब (पोंकना) भी कहते हैं।

घेंघा—घेंघे में सूजन हो जाता है और खाने-पीने में कष्ट होता है। इस पर चिउँटा के बिल की मिट्टी पानी में सानकर लगाते हैं।

फूली—यह आँख का रोग है। इसमें पुतली पर कुछ उभरा हुआ सफेद दाग पड़ जाता है।

माँड़ा—आँख की पुतली पर पर्दा पड़ जाता है।

मिरगी—कभी-कभी मुँह और नाक से गाज आने लगता है और जानवर मुँह को जमीन में दर्रता (रगड़ता) है।

पेटफुल्ली—इसमें पेट फूल आना है और पेशाब बन्द हो जाती है ।

घुमरी—इसमें चक्कर आता है।

कभी-कभी चेचक आदि फसली बीमारी का प्रकोप होता है। इसके लिए देवी-भवानी की पूजा की जाती है और उनके नाम पर बीमारी का **निकार** किया जाता है निकार करने से, ऐसा विश्वास है कि, बीमारी भाग जाती है। यह एक प्रकार का टोटका है।

जब **गोरू** (पशु) बीमार होने लगते हैं तब कहा जाता है कि गोरुओं पर **आभा** आई हुई है। जब गोरू बहुत अधिक संख्या में मरने लगते हैं तब कहते हैं कि **महामाया, जगदंबा** या **भगौती** की बीमारी है।

पशुओं का भोजन

१७६. पशुओं का मुख्य भोजन **सानी** है। नाद में पानी डालकर भूसा के साथ कुछ अनाज **चोकर** और खली डालकर खिलाने को **सानी** कहते हैं। सानी तैयार करने को **सानी चलाइब** कहते हैं। सानी के अतिरिक्त उन्हें घास या खेत की **हरियरी** भी दी जाती है। **अँकरी** नामक घास जौ-गेहूँ के खेत में होती है, इसे गाय-बैल बड़े चाव से खाते हैं। सूखी चीजों में **पुअरा** और **सेंठा** (जोन्हरी का डंठल) दिया जाता है; सानी के साथ इन्हे बाल कर मिला दिया जाता है। समय-समय पर उन्हे **सौंहटा** (सावाँ का पुअरा). **गेंड़ा** (ईख के सिरे पर की पत्तियाँ) तथा **मुँगारा** (बिना फूटा हुआ धान का पौधा) भी दिया जाता है। इन सब को पशुओं का चारा या **कोयर** अथवा **लेहना** भी कहते हैं। सावाँ के बालन को **सौंड़िरी** कहते हैं। जब **सूखा** कोयर दिया जाता हैं तब उसे **कोरा** कहते हैं। गाड़ी वाले बैलों को सानी खिलाने का अवसर नहीं मिलता है अतः उन्हें कोयर, थोड़ा पानी छिड़ककर, खिलाते हैं जिसे **मकोला** कहते हैं। बैल जहाँ बाँधे जाते हैं उस स्थान को **बरदौर** कहते हैं। चारे के लिए आषाढ़ में बजरा-उर्द-मोथी एक मे बो देते हैं जिसे **चरी** कहते हैं। चरी को **गँड़ास** से बालते हैं। चरी बालने के लिए एक लकड़ी गाड़ते है जिसे **नेसुहा** कहते हैं।

पशु चराना

१८०. **गोरू** शब्द मवेशी के अर्थ में प्रयुक्त होता हैं जिसमें गाय-भैंस-बकरी

को खेत मे जाने से रोकता है। इस क्रिया को डाँड़ देब (देना) कहते हैं। खेत की मेंड़ पर रहने को खेत के डॉड़े रहब (रहना) भी कहते है। डॉड़-मेंड़ दोनों शब्दो का साथ-साथ मेड के अर्थ में भी प्रयोग होता है। जब कोई गोरू भाग जाता है तब उसे लौटाने को बहोरब (बहोरना) कहते हैं।

१८३. पशुओं की अधिक भीड को हूर कहते हैं। भीड़ की धक्का-धुक्की के अर्थ मे हुरमुर शब्द का प्रयोग होता है जैसे, मेला में 'बड़ी हुरमुर बाय' अर्थात् मेला मे भीड़ के कारण बडी धक्का-धुक्की है। जब कोई जबर या पैचल गोरू किसी दुब्बर गोरू को ढकेलता अथवा खदेड़ता है तो उसे हुरपेठब (हुरपेठना) कहते हैं।

१८४. चरवाहा पशुओं के संकेत के लिए कुछ बोली बोलता है यथा, बछड़ा को बुलाने के लिए वह 'इयाँ हे', 'इयाँ हे' अथवा 'पूहा' का प्रयोग करता है। पॅड़िया को 'इयाँ पाँड़ी', 'इयाँ पाँड़ी' कह कर बुलाते हैं। भैंस के लिए 'ही' 'ही' सम्बोधन प्रयोग मे आता है। इन संबोधनो के प्रयोग पर पशु रुक जाते हैं।

१८५. पशुओ के चरने की सामग्री को कदाउर कहते हैं। जौ-गेहूँ कट जाने पर खेत में जो पत्तियाँ या डंठल आदि गिरे रहते हैं उन्हें भी कदाउर कहते है। जेठ के महीने मे पशुओ को चारे का कष्ट होता है फलस्वरूप गोरू उसरउड़ी (ऊसर की घास) पर ही मुँह रगड कर संतोष करते है।

१८६. चरने के बाद पशुओ को एक जगह एकत्र करते है इसे हिराइब (हिराना) कहते है और इस जगह को हिरौनी, हिरवनी अथवा बैठानी कहते हैं। हिरौनी ऐसी जगह बनाई जाती है जहाँ छाया हो और पास मे पानी हो। गड्ढे का पानी पशुओ के पीने के काम मे तो आता ही है उसमें भैंसे बड़े आनन्द से हिरती अर्थात् लोटती-पोटती हैं।

१८७. गोरुओं के बैठ जाने पर चरवाहे विशेषत. बच्चे भोजन करने चले जाते हैं और फिर भोजन करके लौटते हैं। इस प्रकार बारी-बारी से सब बच्चे खा आते हैं। बच्चो के इस प्रकार घर भेजने को पठौनी कहते हैं। जब सब हिरौनी पर आ जाते हैं तब गोरू फिर से चरने के लिए उभारे जाते हैं। जो गोरू आसानी से नहीं उठता उसे लोढ़ियायल (लेटा हुआ) कहते हैं।

चरवाहो में आपस में झगडा हो जाने पर गोलें बन जाती है और सब अपने-अपने गोरू अलग कर लेते हैं। इस प्रकार समूह से गोरू अलग करने को गोरू हिगराइब (हिगराना) कहते हैं यह हिगरौवल तब तक बनी रहती है जब तक आपस में वे सब फिर नहीं मिल जाते है।

दूध-दही-घी का काम

१८८. दूध-दही-घी का उद्योग विशेषतः अहीर—एक जाति विशेष—ही करते हैं। दूध दुहने के लिए मेंटी (मिट्टी का एक बरतन) प्रयोग करते हैं। जो मेंटी दूध के लिए विशेष रूप से प्रयोग मे आती है उसे दुधहँड़ी (दूध की हाँडी) कहते हैं। दूध पकाने का कार्य गोइँठी अथवा उपला पर होता है। गोइँठी पशुओं के गोबर से तैयार करते हैं। लकड़ी की आँच से दूध गरम करने की प्रथा नहीं है। गोइँठी धीरे-धीरे सुलगती है। जिस स्थान पर गड्ढा करके गोइँठी जलाई जाती है उसे अँगीठी कहते हैं। मिट्टी की बोरसी या अँगीठी अलग से भी बनती है। बिल्ली आदि से रक्षा के निमित्त दूध को एक हौदे से ढँक देते हैं। इस हौदे में धुआँ के निकलने के लिए छेद होते हैं। दूध इस प्रकार पक जाने पर उसके ऊपर जो मलाई पड़ती है उसे साढ़ी कहते हैं। कंडों की आग पर दूध पकाने को दूध बैठाइब (बैठाना) कहते है।

१८९. साधारणतः दूध से दही जमाने की प्रथा है। दही वाली मेटी को दधिवँड़ या दधिहँड़ कहते हैं। दूध जमाने के लिए दही का जावन अथवा जोरन डालते हैं। इसके अभाव में आम, इमली, आँवला आदि खट्टी चीजों का प्रयोग करते हैं। दूध वाली मेंटी में जो दूध का जला हुआ भाग होता है उसे जरेठी कहते हैं, इसे सुतुई या सुतुही से खुरच लेते हैं। इस खुरचे या करोए हुए पदार्थ को 'खुरचनी अथवा करोनी कहते हैं। दही मे जब तक साढ़ी रहती है तब तक उसे साढ़ीदार या सजाव कहते हैं, साढ़ी के हटा लेने पर उस दही को कटुई दही कहते हैं। साढ़ी वाले भाग को मथकर घी निकालते हैं और दही को बेचते हैं।

१९०. दही मथने के लिए उसे मिट्टी के एक बड़े बरतन में डालते हैं। इस बरतन को कमोरी कहते हैं। यह घड़े के बराबर या उससे भी कुछ बड़ा होता है। जिस लकड़ी से दही महते (मथते) हैं उसे खइलर अथवा मथानी कहते है। दही मे कुछ पानी डालकर मथते हैं। मथने पर जो घी का अंश ऊपर तैरने लगता है उसे मसका अथवा नैनूँ कहते हैं। इसे काँछ कर अलग कर लेते है। शेष पेय पदार्थ माठा या मट्ठा कहलाता है।

१९१. मसका से घी बनाने के लिए उसे एक कराही (कड़ाही) मे रखकर आग पर चढ़ाते है। जब तक उसका पानी जल नहीं जाता तब तक इसमे चिट-चिट या पड़-पड़ की आवाज होती है, आवाज बन्द होने पर घी पका हुआ समझा जाता है। मट्ठा मिले घी को मठार घी कहते है। घी पकाने पर मट्ठा नीचे बैठ जाता है। मट्ठे के जले हुए भाग को करोनी या बंझा कहते हैं। ऐसा विश्वास है कि इसके खाने से स्त्री बंध्या हो जाती है। खाने मे यह कुछ खटलुस (खट्टी) होती है। रविवार और मंगलवार को खर वार मानते है और इन दिनो घी खर करना दोष मानते हैं।

५

अन्य ग्रामोद्योग

कुआँ बनाना

कच्चा कुआँ :

१६२. कुआँ कच्चा और पक्का दो प्रकार का होता है। कच्चा कुआँ साधारणतः सिंचाई के लिए बनाया जाता है। यहाँ पर पानी आठ-दस या बारह हाथ पर मिल जाता है इसलिए किसान सिंचाई के लिये आवश्यकतानुसार छोटी सी कुइयाँ बना लेते हैं, वर्षा आने पर यह नष्ट हो जाती है। जहाँ बहुत बलुही माटी मिलती है वहाँ खोदते समय उसके गिरने का भय रहता है और वहाँ कुआँ बनाने में भी कठिनाई पडती है। कुएँ की दीवार न गिरे इसके लिए कुएँ की गोलाई के नाप की **बीड़** या **कोठी** बनाकर कुएँ के अन्दर बैठा देते हैं। बींड और कोठी का रूप एक ऐसे गोले **पेटारे** की भाँति होता है जिसका दोनों ओर का मुँह खुला हो। बांड़ मेउड़ी (एक वृक्ष) की पतली डालियों से और कोठी बाँस के **फलठों** से बनती है। कोठी बनाने के लिए बिनावट में खड़े-खड़ लगने वाले धाँसों को जमीन में वृत्ताकार गाड देते हैं फिर उन्हीं में फलठों की बिनावट कर देते हैं। कुएँ का जितना वृत्त होता है उसे कुएँ का **गरभ** कहते हैं। कुएँ के गड्ढे को **खाँखर** या **खँखरा** कहते हैं। इसी खँखरा में कोठी या बींड बैठाते हैं पर इससे यह हानि होती है कि कुएँ का पानी बदबू करने लगता है।

पक्का कुआँ :

१६३. पक्के कुएँ को **इनारा** कहते हैं। इनारा बनवाने को **इनारा** बँधवाइबे (बँधवाना) कहते हैं। गाँव मे एकाध ही पक्के कुएँ बन पाते हैं इसलिए इनका बहुत महत्व होता है। कुआँ खोदाने का कार्य साइत पूँछकर होता है। किसी-किसी गाँव में कोई **जानकार** होता है। ऐसा विश्वास है कि जानकार को किसी देवी-देवता का इष्ट होता है और वह अप्रत्यक्ष बातों को भी देख लेता है। जानकार से यह प्रश्न किया जाता है कि किस स्थान पर कुआँ खोदने से पानी मिलेगा। इस पूँछने की क्रिया को पानी **पूँछब** (पूँछना) कहते हैं। जानकार से पूँछकर ही लोग कुआँ खोदवाते हैं।

१६४. कुआँ सार्वजनिक उपयोग की वस्तु है इसलिए इस कार्य में गाँव वाले सहयोग देते हैं। चाहे पूँजी एक ही व्यक्ति की हो और उसीके नाम से कुआँ बोला जाय लेकिन कुआँ खोदने और कुआँ बाँधने के अतिरिक्त, जिन्हें मजदूर करते हैं, कुएँ से मिट्टी निकालना, पानी निकालना आदि कार्य गाँव वाले मिलकर करते हैं। इस अवसर पर गाँव के जितने लोग काम करते हैं उन्हें कुएँ का मालिक जलपान के लिए दाना-रस और भोजन के लिये सेतुआ-गुड़ देता है।

कुएँ की खोदाई :

१६५ कुआँ की थोड़ी गहराई तक की मिट्टी फरुहे द्वारा बाहर फेंकी जाती है। इस प्रकार के फेंकने को उलझा फेंकव (फेंकना) कहते हैं। कुएँ की गहराई में उतरने के लिए कुआँ खोदते समय उसकी दीवार में एक चक्करदार रास्ता बनाना पड़ता है इस रास्ते को सीढ़ी या गोल कहते हैं। गोल बनाने को गोल निकारव (निकालना) या गोल काढ़व (काढ़ना) कहते हैं। मटियरा जमीन में जो कुआँ बनता है उसकी खोदाई में विशेष परिश्रम पड़ता है और दोमट में कम। कुआँ खोदने में बहुधा पीली मिट्टी मिलती है जिसे पियरवा माटी कहते हैं। मिट्टी बलुही होने पर फटकर गिरने लगती है, ऐसी मिट्टी को फटनहिया माटी कहते हैं। माटी के गिरने के कारण खोंख में कहीं-कहीं पाल (पोला) हो जाता है। पाल होने को पाल मारव (मारना) कहते हैं।

कुएँ की चँड़वाही :

१६६. कुएँ की खोदाई हो जाने पर चँड़वाही होती है। चँडवाही के लिए घर्रा चलाना होता है। जैसे सिंचाई में आदमी घर्रा खीचते हैं उसी प्रकार इसमें भी; यहाँ नार में मोट बाँधने के बजाय झउआ बाँधते हैं। यह झउआ रस्सी से सिउर (बाँध) कर बहुत मजबूत बना दिया जाता है। अब इसे छींटा कहते हैं। छींटा की रस्सी और नार का सम्बन्ध एक लकडी का गुल्ली द्वारा करते हैं जिसे बितना कहते हैं। यह नार में इस प्रकार अटकाया जाता है कि आसानी से अलग किया जा सके। इस छींटा में कुएं के अन्दर काम करने वाले मिट्टी भरते हैं और घर्रा खींचने वाले इसे बाहर निकाल लेते हैं छींटा खींचने की सुविधा के लिए कुएँ की लिलारी पर दो आदमी खड़े रहते हैं जो छींटा को बाहर खींच कर उसे नार से अलग कर देते हैं। और नार में फिर दूसरा खाली छींटा लगा देते हैं। भरे हुए छींटे की मिट्टी बाहर फेंक दी जाती है। इस पूरी-क्रिया को चँड़वाही कहते हैं।

कुएँ का पानी :

१६७. पानी पहले पतला-पतली सोतियों से रिस-रिस कर आता है जिसे सोती झिरझिराव (झिरझिराना) कहते हैं। इस प्रकार भीतर से पसीज पसीज कर जो पानी एकत्र होता है उसे पसेव कहते हैं। जब कुएँ में पानी अच्छी तरह दिखाई देता

है तब उसे कुएँ का **पनिआव** (पनिआना) कहते हैं। जब कुआँ पनिआता नहीं या पानी कम निकलता है तब किसी बाँस मे एक नोकदार लोहा लगाकर उसे कुएँ की तह में धँसाते हैं ऐसा करने से यदि पानी नीचे हुआ तो तुरन्त ऊपर आ जाता है। इस क्रिया को **रामबाँस डालब** (डालना) या **रामबाँस कूटब** (कूटना) कहते हैं। इतने पर भी जब पानी नहीं दिखाई देता तब कहते हैं पानी **भन्न** (गायब) हो गया! कुएँ की सतह मे नीचाई तक, पानी का पता लगाने के लिए, लोहे का नोकीला छड़ा धँसाते हैं जिसे **सींक धँसाइब** (धँसाना) कहते है। जब कुएं में कोई बड़ा **सोता** फूट निकलता है तब उसकी धार को रोकने के लिए उसमें कराही, रजाई, गद्दा, सुतली आदि भरते हैं; यदि ऐसा न किया जाय तो कुएँ की चड़वाही असम्भव हो जाय। इतना करने पर भी कभी-कभी पानी नहीं रुकता। उस समय कुएँ का सारा कार्य बन्द कर देना पड़ता है। इस दशा को **चंदर खुलब** (चंद्र खुलना) कहते हैं। पानी साधारणतः **बलोथर** (बलुही जगह) में मिलता है। जब पानी के धार के साथ अधिक बालू आता है तब उसे **पास आइब** (आना) या **पास फेकब** (फेकब) या **पास ढकेलब** (ढकेलना) कहते है। बालू के इस प्रकार निकलने को **धावा** या **रेल मारब** (मारना) कहते हैं।

कुएँ की बँधाई :

१९८ कुएँ की बँधाई के लिए यह आवश्यक है कि यह **निमना** या **नीमन** (दृढ़) मिट्टी पर शुरू की जाय। इसलिए कुआँ खोदने वाले को यह प्रयत्न करना पड़ता है कि कुएँ की अंतिम तह **निमना माटी** की हो। निमना माटी पर कुएँ के बैठने का डर नहीं रहता। इसके मिल जाने पर कुएँ की बँधाई अर्थात् (पक्की जोड़ाई) के लिए बुनियाद डाली जाती है। जोड़ाई के पूर्व, आधार के लिए, एक गोली चक्राकार लकडी बैठाते हैं जिसे **नीचक** या **नेवार** कहते हैं। यह बैलगाड़ी के पहिये की भाँति होती है। इसी पर ईंटा की जोड़ाई होती है।

नीचक में गाडी के पहिये की भाँति लकड़ियों के कई जोड़ होते हैं। इनमें से हर एक को **पुट्ठी** कहते है। नीचक के लिए **लसदार** (लासा या गोंद वाली) लकडी जैसे पलास, बबूल या गूलर अच्छी होती है। बढ़ई नीचक की बनवाई नहीं पाता बल्कि कुएँ में नीचक पड़ जाने पर बढ़ई को गाँव वाले नेग देते हैं जिसमें रुपया, वस्त्र तथा बरतन दिया जाता है जो उसकी मजदूरी से कहीं अधिक हो जाता है।

१९९. जहाँ निमना नहीं मिलता, **बलोथर** माटी होती है वहाँ कुआँ बँधाने का दूसरा ढंग है। नीचक में उसके नीचे की तरफ मेंडरा की भाँति चद्दर जड़ देते हैं जिसकी धार नीचे की ओर रहती है। जब चँडवाही होती है तब इसी धार के सहारे नीचक धँसता चला जाता है और बीच मे मजदूर चँड़वाही का काम करते

रहते हैं। नीचक एक साथ बराबर से धँसे इसके लिए ऊपर से दबाव डालने की आवश्यकता पड़ती है इस उद्देश्य से नीचक के ऊपर चार-छः हाथ ईंट की जोड़ाई करने के बाद उसको कुछ दिनों तक पड़ा रहने देते हैं और जब वह दृढ़ हो जाती है तब चँड़वाही का कार्य होता है। नीचक कुएँ में अधिक नीचाई पर बैठाया जा सके इसके लिए यह आवश्यक है कि नीचक धीरे-धीरे नीचे की ओर धँसाया जाय। नीचक के नीचे की जमीन खोदना कठिन काम है अतः नीचक के नीचे की सारी जमीन एक साथ न काट कर उसके नीचे छोटे-छोटे पावे के रूप में कुछ जमीन छोड़ देते हैं। इन पावों को एक साथ गिराया जाता है। इनके गिराने के समय बड़ी होशियारी चाहिए। यदि नीचक पर किसी ओर अधिक दबाव पड़ जाय और किसी ओर कम तो नीचक बराबर से नहीं बैठता और जोड़ाई के फट जाने का डर रहता है; इसलिए बहुत चतुर आदमी इस काम को करते हैं। इस क्रिया को **गोला गलाइब** (गलाना) कहते हैं। गोला की मजबूती के लिए जोड़ाई के चारों ओर खड़े-खड़ बाँस के फलठे लगाकर उन्हें रस्सी से बाँध देते हैं। इतनी सावधानी करने पर भी यह काम खतरे से खाली नहीं रहता।

२००. कुएँ की जोड़ाई का पुराना ढंग यह है कि नीचक पर जोड़ने के लिए मिट्टी के दो हाथ लबे ओर एक या दो बीता चौड़े अर्द्धगोलाकार ईंट पाथ लेते हैं इन्हें **गाड़** कहते हैं; इसे पका कर ईंट का काम लेते हैं। इसके अलावा कुएँ के जोड़ने में **चवन** (कंकड़ के बड़े चट्टे) का भी प्रयोग होता है। चवन से बना इनारा बहुत दृढ़ होता है क्योंकि चवन ईंट से कहीं अधिक टिकाऊ होता है। इसका कुआँ टिकाऊ तो होता ही है साथ ही इसका पानी भी ठंडा रहता है। ईंट की जोड़ाई होने पर ईंट की दीवार और खाँखर के बीच में जो जगह खाली रह जाती है उसमें गीली मिट्टी खूब **चहँट-चहँट कर भरी** जाती है जिसे **बगली भरब** (भरना) कहते हैं। कुएँ की गहराई की नाप **पोरसा** से समझते हैं। एक आदमी जितना ऊँचा होता है उतने को एक **पोरसा या पुरसा** कहते हैं। कुएँ के एक-एक पुरसे पर ईंटा बाहर निकाल देते हैं इससे गहराई का पता तो चलता ही है कुएँ में **हिलने** (उतरने) वाले को भी सुविधा मिलती है। इस प्रकार की बँधाई को **पोरसा बाँधब** (बाँधना) कहते हैं।

२०१. कुआँ का ऊपरी भाग **जगत** कहलाता है। गड़ारी के लिए इस पर थून की जगह पर दो पक्के **पावे** बनवा दिए जाते हैं जिन्हें **छूही** भी कहते हैं। जानवरों के पानी पीने के लिए एक हौज बनाते हैं जिसे **अहरी** कहते हैं। कुआँ साफ करने को **कुआँ ओगारब** (ओगारना) कहते हैं। जिस कुएँ में पानी कम होता है उसमें ओगारते समय एक छोटी कुइयाँ और बना देते हैं जिसे **पेटकुइयाँ** कहते हैं। इससे कुएँ का **मुसरा** खुल जाता है। कुआँ बैठने को **कुआँ भसब** (भसना) भी कहते हैं। कुएँ की दीवार में फट कर जगह होने को **भगाड़** कहते हैं।

———

२०२. देहात में मकान को साधारणतः घर कहते हैं। मकान तीन प्रकार के पाए जाते हैं—(१) छप्पर (२) खपरैल (३) पक्का। छप्पर को छान, छानि या छान्हि कहते हैं। खपरैल कच्चा मकान है। पक्के मकान की दीवारें पक्की ईंटों की बनी होती हैं और पक्के मकान की छाजन साधारणतः पत्थर की पटियों या ईंटों से की जाती है। लेकिन पक्के मकान नाम-मात्र मिलते हैं। बैठका (घर से बाहर बैठने का स्थान) तथा गोरुवार (जानवरों के बाँधने के लिए स्थान) तथा गुलउर (गुड़ पकाने का स्थान) छप्पर का ही होता है।

छप्पर के भेद:

२०३. मड़ई—इसमें दीवार नहीं होती है। छाजन को थून्हियों के सहारे खड़ी करते हैं तथा बड़ेर को बाँस के कैंचों पर।

मड़हा—यह मड़ई से बड़ा और उससे टिकाऊ होता है। इसकी बड़ेर तथा ओरौती मिट्टी या ईंट के पावे के सहारे रहती है।

छनिहर घर—छप्पर के घरों मे यह सब से उत्कृष्ट है। इसमें दीवार बना कर छाजन रख देते हैं। रहने के लिए साधारणत: जनता ऐसे ही घर बनाती है।

ओसार या ओसारा—मकान के सामने ओरौती के नीचे एक निकला हुआ छप्पर बना देते हैं ताकि पानी दूर गिरे। इसमे छान का एक किनारा ओरौती के पास बँधा रहता है और दूसरा थून के सहारे रहता है। यह बैठने-उठने का काम देता है। इसे ओसार या ओसारा लटकाइब (लटकाना) कहते हैं।

छप्पर बनाने की सामग्री:

२०४. छान (छप्पर) बनाने के लिए पहले सभी आवश्यक सामग्रियों को एकत्र किया जाता है। सामग्री के लिए सँगहा शब्द का प्रयोग होता है। रहठा छाजन मे बहुत काम देता है। इसकी पतली कंछियों को बाती कहते हैं। बाँस की पतली-पतली कइन भी बाती कहलाती है। रहठा की बहुत पतली कंछियों को, जो बंधन के काम में आती हैं, छनौटी कहते हैं। इसे छिकुला भी कहते हैं। छानि के लिए ईख की पत्ती काम में आती हैं। ईख कटते समय ही पत्तियाँ छील कर आँटा के रूप में बाँध कर रख दी जाती हैं। छान छाते समय इनकी आवश्यकता पड़ती है। सरपत भी छप्पर छाने के काम में आता है। बड़े बंधन के लिए बाध (मूँज की कती डोरी) काम में आता है।

ठाट (ढाँचा) तैयार करना:

२०५. एक छान में दो पल्ले या फरके होते हैं। छान बीच में बड़ेर पर रुकी

पहुँचने तक रहता है। जब ओरौती की बाती पर पत्ती फैला लेते है तब उसके ऊपर से एक बाती लंबे-लंबे रख कर ऊपर और नीचे की दोनों बातियों को रस्सी से बाँध देते हैं। इस प्रकार ऊपर की बाती से पत्तो दब जाती है। जब दूसरी बाती पर इसी प्रकार पत्ती फैलाते हैं तब पत्ती फैलाते समय इस बात का ध्यान रखते हैं कि इसके पूर्व बाँधी हुई बाती पत्ती से ढँक जाय। इस प्रकार मंगर तक पत्ती बिछाते और बाँधते छवैये चले जाते हैं।

२०७. छाजन तैयार होने पर सीढ़ी सदृश दिखाई पड़ती है क्योंकि प्रत्येक बार बिछाई हुई पत्तियो की श्रेणी अलग-अलग रहती है। ऊपर और नीचे की बातियों को आपस मे बाँधने के लिए छवैये को पत्तियो के बीच से अँगुली डालनी पड़ती है। इस कार्य मे छवैयों की अँगुली छिल जाती है। अतः बन्धन बाँधते समय इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि छाजन मे कहीं सूराख न रह जाय। पत्ती के ऊपर से जो बाती लगाई जाती है उसके दोनों किनारे मोख में धँसा दिए जाते हैं जिसे **मोखब (मोखना)** कहते हैं। ऐसा करने से बाती भली भाँति कसी रहती है और पत्तियाँ दबी रहती हैं। छप्पर की लंबाई के बराबर बाती या बाँस की कइन मिलने की सम्भावना कम होती है इसलिए दो बातियाँ जोड़कर लगाई जाती हैं। इनका पलई वाला भाग छान के बीच में पड़ता है और मोटा भाग किनारे मोख मे दबा रहता है। इस प्रकार दो बातियों को जोड़कर लगाने से किनारे वाले भाग और भी दृढ़ हो जाते हैं। जब मंगर के पास दोनों फरको की छाजन पहुँचती है तब उस स्थान पर छाजन का एक विशेष ढंग हो जाता है। उस स्थान पर इस प्रकार की छाजन होनी चाहिए कि दोनों फरकों के बीच मे कोई अन्तर न रहे। ऐसा करने के लिए मंगर पर पत्ती फैलाई जाती है और ऊपर से बाती रखकर दबा दी जाती है। यह बाती मंगर में बाध से बाँधी जाती है। इस प्रकार मंगर के दोनों ओर ढाल हो जाता है। इस प्रकार की बँधाई को **सरौंता मारब (मारना)** कहते हैं। इस स्थान पर जो बन्धन बाँधा जाता है वह कुछ ढीला रक्खा जाता है ताकि छप्पर खड़ा करने पर दोनों फरके दबाव से अलग न हो जायँ।

छान खड़ी करना :

२०८. छान खड़ी करने के पूर्व बड़ेर को ईंट या मिट्टी के पावे पर रख देते हैं। छान को ऊपर उठाने के लिए बाँस के टुकड़ों की मदद ली जाती है। इन टुकड़ों को **सोकारी** कहते हैं। छान को पहले ओरौती की ओर से उठाना आरंभ करते हैं फिर इसे धीरे-धीरे बड़ेर पर चढ़ाने की कोशिश करते हैं। बड़ेर पर मँगारी रक्खी जाती है। इस प्रकार छाजन के दोनों फरके दोनों ओर लटक जाते हैं। फिर मंझा को थूनियों के सहारे रोकते हैं। यदि पावे बने हुए हों तो उन्हीं पर ओरौतीवाला भाग रख दिया जाता है अन्यथा दो बाँसों का

कैंचा या हटका बना कर उसी के सहारे उस भाग को टिका देते हैं। छान की दृढ़ता की दृष्टि से बड़ेर रखने के लिए दोनों ओर पाख बनवा देना अच्छा होता है। बड़ेर के बीचोबीच सहारे के लिए कभी-कभी थाम्ह लगा देते हैं, अथवा बाँस की एक कैंची बना कर लगा देते हैं और उसके दोनो हूरों को पाख की दीवारों में धँसा देते हैं। दीवार में बाँसों के हूर को धँसाने के लिए कुछ गड्ढा कर देना पड़ता है। इस प्रकार लगाई हुई कैंची को कवही कहते हैं। जब बड़ी छान बनानी होती है तो एक छान के स्थान पर दो छान बनाते हैं और फिर दोनों छानों को इस प्रकार एक दूसरे से मिला कर रखते हैं कि जोड़ का स्थान खुला न रहने पावे। एक के ऊपर दूसरे को चढ़ाकर रखना पड़ता है जिसे तर-ऊपर रक्खब (रखना) कहते हैं। एक छान साधारणतः १५ से १८ हाथ लंबी बनाई जाती है। छान की चौड़ाई अधिक नहीं रक्खी जाती; साधारणतः छान से घिरी हुई जमीन की चौड़ाई पाँच से लेकर सात हाथ तक होती है।

परछथी बनाना :

२०९. एक बार का छाई हुई छान दो वर्ष तक चल जाती है। बरसात में इसकी मरम्मत की जाती है। मरम्मत के लिए पहले एक छोटी सी छान अलग बनाई जाती है जिसे परछथी कहते हैं। परछथी इस प्रकार बनाई जाती है—पहले पुआल या हरे सरपत को ऐंठकर रस्सी बनाते हैं। इस प्रकार ऐंठी हुई रस्सी को जोड़ना कहते हैं। वह रस्सी छप्पर में प्रयुक्त बाती का काम देती है। पहले छान के एक फरके के लिए परछथी बनाते हैं। अतः एक फरके की लँबाई-चौड़ाई के अनुसार परछथी के ताने के लिए जमीन पर चार खूँटियाँ गाड़ते हैं। जोड़ना को इन्हीं खूँटियों के चारों ओर लपेट कर घेरा बनाते हैं। इसके बाद बीच के खाली भाग में जोड़ना को ताने की तरह तान देते हैं। इस तरह जो ताना बनता है उस पर ईख की पत्ती फैलाते हैं। पत्ती के ऊपर फिर उसी प्रकार जोड़ना फैला कर नीचे तथा ऊपर वाले दोनों जोड़नों को बाँध देते हैं ताकि पत्ती बीच में दब जाय। एक फरके के लिए परछथी तैयार हो जाने पर उसी प्रकार दूसरे फरके के लिए भी परछथी तैयार करते हैं। परछथियाँ तैयार होने पर उन्हें छान पर डालने का कार्य होता है। इसके लिए परछथी को चौड़ाई की ओर से एक बाँस में लपेटते हैं। फिर उसे छान के एक किनारे के मोख से दूसरे किनारे के मोख तक फैला देते हैं। दोनों परछथियों को फैलाने के बाद बड़ेर पर कुछ पत्ती डालकर उन्हें बाँध देते हैं।

मकान का पिंड :

२१०. मकान बनाने के लिए सर्वप्रथम किसी ब्राह्मण से मुहूरत (मुहूर्त) पूछा जाता है। इसे मुहूरत सोधवाइब (सोधवाना) कहते हैं। तदुपरांत ज्योतिषी से मकान की लंबाई और चौड़ाई पूछी जाती है जिसे

पिंड उतारव (उतारना) कहते हैं । जिसके नाम से पिंड उतारा जाता है वही नींव डालता है । ज्योतिषी पिण्ड उतार कर यह बताता है कि मकान कितना लंबा चौड़ा होने पर शुभ होगा ।

म का न की नीं व :

२११. नींव अधिकतर ईशान कोण (पूर्व तथा उत्तर का कोण) मे डाली जाती है। पहले मकान का मालिक पाँच फरुहा माटी खनेगा उसके बाद **मुठहथ** (मूठी बन्द हाथ) **भर** (बराबर) एक लंबा-चौड़ा **खाता** खोदा जाता है । इस खाते में पानी डाल कर कुछ लोग कछुआ डाल देते हैं; कुछ लोग सोने-चाँदी का साँप और कछुवा बनवा कर डालते हैं । ऐसा इस विश्वास से करते हैं कि शेषनाग पृथ्वी को रोके हुए हैं । फिर गड्ढे को पाट कर एक छोटा सा चबूतरा बना देते हैं । इस पर प्रति दिन दीप जलाया जाता है । उसके बाद मकान के लिए **नींव** बनाई जाती है जिसे **नींव खोदव** (खोदना) या **नींव झारव** (झारना) कहते हैं ।

नींव में गीली मिट्टी डाल कर पैरों से कोड़ते हैं । इस क्रिया को **माटी कोंड़व** (कोंड़ना) या **चहँटव** या **खपसव** (खपसना) अथवा **खबसव** (खबसना) कहते हैं । नींव में मिट्टी डालने के पहले पानी भर देते हैं ताकि जमीन को जो कुछ पानी सोखना हो सोख ले । ऐसा करने से दीवार के बैठने का डर कम हो जाता है। जब पानी सूख जाता है तब मिट्टी डालकर खबसते हैं ।

दी वा र :

२१२. नींव तैयार हो जाने पर **देवाल** (दीवाल) बनाने के लिए मिट्टी तैयार की जाती है । जिस स्थान से मिट्टी खोद कर आती है उसे **गड़र** या **गड़रा** कहते हैं । मिट्टी को पानी डालकर खबसते हैं । इस प्रकार मिट्टी तैयार करने को **माटा तोरव** (तोड़ना) कहते हैं । जितनी मिट्टी एक बार में ढोकर आती है उसे **खेप** कहते हैं । यह मिट्टी दीवार बनाने की जगह पर रक्खी जाती है । एक हाथ या डेढ़ हाथ की दीवार उठ जाने पर इसे सूखने के लिए छोड़ देते हैं । जब इतनी दीवार तैयार हो जाती है तब इस पर फिर मिट्टी रक्खी जाती है । इस प्रकार एक बार में दीवार उठाने के लिए जितनी मिट्टी रक्खी जाती है उसे **रद्दा** कहते हैं । इस प्रकार एक रद्दे के ऊपर दूसरा रद्दा घुमाया जाता है जिसे **रद्दा घुमाइव** (घुमाना) कहते हैं । दीवार पर जब एक रद्दा दूसरे पर बिना सूखे हुए रक्खा जाता है तब दीवार **भिहला** कर गिर जाती है । जब एक रद्दे के बिलकुल सूख जाने पर दूसरा रद्दा रखा जाता है तब एक रद्दा दूसरे पर चिपकता नहीं और दीवार मे मोटी-मोटी दरारें पड़ जाती है और दीवार भी कमजोर हो जाती है । दीवार ज्यों-ज्यों बनती जाती है मजदूर उसे काट-छाँटकर सुडौल बनाता जाता है । इसे **देवाल ठीकब** या **भीत ठीकव** (ठीकना) कहते हैं । इससे दीवार साफ-सुथरी बनती है । इस क्रिया के करने वाले को **ठिकवइया** (ठीकने वाला) कहते हैं । दीवार

की सिधाई एक रस्सी तान कर देखते हैं। इस कार्य को सुतबस करब (करना) कहते हैं। ज्यों-ज्यों भीत (दीवार) ऊपर जाती है त्यों-त्यों चौड़ाई कम करते जाते हैं। इससे भीत का बोझा कम होता जाता है। यदि ऐसा न किया जाय तो भीत के गिरने का भय रहता है। इस क्रिया को भीत तोरब (तोरना या तोड़ना) कहते हैं। भीत तोड़ते समय भीत के बाहरी भाग की मिट्टी को छाँटते हैं। ऐसा करने से भीत का बोझ बाहर की अपेक्षा भीतर की ओर अधिक रहता है। मकान में जब कड़ी पाट कर कोठा बनाया जाता है तब भीत तोड़ने वाली क्रिया का लाभ स्पष्ट समझ में आता है क्योंकि ऐसे मकानों के, हुलसने का भय नहीं रहता है। दीवार तैयार हो जाने पर उसको चिकनी करने के लिए ऊपर से दूसरी मिट्टी लगाई जाती है। इस मिट्टी में पुरेसी (पड़ुआ घास) तथा गोबर मिलाते हैं। इसके मिलाने से मिट्टी चिरचिराती नहीं। दीवार पर पानी छिड़क कर तब मिट्टी छोपते हैं और मिट्टी को बाद में हाथ से लीप कर चिकना करते हैं। इतना करने पर दीवार सुन्दर बन जाती है। यह लीपने की क्रिया लगभग प्रत्येक वर्ष वर्षा के उपरांत भी की जाती है; इसे माटी लगाइब (लगाना) या लीपब (लीपना) कहते हैं।

२१३ दीवार बनाते समय उसमें आवश्यकतानुसार सामान रखने के लिए ताख गउँखा या गवँखा बना देते हैं। रोशनी या हवा के लिए दीवार में छोटे-छोटे रोशनदान बनाते हैं जिन्हें बयाला, मुक्का अथवा झरोखा कहते हैं। अंडों के आकार का भी एक ताख बनता है जिसे भड़सड़ा या भड़सरा कहते हैं। दीवार में बाँस या लकड़ी गाड़कर उस पर मिट्टी छोप कर पटनी या पटनई बनाते हैं।

दीवार बनाते समय ही उसमें दरवाजा लगाने का प्रबन्ध कर लेते हैं। दरवाजे की जगह छोड़कर इसके ऊपर आवश्यकतानुसार लकड़ी या पत्थर का एक टुकड़ा रखते हैं और तब दीवार उठाते हैं। इस रक्खी हुई लकड़ी या पत्थर को पटावन या दुरवन्त कहते हैं। दरवाजे में नीचे की लकड़ी को चौखट कहते हैं। चौखट के विरोध में दरवाजे के ऊपर जो लकड़ी होती है उसे उतरंग कहते हैं। दरवाजे के दोनों बगल की लकड़िया को बाजू कहते हैं। दरवाजे में दो पल्ले होते हैं। ये पल्ले बाजू के पीछे अंदर की ओर लगाए जाते हैं। इन पल्लों के उन भागों में जो बाजू की ओर रहते हैं नीचे और ऊपर चूर बना रहता है। यह गोला होता है। इसी चूर के सहारे पल्ला बन्द किया और खोला जाता है। ऊपर के चूर के लिए पटावन में सूराख रहता है और नीचे के चूर के लिए एक लकड़ी, जिसमें चूर के लिए एक गड्ढा बना रहता है, दीवार के अंदर पैठा कर दी जाती है। इस लकड़ी का एक भाग दीवार में होता है और दूसरा भाग, जिस पर चूर चक्कर करता है, बाहर रहता है। इस लकड़ी को ठेहरी कहते हैं।

बड़ेर और धरन बैठाना :

२१४. जिस प्रकार छप्पर में बड़ेर होती है उसी प्रकार खपरैल की छाजन में भी। बड़ेर दोनो पाखों के आधार पर रहती है लेकिन बीच में यह लचे नहीं या टूट न जाय इस दृष्टि से उसके लिए कुछ सहारे की आवश्यकता पड़ती है। जिस प्रकार छप्पर मे बड़ेर की मजबूती के लिए बीच मे पावा जोड़ देते हैं या थाम्ह खडा कर देते हैं उस प्रकार मकान में नही करते। पाख बनाते समय ही एक लंबी लकड़ी जिसे **धरन** कहते हैं, बड़ेर के समानान्तर पर बड़ेर से कुछ नीचे, दोनों पाखो मे बैठा दी जाती है। यह लकड़ी टेढ़ी होती है और इसका बीच का भाग इतना उठा हुआ होता है कि वह दोनों पाखो की ऊँचाई की सीध में आ जाय। इस प्रकार बड़ेर के दोनों किनारे पाख पर होते हैं और बीच वाला भाग धरन के सहारे रहता है। जब ऐसी लकड़ी नहीं मिलती तब बड़ेर और धरन के बीच के फासले की पूर्ति के लिए एक लकड़ी लगा दी जाती है जिसका एक सिरा धरन में गड़ा रहता है जिसके और दूसरे सिरे पर बड़ेर होती है। इस लकड़ी को **टेड़ुवा** कहते हैं। इसके ऊपरी भाग मे एक लकड़ी की छोटी पिढ़ही लगा दी जाती है जिस पर बड़ेर आसानी से ठहर सकती है। इस पिढ़ई को **कोइलर** कहते हैं। कभी-कभी एक ही धरन पर कई **टेड़ुवे** लगाने पड़ते हैं।

बलहम तथा तिरबंदी करना :

२१५. जिस प्रकार छप्पर में दो फरके या पल्ले होते हैं उसी प्रकार खपरैल की छाजन मे भी दो पल्ले होते हैं। बड़ेर ही दोनों पल्लों को अलग करती है। एक पल्ले में जिस प्रकार छाजन के लिए लकड़ियाँ लगाई जाती हैं उसी प्रकार दूसरे मे भी। बड़ेर से ओरौती तक मकान की चौड़ाई मे जो लकड़ियाँ लगती हैं उन्हें **पटुका** कहते हैं। पटुका से ही ढाल देखी जाती है। जितनी ढाल या लरकाव पर छाजन होनी चाहिए उतनी ही ढाल पर पटुका रक्खे जाते हैं। ढाल सूत लगा कर देखते हैं जिसे **सुतबस करब** (करना) कहते हैं। पटुका का एक सिरा बड़ेर पर जड़ा रहता है और दूसरा दीवार पर रक्खा रहता है। यदि पटुका काफी हो तो छाजन मजबूत होती है और पानी के बहाव मे रुकावट नहीं होती है। जिस प्रकार छप्पर मे तॉता लगते हैं उसी प्रकार मकान में भी पटुका के ऊपर बड़ेर के समानान्तर थोड़ी-थोड़ी दूर पर **ताँता** रक्खा जाता है। तॉता रखने के लिए पटुका मे एक छोटी सी खूँटी गाड़ दी जाती है ताकि तॉता एक निश्चित स्थान पर रुका रहे और वह आगे न खिसकने पावे। इस प्रकार धरन, बड़ेर पटुका तथा तॉता बैठाने को **बलहम करब** (करना) कहते हैं।

पटुका पर जो लंबे-लंबे तॉता लगाए जाते हैं उनके ऊपर से पटुका के समानान्तर बॉस या लकड़ी की **करियॉ** या **कड़ियाँ** बिछाई जाती हैं। इस

क्रिया को कड़ी बैठाइब (बैठाना) कहते हैं। बाँस या लकड़ी जब चीरकर बिछाई जाती है तब उसे कोरई कहते हैं। जितनी अधिक कड़ियाँ बैठेंगी उतनी ही अधिक छाजन दृढ़ होगी क्योंकि छाजन का बंधन इन्हीं से संबंधित होता है। कड़ियों के बैठाने को तिरबन्दी या तिरबन्नी करब (करना) कहते हैं।

२८६ छाजन के लिए ताँता की लंबाई के बराबर सरपत का मूठा या मुट्ठा बनाया जाता है जिसे मुट्ठा बाँधब (बाँधना) कहते हैं। ये मूठी से दबा-दबा कर बाँधे जाते हैं। इस प्रकार मुट्ठों के तैयार हो जाने पर उन्हें कड़ियों पर ताँता के समानान्तर ओरौती से बड़ेर तक बिछाते हैं। मुट्ठों को बिछाने के साथ-साथ उन्हें कड़ियों में रस्सी से बाँधते जाते हैं इस प्रकार वे अपनी जगह स्थिर हो जाते हैं। इस बाँधने की क्रिया को सिउरब (सिउरना) कहते हैं। मुट्ठों की जगह फलठे अर्थात् बाँस के चीरे हुए टुकड़े भी बिछाते हैं। इन फलठों को सिउरते नहीं, इनके ऊपर कड़ियों के समानान्तर दूसरे फलठे बिछा दिए जाते हैं जिन्हें बाता कहते हैं, बाता के ऊपर से कीलें ठोक दी जाती हैं जो फलठो से होती हुई कड़ी में धँस जाती हैं। फलठों के स्थान पर रउता का भी प्रयोग होता है। रउता का पौधा ईख से मिलता-जुलता है और पतले रोड़ी-बाँस के बराबर मोटा होता है। यह भी छाजन के काम में आता है।

ओरौती का पानी भीत से कुछ दूर गिरे इसके लिये आवश्यक है कि कड़ियाँ दीवार से आगे की ओर निकली हुई हों। लेकिन लंबे बाँसों या लंबी लकड़ियों की कमी के कारण कड़ियाँ दीवार तक ही रक्खी जाती हैं और दीवार के बाहरी हिस्से पर ओरौती के नीचे छज्जा बना दिया जाता है। इसी छज्जे पर से ओरौती का पानी गिरता है। छज्जे के सहारे के लिए जो लकड़ी लगाई जाती है उसे टोड़ा कहते हैं। टोड़ा की मदद के लिए कुछ छोटी-छोटी लकड़ियाँ लगाई जाती हैं जिन्हें कुत्ता या कुक्कुर कहते हैं। इतनी तैयारी के बाद छवाई आरंभ होती है।

खपड़ा छाना :

२८७. घर छाने के लिए थपुआ और नरिया चाहिए। थपुआ के लिए खपड़ा शब्द भी पर्यायवाची रूप में प्रयुक्त होता है। थपुआ पर से पानी बहता है और नरिया दो थपुओं के उठे हुए भागों को ढकने के लिए होती है। थपुआ लगभग डेढ़ बीता लम्बा तथा छः अँगुल चौड़ा होता है। इसके दाएँ-बाएँ किनारे उठे होते हैं जिन्हें अवँठ कहते हैं। इसका अगला भाग, जिसे जीभ कहते हैं, पीछे वाले भाग से चौड़ाई में इतना सँकरा होता है कि वह चौड़े भाग में सरलता से बैठ जाय। छवाई ओरौती की ओर से आरम्भ होकर बड़ेर की ओर जाती है; खपड़े की जीभ वाला भाग ओरौती की ओर और चौड़ा भाग बड़ेर की ओर रहता है। पिछले चौड़े भाग पर बाद वाले खपड़े की जीभ चढ़ा कर रक्खी जाती है। इस

प्रकार एक के ऊपर एक खपड़ा रक्खा जाता है जिसे **खपड़ा पियाइब (पियाना)** अथवा **पिया-पिया कर खपड़ा रखना** कहते हैं। खपड़ा पियाने में जितनी ही सावधानी रक्खी जायगी छाजन उतनी ही अच्छी होगी और पानी का बहाव उतना ही ठीक रहेगा। दो खपड़ों की **अवॅठ** जहाँ मिलती है उसके ऊपर नरिया रक्खी जाती है। नरिया एक बीता लम्बी और अर्द्ध गोलाई में बनाई जाती है। किसी पोली, लंबी और गोली चीज को आधे-आध लंबाई में काट देने पर जो रूप होता है लगभग वही नरिया का रूप है। नरिया भी ओरौती की ओर से रक्खी जाती है। जिस प्रकार थपुआ एक दूसरे के ऊपर पिया-पिया कर रक्खा जाता है उसी प्रकार नरिया भी एक दूसरे पर पिया-पिया कर रक्खी जाती है। इस प्रकार रखने के लिए यह आवश्यक है कि इसका एक भाग सँकरा और दूसरा उससे चौडा हो। ऐसा होने पर ही एक के ऊपर दूसरी नरिया बैठेगी। चौड़ावाला भाग ओरौती की ओर रहता है और सँकरा भाग बड़ेर की ओर रहता है ताकि अगली नरिया के सँकरे भाग पर पिछली नरिया का चौडा भाग बैठ सके। इस प्रकार खपड़े और नरिया की **पाॅत** बैठाई जाती है। थपुआ और नरिया बिछाने के पहले सनी हुई मिट्टी और सरपत की आवश्यकता होती है। थपुआ बिछाने के पूर्व **मुट्ठों** पर सरपत फैलाकर गीली मिट्टी रखते हैं ताकि थपुआ जम कर बैठ सके। खपडे के नीचे दिए हुए सामान को **तराइल** कहते हैं। नरिया बैठाने के पूर्व उसके नीचे भी गीली मिट्टी दी जाती है।

२१८. जब नरिया की तीन पाॅत ओरौती से लेकर बड़ेर तक बैठ जाती है तब कुछ लोग चौथी पाॅत नरिया की नहीं बैठाते हैं। इसकी जगह पर थपुआ को उलट करके अर्थात् उसकी अवॅठ नीचे की ओर करके रखते हैं। इस प्रकार के रखने को **औंधा मारब** (मारना) कहते हैं क्योंकि इसमें खपड़ा **ओन्हाया** हुआ रहता है और ऐसे खपड़ों को **ओन्हउआ** या **औंधा** कहते हैं। इस खपड़े का चौड़ा भाग ओरौती की ओर रक्खा जाता है और सँकरा भाग पीछे की ओर ताकि पीछे वाले खपड़े का चौड़ा भाग अगले खपड़े को औंधाने पर ढक सके। जहाँ पर औंधा मारना होता है वहाँ पर नीचे वाले थपुओं की अवॅठ सटा कर नहीं रक्खी जाती क्योंकि खपड़े की चौड़ाई नरिया से अधिक होती है। इस प्रकार औंधा मारे हुए थपुओं के नीचे बड़ेर से ओरौती तक जगह छूटी रहती है। छाजन की मरम्मत के समय इसी खाली स्थान पर मरम्मत करने वाला अपने पैर रख कर चलता है। इस प्रकार औंधा मारने की यह क्रिया छाजन की मरम्मत में सहायक होती है। छाजन की मरम्मत को **फेरौटी** कहते हैं क्योंकि इस क्रिया में टूटे-फूटे खपड़े **फेर-फार** (अदल-बदल) दिए जाते हैं।

२१९. दोनों फरकों की छवाई समाप्त होने पर **बड़ेरा** (बड़ेर के ऊपर का भाग) बाँधा जाता है। कुछ लोग साथ ही साथ बड़ेरा की भी छवाई करते जाते

हैं। बड़ेरा की छवाई के लिए उस पर और उसके अगल-बगल गीली मिट्टी रखते हैं। फिर इस मिट्टी पर पूर्ववत् खपड़ा और नरिया रख कर छाजन करते हैं। इस क्रिया को बड़ेरा बाँधव (बाँधना) कहते हैं।

२२०. दोनों फरकों के मिलने पर दोनों बगल कोना बन जाता है। इन कोनों को कुंसिला या कोन्सिला कहते हैं। यहाँ पर भी मिट्टी रखकर, बड़ेरा की भाँति, छाजन की जाती है। इसे कोन्सिला बाँधव (बाँधना) कहते हैं। कोनों पर मिट्टी का कोहा या कलसा रखते हैं। कोहे का आकार एक बड़े कटोरे की सदृश होता है। यह औंधा कर रक्खा जाता है। इस पर पानी पड़ते ही बह जाता है। कोहे से छाजन की सुन्दरता भी बढ़ जाती है।

२२१ घर के भीतर जब आँगन या बखरी होती है तब भीतर के फरकों की छवाई में भी कोने होते हैं: इन्हें कोनिया कहते हैं। इन कोनियों की छवाई भी सावधानी से करनी चाहिए। चारों ओर से घिरे आँगन में चार कोनियाँ होती है। इनकी छवाई भी कोन्सिला की भाँति की जाती है।

२२२ आँगन के चारों ओर जो बरामदा होता है उसे ओसार कहते हैं। इसके बनाने के लिए घर की दीवार से कड़ियाँ लटकाते हैं। इन कड़ियो को खम्हों (खंभों) पर टेकाते हैं। खम्हे को खम्हिया भी कहते हैं। खम्हों के ऊपर लकड़ी का एक मोटा और चौड़ा पटरा रक्खा जाता है जिसे दासा कहते हैं। इस दासे पर मिट्टी रख कर तब कड़ियाँ रक्खी जाती है। जिस प्रकार साधारण छाजन में ताँता आदि लगते हैं उसी प्रकार इस छाजन में भी। पटुका के स्थान पर जो लकड़ियाँ दीवार से दासा तक रक्खी जाती हैं उन्हें कमरवल्ला कहते हैं। घर के बाहर बैठने-उठने के लिए जो खम्हियादार ओसार बनाया जाता है उसे ओसारा, बैठका, बरामदा, दलान या सहन कहते हैं।

२२३. बड़ेर की छाजन को बड़ेरी या मुँड़ेरी कहते हैं। छाजन अच्छी होने की पहचान यह है कि उसमें खूब ढाल हो और सामने से खड़े होकर देखने से सारी छाजन एक मालूम हो। ढाल के लिए लरकाव तथा सिधार शब्द प्रयोग में आते हैं पर सिधार शब्द का प्रयोग अधिकतर छान की ढाल के लिए होता है। जब ढाल कम होती है तब ऐसी ढाल को सेव या मचहिल कहते हैं। ढाल अधिक होने पर उसे अवाह या खर कहते हैं। फरके के ढालू होने से कहीं पर पानी रुकने की सम्भावना नहीं होती अतः चूने का भी भय नहीं रहता। जिस स्थान से पानी चूता है उसे चुअना कहते हैं। चुअना का पता लगाने के लिए वर्षा के समय छाजन में जिस जगह से पानी चूता है उस स्थान को पतली लकड़ी से खोदते हैं; इस प्रकार खोदने से खपड़े हिल-डुल कर टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं और फिर छवैया उस जगह के खपड़ों को

उघेर (हटा) कर वहाँ का चुअना ठीक करता है। ओरौती के नीचे की भीत को पनहाँ बोलते हैं क्योंकि पानी वहाँ से होकर बहता है।

मकान के अन्य भाग:

२२४. कच्चे मकान में पाटन देकर बनाए हुए ऊपरी भाग को कोठा या अँटारी कहते है। कोठा बनाने के लिए दो दीवारों पर करियाँ या कड़ियाँ बैठाते हैं। फिर इन कड़ियों पर फलठे आदि बिछाकर उसे मिट्टी से पाटते हैं। लगी हुई कड़ियो के किनारे दोनों ओर की दीवारों मे दबे रहते हैं।

२२५. आँगन से पानी के बहने के लिए जो नाबदान बनाया जाता है उसे पड़ोह कहते हैं। पड़ोह बहने का रुख उत्तर या पश्चिम की ओर होना चाहिए; पूर्व और दक्खिण बनाना अशुभ माना जाता है।

पानी रखने के लिए आँगन में एक ऊँचा स्थान बनाया जाता है जिसे घिरउँच कहते हैं।

मिट्टी का काम

२२६ मिट्टी का काम करने वाले को कुँहार, कोहार अथवा कुम्हार कहते हैं। इसकी स्त्री को कुम्हारिन, कोंहारिन या कोंहाइन कहते हैं। दोनों परानी (प्राणी) मिल कर अपने पेशे को करते हैं; यह बात अवश्य है कि पुरुष के जिम्मे मोटे काम तथा स्त्री के जिम्मे हल्के काम होते हैं। कुम्हार मिट्टी के बर्तन तथा खिलौने बनाता है लेकिन बिलकुल देहाती कुम्हार केवल साधारण बर्तन ही बना पाता है।

इस उद्योग की निम्न अवस्थाएँ होती है:—

(१) मिट्टी तैयार करना. (२) बर्तन बनाना, (३) बर्तन सुखाना, (४) बर्तन रंगना, (५) बर्तन नकासना और (६) बर्तन पकाना।

मिट्टी तैयार करना:

२२७. जो समान बनाना होता है उसकी दृष्टि से मिट्टी का चुनाव किया जाता है। थपुआ के लिए साधारण मिट्टी चाहिए लेकिन बरतन गढ़ने के लिए अच्छी लसदार मिट्टी चाहिए। ऐसी मिट्टी को गढ़नी माटी कहते हैं। मटियार मिट्टी बर्तन के लिए सब से अच्छी होती है। मटियार में करइल अधिक अच्छी होती है। इसके अलावा चिकनी मिट्टी भी काम मे आती है लेकिन इसमें ककड़ी अधिक होती है। मिट्टी के बर्तनों को रंगने के लिए काबिस मिट्टी का प्रयोग होता है। यह मिट्टी कम पाई जाती है। साधारणतः किसी गड्ढे की सतह में यह मिट्टी होती है। जिस गड्ढे में यह होती है उस में जब वर्षा का पानी कम हो जाता है तब

वह पत्थर का होता है। चाक घूमने के लिए जमीन में एक छोटी-सी खूँटी गाड़ दी जाती है जो इमली की होती है; क्योंकि इमली की लकड़ी मजबूत होती है, और कम घिसती है। इसी पर चाक का मध्यबिन्दु रहता है। चाक आसानी से चक्कर काटे इस लिए उस खूँटी में कभी-कभी तेल लगा देते हैं।

चाक पर बर्तन बनाने के लिए निम्न सामान चाहिए :—

चकइठ—यह एक डंडा है। चाक के किनारे पर एक छोटा-सा गड्ढा होता है; जिसे घुच्ची या घुलसी कहते हैं। कुम्हार इसी सूराख में चकइठ का सिरा डाल कर चाक को बाईं से दाहिनी ओर को चक्कर देता है। चाल ढीली हो जाने पर कुम्हार पुनः चकइठ से चाक को चालू कर देता है। चाक चलाते समय कुम्हार एक पीढ़े पर बैठता है।

चकउढ़, चकवाढ़ि, चकउँड या चकउँड़ि—यह बड़े कटोरे की तरह मिट्टी का एक बर्तन है। चाक के पास यह पानी से भरा हुआ रक्खा रहता है क्योंकि बर्तन बनाते समय उसे सँवारने के लिए कुम्हार को पानी की आवश्यकता पड़ती है।

छेवन या छीवन—यह एक पतला डोरा है जो एक सरकंडे या लकड़ी में बँधा रहता है; कुम्हार इस से चाक पर बने हुए बर्तन को काट कर अलग कर देता है। कुम्हार को इसी कार्य के कारण छुड़कट्टा भी कहते हैं।

२३२. बर्तन बनाने के लिए चाक पर जो मिट्टी रक्खी जाती है उसे पींड़ा कहते हैं। चलते हुए चाक पर हाथ रखने से चाक हाथ को झटक देता है अतः मिट्टी पकड़ कर बर्तन बनाना बड़े अभ्यास से आता है। मिट्टी को विभिन्न आकार देने के लिए बहुत हल्के हाथ की आवश्यकता है; अँगुलियों तथा कलाई पर विशेष अधिकार होना चाहिए। ऐसे बर्तन जो चाक पर बनते हैं उनकी पेंदी (पैंदी) तल होती है। चाक पर बननेवाले बर्तन ये हैं :—

२३३. मरका—यह पानी पीने का छोटा-सा मिट्टी का बर्तन है। इसमें लगभग सेर भर पानी आता है। इसी को पुरवा और कुल्हड़ भी कहते हैं। इसकी ऊँचाई लगभग आधा बित्ता तथा मुँह की चौड़ाई चार अंगुल होती है।

घरिया—घड़े का यह बहुत छोटा रूप है। बच्चे इस से खेलते हैं।

दिया या दीया—चिराग जलाने के लिए यह मिट्टी का एक बर्तन है।

दियरी या दियली—यह दिया का बहुत छोटा रूप है।

परई—यह दिये से बड़ी पर छिछली और हल्की होती है। इसके कई रूप प्रचलित हैं; जो कटोरे के आकार की होती है, उसे कोसा या कोसी कहते हैं। इस का एक छोटा-रूप ढकनी कहलाता है। परई को कसोरा या कसोरी भी कहते हैं।

कोहा—यह एक बड़ा और गहरा कटोरा कहा जा सकता है। इसमें गाय-बैल के बच्चे सानी खाते हैं। घर की छाजन में बाहर के कोने पर जब इसे उलट कर रखते हैं तब इसे कलसा कहते हैं।

पतुकी—यह हाँड़ी का छोटा रूप है। हाँड़ी-पतुकी दोनों शब्द साथ-साथ भी प्रयोग में आते हैं।

मेंटी—यह भी हाँड़ी के सदृश होती है लेकिन सुंदर गढ़ी हुई होती है। इस का पेट उभरा हुआ होता है। यह दूध-दही के रखने के काम में आती है।

कमोरी—यह घड़े के आकार का बर्तन है। दही मथने के काम में आती है।

सइका—यह शक्कर बनाते समय सीरा या रस उदहने के काम में आता है। इस के छोटे रूप को सइकी कहते हैं। इसे पकड़ने के लिए गर्दन के पास मुठिया बनी रहती है।

तौला—यह बड़े आकार का बर्तन है। गगरी से बड़ा होता है।

गगरी—यह छोटे घड़े के बराबर होती है।

डोल या लोट—यह बहुत बड़ी गगरी कही जा सकती है। बरई इस से अपनी पनवाड़ी सींचते है।

मेंटा—यह मेंटी से बड़े आकार का होता है।

२३४. पेंदी के अतिरिक्त जब और भाग चाक पर बन जाता है तब बर्तन को चाक पर से उतार लेते है और **अथरी** में रखते हैं। अथरी में राखी पड़ी रहती है। कुम्हारिन अथरी से बर्तन को उठा कर उस की पेंदी बनाती है। पेंदी बनाने के लिए बाएँ हाथ की अँगुलियों को बर्तन के अंदर सहारा देने के लिए डाल देते हैं और ऊपर से राखी डाल-डाल कर पींड़ से मिट्टी बढ़ाते हैं। **गहना** का भी प्रयोग आवश्यकतानुसार करते हैं। इस कार्य को **गहब** (गहना) या **सिरोहब** (सिरोहना) कहते हैं। पींड़ और गहना चलाने में बहुत होशियारी चाहिए। इस प्रकार मिट्टी बढ़ा कर या गह कर पेंदी का भाग पूरा कर लिया जाता है। पेंदी बन जाने पर धीरे-धीरे मुँहकड़ा बढ़ाते और माँठते जाते हैं अर्थात् हाथ में पानी लेकर उस की बारी को धीरे-धीरे सुडौल बनाते हैं। बर्तन तैयार होने पर अंत में **कनई** (गीली मिट्टी) बर्तन के ऊपर पोत देते हैं। इस से बर्तन के **चिरचिराने** का भय नहीं रहता। बर्तन को सूखने के लिए **साया** (छाया) में रखते हैं।

२३५. (इ) **पाथ कर बनाए जाने वाले बर्तन** :—पाथ कर बनाए जाने वाले बर्तनों में केवल थपुआ, थपुवा या थपुहा है। इसे खपड़ा भी कहते हैं। मकान की छाजन के काम में इस का प्रयोग होता है। थापने के लिए कुम्हार मिट्टी तैयार कर के उस का ढूहा लगा देता है। पाथी जाने वाली जगह को वह खूब झाड़-बटोर कर साफ करता है, फिर थोड़ी-थोड़ी सी मिट्टी लेकर उस का लोआ बनाता है। तदनन्तर लोए से मिट्टी निकाल कर उसे पींड़ से पीट कर थपुआ बनाता है। कुम्हार के साथ एक काम करने वाला और होना चाहिए क्योंकि थपुआ थापने के बाद उसे पानी लगा कर **माँजना** पड़ता है। माँजने के बाद थपुआ की **अवँठ** या **बारी** (किनारा) खड़ी की जाती है। इस

कार्य के लिए कुम्हारिन साथ-साथ रहती है। इस काम को सयाने बच्चे भी कर लेते हैं। थपुआ तैयार हो जाने पर जब वह कुछ भुरा (सूख) जाता है तब उसे ठढ़ियाया या खड़ियाया (खड़ा किया) जाता है। ऐसा करने के लिए दो खपड़े एक दूसरे के सहारे ओठगा (तिरछे खड़ा कर) दिए जाते हैं। खड़ियाने से हवा लगती रहती है। और खपड़ा जल्दी सूख जाता है।

२३६. (ई) साँचे पर बनाए जाने वाले बर्तनः—बड़े-बड़े बर्तन साँचे से बनते हैं। साँचे को गोंट कहते हैं। जो वस्तु बनानी होती है उसी आकार का मिट्टी का ठोस ढूहा बना लेते हैं; जैसे, हौदा बनाने के लिए हौदे के आकार का ढूहा बनाते है। ढूहे पर राखी छिड़क कर उस पर मिट्टी रख कर धीरे-धीरे हौदे का आकार बनाते हैं। हौदे के साँचे का आकार ऐसा होता है जैसा हौदे के ओन्हाने (उलट देने) पर। हौदा जब लगभग तैयार हो जाता है और केवल बारी बनानी शेष रह जाती है तब बारी के लिए मिट्टी की अलग से एक पट्टी बनाते हैं। फिर इस पट्टी को उस बर्तन में जोड़ देते हैं। हौदी (हौदा का छोटा रूप) भी इसी प्रकार बनाते हैं। हौदा और हौदी दोनों बर्तन पशुओं को सानी-भूसा खिलाने के काम मे आते हैं। ढोल या लोट से एक बड़ा बर्तन छोंड़ है जिसमें गल्ला रक्खा जाता है। इसका निचला भाग साँचे पर बना कर मुँहकड़ा बाद में बनाते हैं। खिलौना बनाने के लिए भी कुम्हार अपने पास साँचा रखता है, वह दीवाली के अवसर पर हाथी, घोड़ा, सिपाही, ग्वालिन आदि खिलौने बनाता है।

बर्तन सुखाना :

२३७. बर्तन तैयार होने पर उसे साया मे सुखाते हैं। जब बर्तन कुछ सूख जाते हैं तब उन्हें धूप में सुखाते हैं। यदि बर्तनों को एकाएक धूप में रख दिया जाय तो उनके चिटकने का डर रहता है। पछुवाँ हवा बहने पर भी बर्तन चिटक जाते हैं। जिस बर्तन मे अँकड़ी होती है वह भी चिटक जाता है। जब बर्तन पर चिटकने के कारण दरार पड़ जाती है तो उस पर गोबर और मिट्टी मिला कर लीप देते हैं। किन्तु यह जोड़ बाद में खुल जाता है।

बर्तन रँगना :

२३८. बर्तन पकने से पहले उस पर काबिस पोत देने से बर्तन पर गहरा लाल रंग आ जाता है। काबिस बनाने के निम्न ढंग हैं :—

(१) रेह को पानी में भिगो देने से उस का असर पानी में आ जाता है। इसी से मिट्टी सानते हैं। इस प्रकार जो मिट्टी तैयार होती है उसी से बर्तन रँगते हैं। (२) पहले रेह का पानी तैयार करते हैं। इस के बाद आम की छाल, बाँस की पत्ती, बबूल की पत्ती, अडुस की पत्ती तथा कराइन (पुरानी छान की पत्ती) को एक ओखरी में डाल कर खूनते हैं और रेह का पानी डालते जाते

हैं। इन्हीं चीजों के साथ मिट्टी को भी मिला कर खूनते जाते हैं, इस प्रकार जो मिट्टी तैयार हो जाती है उस का ढूँढ़ा (गोला) बना लेते हैं। इस गोले को आवश्यकता पड़ने पर पानी मे भिगो लेते हैं और इस से बर्तन रँगते हैं। (३) कुछ कुम्हार इस मे चिचिढ़ा की पत्ती भी मिलाते हैं और सारे सामान को कूट कर रेह के पानी मे एक दिन भिगो देते हैं। इसके बाद ओखरी मे कूटते हैं और फिर ढूँढ़ा बना कर रख लेते हैं।

रंग गाढ़ा करने के लिए ढूँढ़े को पोतनी मिट्टी मे मिला कर दुबारा पोतते हैं।

बर्तन नकासना :

२३९. देहाती कुम्हारो के पास बर्तन नकासने का औजार एक ही होता है। यह नाई की नहरनी या नहन्नी है। इसी से वह नकासने का काम लेता है। वस्तुतः नकासने का काम देहात मे बहुत कम होता है। दीवाली पर दीप रखने के लिए बनी झँझरी मे प्रकाश बाहर आने के लिए छोटे-छोटे सूराख काट दिए जाते हैं। झँझरी लोटे के आकार की होती है। इन सूराखों के काटने में ही कला है।

बर्तन पकाना :

२४०. बर्तन पकाने के लिए कुम्हार जमीन मे एक गड्ढा बनाता है। यह गड्ढा आकार मे छिछला होता है। इसे आँवाँ कहते हैं। इसी गड्ढे मे बर्तन रख कर उस मे गोहरी रख कर बर्तन पकाया जाता है। जब आँवाँ लग जाता है तब भी उसे आँवाँ ही कहते हैं। आँवाँ में प्रयोग करने के लिए गोबर की मुठिया अच्छी होती है। कुम्हारिन पशुओं की बैठानी पर जाकर गोबर इकट्ठा करती है और वहीं पर उसे मूठो से पाथ कर धूप मे सूखने के लिए डाल देती है। मुठिया आकार मे कुछ गोली होती है। इस की आँच मध्यम श्रेणी की होती है जिसे मद्धिम आँच कहते है। इसकी आँच से बर्तन अच्छा पकता है। दूसरे प्रकार का ईंधन गोहरा कहलाता है। इसके दो भेद होते है एक बहुत पतला जिसे चिपरी और दूसरा कुछ मोटा जिसे गोहरा गोहरी या गोंइठा या गोंइठी कहते हैं। बरसात में कुम्हार गोबर इकट्ठा करता है और वर्षा समाप्त होने पर उसे पाथता है। इस प्रकार गोबर सड़ जाता है इस गोबर की बनी हुई मुठिया या चिपरी अच्छी होती है। गोहरा या गोंइठा मोटा होने से गम्हीर (गम्भीर) आँच देता है। बर्तन पकाने में इस का प्रयोग यथा संभव कम करते हैं। गोबर की छोत को सूखने पर कंडा कहते हैं। आँवाँ में इस का भी प्रयोग करते हैं।

२४१. आँवाँ म सब से नीचे राखी होती है। उसके ऊपर मुठहथ (मूठी बंद हाथ की नाप—लगभग डेढ़ बीता) भर उपला लगाते हैं। इस के बाद बर्तनों की परत पर परत बिछाते जाते हैं। सब से पहले बड़े-बड़े बर्तन लगाते हैं। तह को बराबर करने के लिए यथास्थान छोटे-छोटे बर्तन भी रखते जाते हैं। आँवाँ के बीच में एक ऐसी हाँड़ी रखते हैं जिसके बीच में सूराख होता है। इस हाँड़ी का संबंध

आँवाँ में बिछाए गोहरो से होता है। जब तक आँवाँ पूरा नहीं हो जाता तब तक इसी प्रकार की हाँड़ी एक के ऊपर एक करके रखते जाते हैं। इसी हाँड़ी के सूराख के द्वारा, आँवाँ बंद होने पर, आँवाँ के निचले भाग में आग पहुँचाई जाती है, जिससे आँवाँ सुलगता है। बर्तन की प्रत्येक **परत** के बाद गोहरा **जोरियाया** (जोड़ा) जाता है। जब अंतिम तह लग जाती है, तब आँवाँ बंद करने के लिए भी एक तह रक्खी जाती है। इस के साथ-साथ गोहरी के छोटे-छोटे टुकड़े जिन्हें **करसी** कहते हैं, डाल दिए जाते हैं। आँवाँ बंद करने के लिए ईख की पत्ती या **कराइन** रखते हैं और इसके ऊपर मिट्टी का **गारा** लोर देते हैं। इस प्रकार आँवाँ ढँक जाता है। अब इसके ऊपर थोड़ी राखी छोर देते हैं। इस प्रकार **छोपन** या **छापन** का कार्य समाप्त होता है। आँवाँ में आग डालने के लिए एक आदमी को सीढ़ी या जुआठ पर बैठाकर सीढ़ी को दो आदमी पकड़ कर उठाते हैं और फिर वही आदमी हाँड़ी के सूराखों द्वारा आँवाँ में आग पहुँचाता है। इन हाँड़ियों को **नरिहर** कहते हैं। चौबीस घंटे में आँवाँ पक जाता है। अच्छा पका हुआ बर्तन **खर** और कम पका **सेवर** कहलाता है।

कहीं-कहीं विशेषतः निजामाबाद तहसील सदर (आजमगढ़) में कुम्हार कुछ विशेष ढंग के बर्तन बनाते हैं: इन बर्तनों को आँवाँ में न पका कर एक बड़े कूँड़े में पकाते हैं और कंडों की जगह धान की भूसी का प्रयोग करते हैं। इस से ये बर्तन पकने पर काले होते हैं इन पर पारे से फूल-पत्ती बनाते हैं। काले बर्तन पर पारे का श्वेत रंग बहुत शोभा देता है। पर ये बर्तन कमजोर होते हैं। ये बाहर शहरों में भेजे जाते हैं। यहाँ गुलदस्ते, तश्तरियाँ चाय के बर्तन आदि अधिक बनते हैं।

लकड़ी का काम

२४२. लकड़ी का काम करने वाले को **बढ़ई** कहते हैं। कभी-कभी लोहार और बढ़ई दोनों का काम एक ही कारीगर करता है।

बढ़ई के औजार:

बसूला—इसके द्वारा लकड़ी गढ़ी जाती है। बसूला बहुत काम का औजार है। इसका लोहा बहुत अच्छा होता है इसकी धार पानी में बुझाई रहती है। इस क्रिया को **पानी चढ़ाइब** (चढ़ाना) कहते हैं। पानी चढ़ाने से धार कड़ी और तेज हो जाती है।

रुखान या रुखानी—यह लकड़ी काटने या लकड़ी में गड्ढा करने के काम में आता है। इसकी धार लगभग आधी इंच चौड़ी होती है साधारण रुखानी देहाती लोहार बना लेता है पर यह कारखाने से भी बनकर आती है जिन्हें विलायती रुखानी

रहते हैं। रुखानी अच्छे लोहे की बनती है। इसके सिरे पर लकड़ी का दिस्ता लगा होता है जिसमें रुखान का ऊपरी नोकीला सिरा—गूँज—ठोंका रहता है। रुखानी के प्रयोग के समय उसको ठोंकना पड़ता है: चोट से लकड़ी फट न जाय इसलिए दिस्ते पर रस्सी बाँध दी जाती है।

आरी—यह लचकदार चद्दर की होती है। इसका अगला भाग पिछले से क्रमशः सँकरा रहता है। लकड़ी चीरने के लिए इसके एक किनारे पर रेती से दाँत बना दिए जाते हैं। इसे पकड़ने के लिए लकड़ी का दिस्ता लगा रहता है। आरी कभी-कभी मुँज (मुड़) कर टूट जाती है। आरी से जब बाँस काटना होता है तब इसके दाँतों को इस ढंग से बनाते हैं कि एक दाँत बाईं ओर तो दूसरा दाहिनी ओर झुका हो। इस प्रकार की आरी से बाँस काटने में आसानी पड़ती है, सीधे दाँतोंवाली आरी इसमें फँस जाती है और उसके खींचने में कठिनाई पड़ती है। आरी घोंठिल (कुंठित) हो जाने पर रेती से तेज की जाती है।

आरा—आरी से यह बड़ा होता है और बड़ी लकड़ियों के चीरने के काम में आता है। इसके दो भेद होते हैं—(अ) फेटकट आरा—इस आरे के दोनों सिरों पर दिस्ते लगे रहते हैं। जिन्हें पकड़ कर दोनों ओर से आदमी खींचते हैं। इसकी चद्दर को बन्न या बन्नि कहते हैं क्योंकि यह आरा साधारणतः विलायती कपड़े की गाँठों के पक्के बंद से बनता है। (आ) चिरुआँ या चिरवाँ आरा—इसके चारों ओर लकड़ी का चौखटा होता है। इसकी चद्दर फेटकट आरे से हलकी होती है यह साधारणतः आराकस (आराकश) के पास होता है।

टाँगा या टँगारा—इससे लकड़ी काटी जाती है। लकड़ी के समूचे टुकड़े को कुंदा तथा फाड़े हुए टुकड़े को चैला कहते हैं चैला के छोटे रूप को चैली तथा अत्यंत छोटे-छोटे टुकड़ों को चूनी कहते हैं। टाँगा खड़े होकर दोनों हाथों से चलाया जाता है। इसके छोटे रूप को टाँगी कहते हैं।

रंदा या रन्ना—लकड़ी साफ करने या चिक्नी करने का यह औजार है। रंदा चलाने को रंदा करब (करना) या रंदा फेरब (फेरना) कहते हैं।

बरमा—यह लकड़ी में सूराख करने का औजार है। इसके मध्य भाग में एक लकड़ी लगी रहती है; इसी लकड़ी पर रस्सी लपेटकर बरमा चलाया जाता है। बढ़ई बरमा पकड़ता है और एक अन्य पुरुष रस्सी के दोनों किनारों को बारी-बारी खींचता है जिससे बरमा चक्कर करता है। जब बढ़ई स्वयं बरमा चलाता है तब वह एक धनुही का प्रयोग करता है; धनुही की डोरी बरमा की लकड़ी में फँसा कर दायें-बायें घुमाने से बरमा घूमता है। बरमा के सिरे पर लकड़ी की एक टोपी पहनाई रहती है जिसे बढ़ई बरमा चलाते समय दबाए रहता है। यह भाग बरमा घूमते समय स्थिर रहता है और शेष भाग चक्कर करता है। बरमा के छोटे रूप को बरमी कहते हैं।

गिलमिट—यह मोटी लकड़ी में सूराख करने का विशेष औजार है।

परकार—इससे वृत्त बनाते हैं।

समकोनिया—इससे समकोण नापते हैं।

लकड़ी के गुण—दोषः

२४३. पक्की और मजबूत लकड़ी को **पोढ़, पोढ़गर** अथवा **पोरगर** कहते हैं। कच्ची लकड़ी उलझकर **अइँठा-बाँकर** (टेढ़ी-मेढ़ी) हो जाती है जिसे **बरब** (बरना) कहते हैं। कच्ची लकड़ी में **घुन** लग जाता है, यह जल्दी सड़ती है। पोली लकड़ी को **खोखली** और ऐसी लकड़ी को जो भीतर ही भीतर सड़ जाती है **भॅड़छी** कहते हैं। लकड़ी में जहाँ **गाँठ** होती है वहाँ टूटने का भय रहता है।

लकड़ी ढोनाः

२४४. जिस लकड़ी को ढोना होता है उसके दोनो किनारों में रस्सी का फंदा लगाते हैं। इस रस्सी को **जोरई** या **सगंधा** कहते हैं। फिर जोरई के दोनों किनारों को दो बाँस में अलग-अलग बाँधते हैं और उन बाँसों को पकड़कर चार आदमी उठाते हैं। इस प्रकार लकड़ी ढोने को **जोरई** या **सगंधा से ढोउब** (ढोना) कहते हैं। साझे का काम ठीक नहीं माना जाता इस संबंध में एक कहावत है **साझे की सुई सगधा से जाई** अर्थात् सुई इतनी हल्की चीज को ढोने के लिए यदि वह साझे की है तो सगंधा चाहिए। लकड़ी का फंदा ढीला रहने पर लकड़ी हिलती-डुलती है जिसे **डग मारब** (मारना) कहते हैं। जब लकड़ी अधिक वजनी होती है तब उसके ढोने में और आदमी लगाने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में जोरई वाले बाँसों के किनारों पर बाँस के टुकड़े लकड़ी की लंबाई की दशा में समकोण रूप में बाँधते हैं। अब इनमें से प्रत्येक बाँस को दो दो आदमी उठाते हैं। इस प्रकार लकड़ी के दोनो ओर चार-चार आदमी लगते हैं। ढोने के इस ढंग को **छिउँकी** कहते हैं।

लकड़ी अहारनाः

२४५. किसी बड़ी लकड़ी को सुडोल करने के लिए **टँगारा** (कुल्हाड़ा) का प्रयोग होता है। लकड़ी के अगल-बगल के भाग को काट-छाँट कर निकालने को **अहारब** (अहारना) कहते हैं। लकड़ी उलटने को **पलथा खिलाइब** (खिलाना) या **पलथियाइब** (पलथियाना) कहते हैं। अहारने से जब छाल निकल जाती है और लकड़ी चौकोर हो जाती है तब उसे **सिल्ली** कहते हैं। लकड़ी के भीतरी अंश को **हीरा** कहते हैं। सिल्ली को कई टुकड़ों में काटने को **फँट काटब** (काटना) या **गँड़ियाइब** (गँड़ियाना) कहते हैं।

लकड़ी चीरनाः

२४६. लकड़ी चीरने के लिए सिल्ली को तिरछे एक बाँस के सहारे खड़ी करते हैं। यह बाँस दो गड़ी हुई थूनियों में बँधा रहता है। लकड़ी की सिल्ली जब इधर-उधर डगमगाती है तब उसे **मेल्हब** (मेल्हना) कहते हैं। जिस जगह से

लकड़ी को चीरना होता है उस जगह निशान बना देते हैं। यह निशान सूत से लगाया जाता है। सूत को गेरू या कालिख में रँग लेते हैं। सूत से निशान लगाने को सूत लगाइब (लगाना) कहते हैं। सिल्ली को दो टुकड़ों में चीरने को अधवार खोलब (खोलना) कहते हैं। सिल्ली चीर कर आवश्यकतानुसार पल्ले निकाले जाते हैं। सिल्ली के बगल के पल्लों को बगला कहते हैं। लकड़ी चीरने से जो बुरादा गिरता है उसे भुर्रा (भूरा) कहते हैं। आरा चलाने के लिए दो आदमी लकडी के सामने और एक आदमी पीछे की ओर लगता है। पीछे वाला आदमी आरा चलाने के साथ-साथ यह देखता रहता है कि आरा निश्चित स्थान पर चलता रहे; इस क्रिया को आरा साधब (साधना) कहते हैं। आरे की नोक सामने की ओर रहती है इसलिए सामने के आदमियों को अधिक परिश्रम पड़ता है।

नापना, गढ़ना, सूराख करना, खरादना आदि:

२४७. साधारण नाप जोख के लिए बढ़ई एक तीन या चार अंगुल का नपना बना लेता है जिसे कैंड़ा कहते हैं। इसी नाप से वह लकड़ी पर निशान बनाता है।

लकड़ी गढ़ने का कार्य बसूले से होता है। गढ़ने की सुविधा के लिए बढ़ई जमीन में एक खूँटा गाड़ लेता है जिसके सहारे पल्ले को टेक देता है। लकड़ी गढ़ते समय बसूला जमीन पर न लगे इस उद्देश से लकडी को एक मोटी लकड़ी के टुकड़े पर रखते हैं। इस टुकड़े को ठीहा कहते है। ठीहे में थोड़ा सा गड्ढा रहता है जिस पर लकडी की वारी (किनारा) रहती है। गढ़ते समय लकड़ी काटने-छाँटने को लकड़ी कमाब (कमाना) कहते हैं।

२४८. लकडी गढ़ लेने पर साफ करने का काम रंदा से होता है। इस क्रिया को रंदियाइब (रंदियाना) कहते हैं. रंदा मे एक पतली लोहे की पत्ती लगी रहती है जिसके सहारे लकड़ी की सफाई होती है। कभी-कभी बडे रंदे की जरूरत पड़ती है जिसे दो आदमी चलाते हैं।

२४९. बड़े सूराख करने के लिए रुखानी का प्रयोग होता है। गोल और चौकोर दोनों ढंग के सूराखों के लिए अलग अलग रुखानी होती है। किसी सूराख में किसी लकड़ी को बैठाने को सालब (सालना) कहते हैं। खटिया या चारपाई की पाटी और सिरई को गोड़ों (पावों) के सूराखों में पेश करने को पाटी और सिरई सालब (सालना) या खटिया सालब (सालना) कहते हैं। छोटे सूराख करने के लिए बरमा या बरमी का प्रयोग होता है।

२५०. लकड़ी खरादने के लिए कुछ लोहे के औजार होते हैं। जिस ढंग की खराद करनी होती है उस ढंग की खराद के लिए विशेष औजार चाहिए। औजार देहात के लोहार बना लेते हैं। लेकिन देहात में खराद का काम बहुत कम होता है। कुछ बढ़ई पलंग का पावा खरादना जानते हैं। खरादने का कार्य भी बरमा खींचने की तरह होता है; खरादने के औजार को, जिसमें रस्सी लपेटी

रहती है, एक आदमी खींचता है और बढ़ई औजार के सहारे घूमती हुई लकड़ी को खरादता जाता है।

बढ़ई किसान के खेती संबंधी सभी औजारों को समय-समय पर ठीक करता है और उसके एवज में उसे प्रत्येक फसल पर कुछ निश्चित गल्ला मिलता है। इस प्रकार साल भर मे जो अनाज मिलता है उसे **साली** या **पाथी** कहते हैं। लकड़ी के कामों मे दरवाजा और गाड़ा बनाना ये दो मुख्य काम हैं—

द र वा जा :

२५१. मकान के प्रवेश-द्वार को **दुआरि, मो हार** या **दरवाजा** कहते हैं। दुआरि को बंद करने के लिए जो दरवाजा लगता है उसे अधिकतर **किवाड़** या **केवाड़** कहते हैं। छोटे किवाड़ को **किवाड़ी** या **केवाड़ी** कहते हैं। जहाँ दरवाजा लगना होता है वहाँ, जैसा कि मकान बनाने के विवरण में बतलाया गया है, **पटौधन** या **दुरवन** दिया रहता है। दरवाजे के पल्लों को लगाने के पूर्व, उसके **उतरंग, चौखट** और **बाजू** को भी दीवार में बैठा देते हैं। उसके साथ ही पुराने ढंग के दरवाजों के **चूर** के लिए ईंट या लकड़ी की **ठेहरी** भी दोनों **बाजुओं** के नीचे लगा दी जाती है।

२५२. एक दरवाजे में दो **पल्ले** होते हैं। प्रत्येक पल्ला **दो तख्तों** के जोड़ से बनता है क्योंकि एक पल्ले की चौड़ाई के बराबर लकड़ी नहीं मिलती है। इन तख्तों को आपस में **गोजहिली** या **गुजहिली** (लकड़ी की बनाई गई कील) द्वारा एक दूसरे से संबंधित करते हैं। तख्ते आपस में जुटे रहें इस दृष्टि से फिर प्रत्येक पल्ले पर बेंड़े-बेंड़ बराबर दूरी पर चार **पुश्तवान** (दो इंच चौड़ी और एक इंच मोटी लकड़ी) जड़ देते हैं। पुश्तवान को **गुलाबा** (एक बड़े लोहे की कील) से जड़ते हैं।

२५३. दरवाजे के ठीक-ठीक और बराबर से बंद होने के लिए बाएँ पल्ले के दाहिने किनारे पर चार अंगुल चौड़ी और दो अंगुल मोटी लकड़ी लगाते हैं जिसे **बेनी** या **बेनिया** कहते हैं। बेनी वाला पल्ला पहले **ओठगाया** जाता है और साधारण पल्ला उसके ऊपर। **सकड़ी** द्वारा बाहर से दरवाजा बंद करने के लिए सकड़ी को साधारण पल्ले में लगाते हैं और **कोढ़े** को उतरंग में। जब सकड़ी पीछे से बीच में लगती है तब कोढ़ा साधारण पल्ले मे लगता है और सकड़ी बेनी वाले पल्ले के मध्य पुश्तवान में। दरवाजे को पीछे से बंद करने का एक पुराना ढङ्ग **बिलारी** द्वारा है। दरवाजे के पीछे बीचो-बीच दरवाजे की चौड़ाई के बराबर एक लकड़ी लगाते हैं; यह लकड़ी दोनों पल्लो में जड़े **करुवार** (चूल्हे के आकार का एक कीला) के बीच में रहती है और दरवाजे के खोलने और बंद करने के लिए आवश्यकतानुसार खिसकाई जाती है।

दरवाजे में जब लोहे का **जँगला** बैठाते हैं तब उतरंग और चौखट में **सूराख**

कर के लोहे के छड़ लगाए जाते है। जँगले के बीच बेंड़े-बेंड़ एक लकड़ी लगती है जिसे **डँड़हरी** कहते हैं। डँडहरी में छड के आर-पार जाने के लिए सूराख रहते हैं।

छप्पर के मोहार मे बाँस के फल्ठों का **टटरा** लगते हैं। टटरा के ऊपर-नीचे के बाँसो को **सिरई** तथा दोनो बगल के बाँसो को **पाटी** कहते है। बाँस के फल्ठों को **बाता** कहते हैं। **बरदौर** के मोहार में केवल एक बाँस लगा देते है जिसे **बेंड़ा** या **ठ्यौड़ा** कहते हैं। इसके दोनो **हूर** दीवार मे रहते हैं।

बैल गाड़ी :

२५४. बैलगाडी मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है। **एकबैलिया गाड़ी** जिसे **एक्की गाड़ी** भी कहते है दूसरी **दोबैलिया गाड़ी**। एकबैलिया मे एक बैल लगता है तथा दोबैलिया म दो बैल लगते हैं। दोबैलिया गाडी मे जब एक बैल और लगा दिया जाता है तब उसे **तिनबैलिया गाड़ी** कहते हैं। तीसरा बैल दोनो बैल के आगे लगता है। इस बैल के लिए एक **बींड़** या **बोंड़ी** बनाई जाती है जो उसकी गर्दन पर रहती है। बोंड़ी पुराने टाट और कपडों को सी कर बनाई जाती है। गद्दे वाला भाग बैल की गर्दन पर रहता है और उसके दोनों किनारे पिछले दोनो बैलों के जुए के मध्य मे बँधे रहते हैं। बींड़ी वाले बैल को **बिड़िहा बैल** कहते हैं। साधारणतः यह बैलगाड़ी के पीछे बँधा रहता है। जब गाड़ी को कहीं चढ़ाव पर ले जाना होता है या शुरू शुरू मे जब गाडी को उभारना होता है तब बिड़िहा बैल को आगे कर देते है। यह बैल अड्ड होता है क्योकि अंड्ड बैल जोशीले होते हैं और इनका **डिल्ल** (डील) ऊँचा होता है। बींड़ डिल्ल के सहारे रुका रहता है। बिड़िहा बैल के लिए **देशी नाटा** या **देवहटिया नाटा** अच्छा माना जाता है। बिड़िहा के अतिरिक्त दोनों बैलों को अलग-अलग **पलहा** अथवा **पल्लहवा बैल** कहते हैं। पलहा बैल बद्धी होते हैं। इसके लिए चम्मली बैल अच्छे माने जाते हैं क्योंकि ये ऊँचे, मजबूत तथा सुद्ध (सीधे) होते हैं। जब **गाड़ी जोतना** होता है तब बैलों को जुए के दोनों **पल्लों** मे अलग-अलग नाध देते हैं। इनकी **पगहियाँ** गाड़ी के फड के खूँटे में ढीली बाँधी जाती हैं। बिड़िहा बैल के नाधने पर उसके बींड की रस्सी को बैल के पेट के नीचे से बाँध देते हैं ताकि बींड़ गर्दन से खिसक न जाय। बिड़िहा बैल की दोनो **दोगाहियों** को गाड़ीवान अपने हाथ मे ले लेता है और उसी के सहारे बैलो को हाँकता है।

२५५. देहात मे एक छोटी गाड़ी खाद आदि लादने के लिए होती है जिसे **गाड़ा** कहते हैं इसके पहिए ठोस होते हैं। चलते समय यह बहुत आवाज करती है। छोटी होने के कारण यह सब जगह सुविधापूर्वक आ जा सकती है।

२५६. बैलगाड़ी का प्रमुख अंग **पहिया** है। पूरी पहिया को **चक्कर** कहते हैं। जमीन में एक खूँटी गाड कर उसे केन्द्र मानकर एक रस्सी द्वारा चक्कर के विभिन्न

भाग मूड़ी आरागज, तथा पहिए का स्थानवृत बनाकर निश्चित करते हैं। मूड़ी पहिए के मध्य में होती है। आरागज के द्वारा इसका संबंध पहिए से स्थापित होता है। इसके बीचोबीच आरपार एक सूराख होता है जिसमें से गाडी का धुरा निकलता है। इस सूराख को नहीं कहते हैं। मूड़ी और पहिए में संबंध जिन लकड़ियों के द्वारा होता है उन्हें आरागज कहते हैं। जिस प्रकार साइकिल के पहिए में तीलियाँ होती हैं उसी प्रकार गाड़ी के पहिए में आरागज होते हैं। ये संख्या में प्रायः आठ होते हैं। इनका एक सिरा मूड़ी में होता है और दूसरा पहिए की पुट्ठी में। पहिया पूरे चक्के को तो कहते ही हैं पर चक्के के उस भाग को भी पहिया कहते हैं जो पुट्ठियों से बनता है और जो आरागज से संबंधित रहता है। पूरी पहिया के लिए पाँच या छः पुट्ठियाँ चाहिए। दो पुट्ठियों को आपस में जोड़ने के लिए एक पुट्ठी में छेद और दूसरे में चूर या चूरा बनाकर उसे बैठा देते हैं। इस प्रकार सारी पुट्ठियाँ एक दूसरे से जुड़ जाती है। जोड़ को मजबूत करने के लिए ऊपर से एक लकडी ठोंक देते हैं जिसे जोन्ही कहते हैं। पहिया के ऊपर लोहे का बंद चढ़ा दिया जाता है जिसे हाल कहते हैं इससे पहिया पक्की सडक पर कम घिसती है। लेकिन देहाती गाड़ियों में हाल चढ़ी हुई पहिया बहुत कम होती है क्योंकि वहाँ सड़कें कच्ची हैं।

२५७. गाड़ी का दूसरा प्रमुख अंग फड़ है क्योंकि इस पर सामान लादा जाता है। इसमे दोनों बगल दो लट्ठे होते हैं और इन पर पटरे जड़े होते हैं। किसी-किसी गाड़ी मे पटरे नहीं जड़े जाते लट्ठे बाँध दिए जाते हैं। गाड़ी के फड़ के दोनों ओर घेरा बनाने के लिए लट्ठों में सवा या डेढ़ हाथ लंबे लकड़ी के टुकड़े गाड़ दिए जाते हैं। इनका सिरा बाँस रखने के लिए कटा रहता है। इन खूँटों को कहुआ कहते हैं। सामने की ओर जहाँ ये लट्ठे मिलते हैं वहाँ से जुए तक एक मोटी लकड़ी लगी रहती है जिसे सगुनी कहते हैं। इस लकड़ी को गाड़ी बनाते समय बढ़ई सब से पहले बनाता है इसीलिए इसका यह नाम है। फड़ के निचले भाग में पीछे की ओर एक लकडी का टुकड़ा लगभग दो हाथ लम्बा झूलता रहता है जो गाड़ी को उलटने से रोकता है। जब गाड़ी पर पीछे की ओर बोझ अधिक हो जाता है तब ऐसी गाड़ी को उलार कहते हैं। उलार गाड़ी को गिरने से बचाने के कारण ही इस लकड़ी को उलरुआ कहते हैं। इसी प्रकार आगे की ओर भी नीचे एक लकड़ी लगी रहती है जो बैलों के एका-एक बैठ जाने पर गाड़ी के बोझ को रोक लेती है और गाड़ी का बोझ जुए पर नहीं पड़ने पाता। इस लकड़ी को उँटहरा कहते हैं। ऐसी गाड़ी जिसका बोझ आगे अधिक रहता है दाबू कहलाती है।

२५८. धुरा के सहारे गाड़ी की पहियाँ चलती हैं। यह लोहे का चार-पाँच हाथ लम्बा छड़ होता है यह फड़ के नीचे बीचों-बीच एक पहिए को दूसरे से

संबंधित करता है। मूड़ी के अंदर धुरा घूमने के स्थान में एक लोहे का टुकड़ा लगा रहता है जिसे **आवन** अथवा अवाँन कहते हैं। इसके रहने से मूड़ी का सूराख घिसता नहीं है। मूड़ी के पीछे एक लकड़ी होती है जिसे **नसौड़ी** कहते हैं। इसी में से होकर धुरा मूड़ी मे जाता है। नसौड़ी और फड़ के बीच मे एक लकड़ी होती है जिसे **रवाई** या **सवाया** कहते हैं। नसौड़ी के अगल-बगल पटरियाँ होती हैं जिन्हे **सुजावा** कहते हैं। मूड़ी को बाहरी ओर फड़ के लट्ठो के बगल मे दोनो ओर लकड़ियाँ होती हैं जिन्हे **पैजनी** कहते हैं। इन लकड़ियों पर चढ कर सामान लादने मे सुविधा होती है। धुरा बाहर निकालने के लिए इनमे सूराख कर दिया जाता है। ये लट्ठो से बँधी रहती है।

२५९ बैलगाड़ी के चलते समय दो बातो का विशेष ध्यान रखना पड़ता है एक तो गाड़ी उलार न होनी चाहिए दूसरे गाड़ी के बगल या तिरछे गिरने का भय न होना चाहिए। जब गाड़ी चढ़ाव पर जाती है तभी गाड़ी के उलटने का डर होता है। *गाड़ी उलटने पर बैल जुए मे लटक जाते हैं। यदि तुरन्त ही* उनकी रस्सियाँ काट न दी जायें तो उनके प्राण जाने का भी भय रहता है। गाड़ी में उलरुवा के अतिरिक्त एक मोटी लकड़ी और लगी रहती है जो गाड़ी को उलटने से रोकती है। उलरुवा यदि धोखा दे जाता है तब यह लकड़ी सहारा करती है। इस लकड़ी को **थोब** कहते है। गाड़ी जब ऐसे स्थान पर चलती है जहाँ एक पहिया ऊँचाई पर और दूसरी नीचाई पर हो तब करवट होने का भय रहता है जिसे **पल्था खाव (खाना)** कहते हैं। ऐसी दशा में बैलों के प्राण संकट में तो रहते ही हैं गाड़ीवान भी कठिन परिस्थिति में पड़ जाता है।

२६०. गाड़ी लादते समय पहिया चक्कर न करे इस उद्देश्य से उसके पास **ओट** रख दिया जाता है। कुछ गाड़ीवान ओट देने के लिए लकड़ी का ओट अपने साथ रखते हैं। विशेष चीजों के लादने के लिए विशेष व्यवस्था करनी पड़ती है। भूसा लादने के लिए टाट के परदे होते हैं जिन्हे **पाखड़ी** कहते हैं। भूसा लादने के बाद पाखड़ी को रस्सियो से कस कर बाँध देते हैं। खाद लादते समय गाड़ी के फड़ पर **गोनरी** या **चटाई** अथवा **टाट** बिछाते हैं और दोनों के बगल बाँस का **टट्टर** खड़ा कर देते हैं इससे खाद गिरती नहीं है। खाद गिराते समय बैलों को खोल दिया जाता है और गाड़ी पीछे को उलार कर दी जाती है। कंकड़ और मिट्टी भी इसी प्रकार लादी जाती है। बरसात में सामान की बचत के लिए उपर से **टाट, मोमजामा** अथवा **पाल** डाल देते हैं। इसके अलावा **सिरकी** की छाजन भी प्रयोग में लाते हैं।

२६१. गाड़ी की धुरी मे तेल देने के लिए जब पहिया को बाहर करना होता है तब फड़ को उठाने के लिए उसके नीचे चार-पाँच हाथ लम्बा बाँस या लकड़ी का टुकड़ा लगाते हैं इस लकड़ी को **सिधवाई** या **भरँगा** कहते हैं। पहिया अलग कर लेने पर धुरी के उस भाग पर जो आँवन के अंदर रहता है। सुतली

लपेटते हैं। सुतली लपेटने के पहले उसके रेशे अलग कर लेते हैं। सुतली लपेट लेने पर रेंड़ी का तेल चुपड़ते हैं इस के बाद फिर पहिया को धुरी में धीरे-धीरे घुमा कर चढ़ा देते हैं इस क्रिया को गाड़ी तेलियाइब (तेलियाना) अथवा तुलाइब (तुलाना) कहते हैं. इससे गाड़ी हलकी चलती है।

पक्की सड़क पर चलने वाली गाड़ियों के बैलों के खुर बहुत जल्दी घिस जाते हैं इसलिए इनके खुर में लोहे की नाल बाँध दी जाती है। बैलों के खुर फटे होते हैं इसलिए खुर के दोनों भागों में अलग-अलग नाल लगते हैं।

बैलों को भोजन कराने के लिए गाड़ीवान के पास टाट का झोला होता है; इसी झोले में भूसा-दाना-खरी आदि डालकर उसे थोड़े पानी से करसो देते हैं इस प्रकार की सानी को नझोला कहते हैं बैल को पानी पिलाने के लिए गाड़ीवान लोहे का एक डोल रखता है।

२६२. बैल को तेज दौड़ाने के लिए उसकी पूँछ को ऐंठना पड़ता है। काँछ (दोनों जंघों के बीच का भाग) छूने पर भी बैल भागता है ऐसा करने को अरुनिआइब (अरुनियाना) कहते हैं। बैल जब अधिक थक जाते हैं तब वे जुआ को कंधे से फेंक देते हैं, इसे पल्ला फेंकब (फेंकना) कहते हैं और बैलों की इस अवस्था को उकन्हब (उकन्हना) कहते हैं यथा बैल उकन्हि गइलें अर्थात् बैलों ने कंधे से जुआ फेंक दिया। जब बैलों को बहुत परिश्रम पड़ता है तब कहा जाता है कि बैलों का चहुँआ छूट गया। बैलों का कंधा जुए की रगड़ से कट जाता है जिसे कान्ह आइब (आना) कहते हैं।

चमड़े का काम

२६३. यह उद्योग चमार जाति का है जो लगभग समाप्त हो चुका है। केवल कच्चे चमड़े के पकाने का काम शेष है। जो पशु मरते हैं उनके चमड़े को अलग करके पकाया जाता है और उसी से सामान बनाते हैं। मरे हुए पशु को डाँगर कहते हैं। डाँगर ढोने के लिए गाँव का एक विशेष चमार होता है जिसका यह काम पुश्तैनी होता है। इस चमार को गँवहियाँ चमार कहते हैं। चमार डाँगर को गाँव से बाहर एकांत स्थान में ले जाता है और डाँगर के हाड़-मांस को अलग कर खाल निकाल लेता है। पशु के विभिन्न अंगों के लिए वह निम्न शब्दावली प्रयोग करता है। वह खनड़ोही सर के लिए, भूसुन ओंठ के लिए तथा ओझरी पेट के लिए प्रयोग करता है। हृदय को वह करेजा (कलेजा) या चनेरआ कहता है। हृदय के पास जो नरम (कोमल) मांस होता है उसे फेंफड़ा कहते हैं। गले की नली को घाँटी तथा रक्त को रकत या

रक्कत कहा जाता है। रीढ़ के दोनों ओर अगल-बगल एक पतली नस होती है जिसे पाढ़ी कहते हैं। किसी-किसी गाय की नाभी (नाभि) में गोरोचन (गोलोचन) निकलता है। खुर को खुरी भी कहते हैं।

चमड़ा सिझाना या पकाना:

२६४. पहले चमड़े को चूना और रेह के साथ रखते हैं। इससे खाल में लगा हुआ सारा मांस गल कर अलग हो जाता है। इस मांस को अलग करने के लिए एक लोहे का औजार प्रयोग में लाते हैं जिसे रंपा कहते हैं। मांस अलग हो जाने पर खाल को पानी में धोते हैं। तदुपरांत आम के पेड़ से बंडा (पेड़ का एक रोग जिसकी शक्ल एक पौधे की भाँति होती है) ले आ कर उसे कूट कर पानी में भिगोते हैं और इसी पानी में उस चमड़े को भिगो देते हैं। जब बंडे का प्रभाव चमड़े पर हो जाता है और चमड़ा कुछ लाल हो जाता है तब उसे पानी से निकाल देते हैं। इसके बाद चमड़े को थैले के रूप में लाते हैं। चमड़े की सिलाई मूँज की सुतरी से की जाती है। नाने के औजार को सुतारी कहते हैं। थैले को टाँगने के लिए तीन बाँसों का एक कैंचा या हटका बनाते हैं। इसी में थैला टाँगा जाता है। थैले में पुनः कूटा हुआ बंडा भर कर पानी डाल देते हैं। पानी चमड़े के रोंगटे से धीरे-धीरे टपकता रहता है और उसके एकत्र होने के लिए नीचे एक हौदा गड़ा रहता है। चुए हुए पानी को रसी कहते हैं। इस चुई हुई रसी को पुनः उसी थैले में डाल देते हैं। इस क्रिया को तोर चढ़ाइब (चढ़ाना) कहते हैं। इस सारी क्रिया को चमड़ा पकाइब (पकाना) कहते हैं जिसमें लगभग एक सप्ताह लगता है। उसके बाद चमड़े के थैले को खोल कर उसमें खारी नमक लगा देते हैं। इसके लगाने से चमड़ा मुलायम हो जाता है। गाय-भैंस के चमड़े को छाला तथा भेड़-बकरी के चमड़े को खालि या खाल कहते हैं।

चमड़े के सामान:

२६५. चलनी—यह आटा चालने के काम में आती है। इसके चमड़े में सूजे से छोटे छोटे सूराख बना देते हैं और फिर किनारे पर गोलाई में तरकुल (ताड़) का सेखड़ा लगाते हैं।

झन्ना—यह भी चालने के लिए बनाया जाता है। इससे अनाज झाड़ते हैं।

मोट, चरस और मसक—ये तीनों पानी भरने के सामान हैं। मोट और चरस दोनों सिंचाई के लिए प्रयोग में आते हैं। मसक का प्रयोग शहरों में नहाई के लिए होता है।

साथी—लोहार के पास यह अंगीठी में हवा करने के लिए होता है। यह एक प्रकार की धौंकनी है।

जूता—देहात में बने जूते को चमौवा जूता कहते हैं।

लतरी—स्त्रियों के चप्पल को लतरी कहते हैं।

सल्लू—यह जूता आदि सिलने के लिए चमड़े की पतली डोरी है।

बद्धी—यह सल्लू से मोटी डोरी है इससे तबला, मृदंग आदि मढ़ते हैं।

सॉटा—बैल हाँकने के लिए चमड़े की कुछ लच्छियाँ सुटकनी के रूप में बनाते हैं जिसे सॉटा कहते हैं।

किस्मत—यह चमड़े का एक थैला है जिसमें नाई अपने सामान रखता है।

चमौटी—नाई के पास चमड़े का एक टुकड़ा होता है जिस पर वह छूरा या अस्तूरा तेज करता है।

मोची के औजार:

२६६ रंपा या रॉपी—यह चमडा काटने के लिए होता है।

पादन्दान—इस पर चमड़ा रख कर हथौड़ी से ठोकते हैं। जूते में कॉटी इसी पर रखकर ठोंकी जाती है।

दिहला— इससे चमड़ा पीट कर बढ़ाते हैं।

सुतारी—इससे सिलाई की जाती है।

मोचना—इसका किनारा थोडा से कटा रहता है जिसमें सिलाई करते समय [illegible]री या सल्लू बझा कर खींचते हैं।

लोहे का काम

२६७. लोहे के औजार बनाने वालों को लोहार कहते हैं। बढ़ई और लोहार [illegible]ा काम अधिकतर एक ही आदमी करता है। पर बढ़ई लोहार की अपेक्षा अधिक [illegible]लते हैं। कई गाँवों के बीच में एक लोहार होता है।

लोहार के औजार और काम:

लोहे को बढ़ाने के लिए उसे गरम करना पड़ता है। इस कार्य के लिए उसके [illegible]ाथ अँगीठी होती है जिसमें चमड़े की भाथी या भाठी द्वारा हवा पहुँचाने से [illegible]ाग सुलगती है। लोहे को आग में डालकर पहले लोहार उसे तपाता या धिकाता [illegible] फिर हथौड़े से पीटता है। जिस चीज पर लोहा रख कर पीटा जाता है वह भी [illegible]ोहे का होता है उसे निहाव कहते हैं। जब अधिक जोर से पीटना पड़ता [illegible] तब एक भारी हथौड़ा प्रयोग में आता है जिसे घन कहते हैं। एक अन्य काम [illegible]ौजारों पर पानी चढ़ाना है। कुदार, फरसा, चाकू, छूरा आदि पर धार [illegible]ढ़ाने के लिए उन पर पानी चढ़ाना पड़ता है। इस कार्य के लिए लोहे के औजार [illegible]ो आग में गरम करके पानी में बुझाते हैं। कभी-कभी मिट्टी में बुझाते हैं।

इस क्रिया को पानी में बुझाइब (बुझाना) या पानी चढ़ाइब (चढ़ाना) कहते हैं। इससे धार तेज होने के साथ-साथ मजबूत होती है। जब कुदार, खुरपा आदि औजार घिस कर छोटे हो जाते हैं तब इन्हें गरम कर के इन पर नया लोहा पीट कर जोड़ा जाता है। इस क्रिया को अछारब (अछारना) कहते हैं। औजार की धार पतली करने के लिए उसे रेती से रेतना पड़ता है। छूरा, चाकू आदि पतले औजारों को तेज करने के लिए मसालों की बनी हुई एक पहिया होती है। धार को इसी पर रख कर पहिया चलाते हैं जिसे साम धरब (धरना) या साम चढ़ाइब (चढ़ाना) कहते हैं। लोहा काटने के लिए छेनी या छीनी होती है। हथौड़ी से छेनी ठोंक कर लोहा काटते हैं। बारीक लोहे को काटने के लिए लोहे की आरी होती है। लोहे में सूराख करने के लिए जो औजार होता है उसे सुम्मी कहते हैं। लोहे को पकड़ने के लिए सँड़सी होती है, इस कार्य के लिए एक औजार और होता है जिसे चोसा कहते हैं। सूराख में काँटी ठोंकने को काँटी थरब (थरना) कहते हैं।

२६८. लोहार मुख्यतः खेती के औजार यथा, फरसा, खुरपा, खुरपी, हँसुआ, गँड़सा, फार आदि बनाता है। इनके अतिरिक्त कुछ लोहार कूँड़ भी बनाते हैं। गृहस्थी के सामानों में वह टँगारा, बसूला, टाँगी, टेकुरी, टेकुवा, सुज्जा (सूजा), कजरौटा आदि बनाता है। कजरौटा में स्त्रियाँ बच्चों के लिए काजल रखती हैं। वह धरकार के लिए बाँका तथा नाई के लिए नहरनी, कुम्हार के लिए लहसुर और चमार के लिए रपी, सुतारी, मोचना आदि बनाता है। लोहे के बने हुए सभी सामानों की वह मरम्मत करता है।

गुड़-शक्कर-चीनी का काम

२६९. गुड़, शक्कर और चीनी सभी वस्तुएँ ईख के रस से बनती हैं। वह यंत्र जिसके द्वारा रस पेरा जाता है कोल्हू कहलाता है।

: कोल्हू :

ईख पेरने के लिए पहले पत्थर तथा लकड़ी के कोल्हू बनते थे जिन्हें क्रम से पथरिया तथा कठउवा या कठउवा कोल्हू कहते थे। परन्तु अब ये दोनों प्रकार के कोल्हू नहीं पाए जाते हैं केवल तेल पेरने के लिए अब भी लकड़ी के कोल्हू की प्रथा है। ईख पेरने के लिए अब मशीन के ढले कोल्हू मिलते हैं जिन्हें कल भी कहते हैं। कल के चल जाने से किसानों को बड़ी सुविधा हो गई है। पत्थर के कोल्हू में बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता था तथा उसमें बड़ी असुविधाएँ थीं। सब से बड़ी हानि यह थी कि उसमें रस कम पड़ता था। उसमें ईख को टुकड़े-टुकड़े करके डालना पड़ता था। यह कार्य गँड़सा से किया जाता

था। ईख के इन टुकड़ों को गेंड़ी तथा गेड़ी काटने को गेंड़ी बालन (बालना) कहते थे। गेड़ी के रखने के स्थान को गड़ेना या गड़ेन्ना कहते थे। इस प्रकार गेंड़ी बालने के लिए एक आदमी की और आवश्यकता होती थी। एक बार में पेरने के लिए जितनी गेंड़ी डाली जाती थी उतने को एक घान कहते थे। कोल्हू का जाठ इतना भारी होता था कि उसके निकालने और अंदर डालने में कई आदमियों की आवश्यकता पड़ती थी। इसी काम के लिए कई आदमियों को रात में जगना पड़ता था। आधी रात को इनकी पारी बदलती थी। पारी बदलने के समय को परेड लगब (लगना) कहते थे। जाठ निकालते समय उसके सहारे के लिए दो बाँसों का कैंचा बनाया जाता था जिसे लमेसा कहते थे। इस कोल्हू को चलाने के लिए बड़े-बड़े बैलों की आवश्यकता पड़ती थी। इसका रस स्वादिष्ट होता था। इन कोल्हुओं में केवल पुराने किस्म की देसी ईख पेरी जा सकती थी।

२७०. लोहे के कल ढले हुए होते हैं। कल में दो या तीन बेलन इस प्रकार होते हैं कि वे सब एक साथ चलते हैं—उनके इस प्रकार चलने से ईख दबती जाती है, रस गिरता जाता है और खोइया अपने आप अलग हो जाती है। इसमें केवल एक आदमी ईख लगाने के लिए और एक आदमी बैलों को हाँकने के लिए चाहिए। ईख का रस एक गड़े हुए नाद में गिरता है। खोइया के टुकड़े रस में न गिर जायँ इस उद्देश्य से जिस जगह ईख लगाई जाती है वहाँ एक छोटी सी लकड़ी लगा देते हैं जिसे मुँगरी कहते हैं। कल में तीन बेलन होते हैं जिन्हें मूड़ी कहते हैं। बेलन के बीच में एक गोला जोड़ा होता है जिसे मुसरा कहते हैं। बेलन के सिरे पर दाँत कटे होते हैं, इन्हें ककनी कहते हैं। जिस प्रकार घड़ी में बने चक्कर एक दूसरे की मदद से चलते हैं उसी प्रकार इसमें एक मूड़ी का दाँत दूसरे को अपने में फँसाए रहता है। सब से छोटी मूड़ी का बलना कहते हैं। इस बलना के कसने पर सभी मूड़ियों की ककनी कसी हुई चलती है और इसको ढीली कर देने पर सब की ककनी ढीली चलती है। बेलनों को इस प्रकार कसने और ढीला करने के लिए एक पेंच होता है जिसे बालटू कहते हैं। बालटू में चूड़ी बनी होती है बालटू कसने के बाद उसे रोकने के लिए उस पर डेबरी चढ़ा दी जाती है। कल गाड़ने के लिए लकड़ी की एक पिढ़ई ऊपर और एक नीचे लगाते हैं। इन पिढ़इयों से मूँड़ी के मूसर का सम्बन्ध रहता है। इन पिढ़इयों के चारों कोनों पर चार पावे लगे रहते हैं जो जमीन में गड़े रहते हैं। पिढ़ई और पावे का सम्बन्ध ठीक हो इस उद्देश्य से उस स्थान पर लोहे की काँटी ठोक देते हैं जिसे नाक कहते हैं। कल चलाने के लिए उसकी बड़ी मूड़ी के मुसरे से एक लम्बी लकड़ी सम्बन्धित की जाती है, इस लकड़ी को हरिस कहते हैं। हरिस में मूड़ी का मुसरा जाने के लिए सूराख कर देते हैं। यह सूराख मुसरा की रगड़ से कट न जाय इसलिए सूराख के भीतर एक लोहा लगा देते हैं जिसे सामा कहते हैं।

हरिस का बैलों के जुए से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए एक लकड़ी होती है जिसे काढ़ा कहते हैं। काढ़ा बाँस के फेंदा (जड़ सहित निचला भाग) का अच्छा होता है क्योंकि यह बहुत मजबूत होता है। काढ़े का एक किनारा लकड़ी की एक खूँटी द्वारा हरिस से संबन्धित कर दिया जाता है दूसरा किनारा जुए में बाँध दिया जाता है। इस प्रकार कल द्वारा ईख की पेराई होती है। बैल जिस रास्ते से चलते हैं उसे पोंदर कहते हैं। जिस स्थान पर कोल्हू गाड़ा जाता है उसे कोलगाड़ या कोल्हुआर कहते है।

गु ल उ र :

२७१ गुड़ पकाने के लिए दो प्रकार के भट्ठे बनते है। एक छोटा, दूसरा बड़ा। छोटे भट्ठे पर केवल एक कड़ाह चढ़ता है और बड़े पर दो कड़ाह चढ़ते हैं। भेली बनाने के लिए एक तथा गुड़ या राब बनाने के लिए दो कड़ाह होने चाहिए। एक कड़ाह की अपेक्षा दो कड़ाह मे रस अधिक पकता है। भट्ठे को गुलउर भी कहते हैं पर यह शब्द साधारणतः उसी भट्ठे के लिए प्रयुक्त होता है जिस पर दो कड़ाह चढ़ते हैं, गुड़ बनने के स्थान के लिए भी यह प्रयुक्त होता है। जब एक कड़ाह रहता है तब साधारणतः उसे भट्ठे पर ठींकते (जड़ते) नहीं बल्कि भट्ठे के ऊपर ही रखते हैं और शीरा तैयार होने पर कड़ाह को भट्ठे पर से उतार लेते हैं।

२७२. गुलउर पर लगने वाले दोनों कड़ाह दो ढंग के होते हैं। एक बड़ा और दूसरा छोटा होता है। बड़ा कड़ाह आगे की ओर रहता है और छोटा पीछे की ओर। बड़ा कड़ाह गहरा होता है इसलिए इसे कुड़उआ या कुड़उववा कहते हैं; छोटा कड़ाह छिछला होता है और इसे छिटउवा या छिटउववा कहते हैं। जो कड़ाह आगे रहता है उसी में गुड़ पकाया जाता है, पिछले कड़ाह में रस गरम होता है और जब वह पक जाता है तब गुड़ बनाने के लिए वह आगे वाले कड़ाह मे ले आया जाता है। अगले कड़ाह मे आँच अधिक लगती है और पिछले मे कम; दोनों कड़ाह गुलउर में ठीके हुए रहते है। यदि कड़ाह बराबर से ठीके नहीं है तो आँच बराबर से नहीं लगती। जब कड़ाह में किसी स्थान पर आँच अधिक लगती है तब गुड़ के जलने का भय रहता है। इस प्रकार जलने को छवँका लगना कहते हैं। कड़ाह में रस डालने को रस बोझब (बोझना) कहते हैं। एक बार मे कड़ाह में जितना रस बोझा जाता है उसे पाग कहते हैं। कड़ाह कुछ ऊँचाई पर रहता है। कड़ाह के अगल-बगल को ऊँची जमीन को पारही या पारी कहते हैं; शीरी देखने वाला यहीं बैठता है। गुलउर में झूँक झोंकने के लिए जो मुँह बना होता है उसे मुँहकड़ा कहते हैं; इसे झुकउवा या झोंकवा या झुकवा भी कहते हैं। गुलउर के पीछे धुवाँ निकलने का जो मुँह होता है उसे पोछउवा, पोछवा या पिछवा कहते हैं। खर-पात झोंकने के लिए एक लकड़ी

होती है इसे झुकनी कहते हैं। आँच बढ़ाने के लिए आग को कभी-कभी खोदने की आवश्यकता पड़ती है; जिस लकड़ी से यह कार्य किया जाता है उसे खोदनी कहते हैं। आग झोंकनेवाले को झुकवइया कहते हैं।

२७३. गुलउर के पास दो वृत्ताकार स्थान एक भेली बनाने के लिए और दूसरा खोइया दहाने के लिए बने होते हैं जिन्हें क्रमशः चकरा और खोइहरा कहते हैं। छोटकी ईख की ही खोइया दहाई जाती है बड़की ईख की नहीं क्योंकि छोटकी ईख की खोइया नरम और बड़की ईख की खोइया कड़ी होती है। खोइया दहाने के लिए उसे खोइहरा में रख कर ऊपर से पानी डाल-डाल कर कोंड़ते हैं जिससे खोइया का रस पानी में उतर आता है। इस रस को रसी कहते हैं। रसी चूने के लिए खोइहरा के पास होदी गड़ी रहती है जिसे गड़िया कहते हैं। वस्तुतः यह कार्य उस समय अधिक होता था जब पथरिया कोल्हू चलते थे और छोटकी ईख पेरी जाती थी अब तो छोटकी ईख बहुत कम बोई जाती है। रसी को पका कर जो शीरा बनता है उसे चोटा कहते हैं। इसे बहुत गरीब लोग ही खाते-पीते हैं।

२७४. शीरा बनाने के लिए कड़ाह के अतिरिक्त जो बर्तन आवश्यक होते हैं उनमें हौदा मुख्य है। इसमें रस रक्खा जाता है। जिसमें कच्चा रस रक्खा रहता है उसे रसहा हौदा और जिसमें पक्का रस या शीरा रक्खा जाता है उसे गुरहा हौदा कहते हैं। गुर या राब बनाने के लिए जो हौदा होता है उसे भी गुरहा हौदा कहते हैं। एक दूसरा पात्र खपड़ा है। यह छोटा हौदा सदृश होता है किन्तु होदी से इसकी बारी (किनारा) पतली होती है। होदी की अपेक्षा यह हल्का और सुड़लार (दुरियार) अर्थात् लम्बा होता है। इसके द्वारा कड़ाह से शीरा उदह कर हौदे में ले जाते हैं; शीरा ले जाते समय बहुत सावधानी होनी चाहिए अन्यथा जल जाने का डर रहता है। खपड़ा पकड़ने के लिए उसके दोनों बगल कपड़ा रखते हैं। दोनों हाथों से इसे कस कर पकड़ना पड़ता है। लड्का भी मिट्टी का पात्र है; इसके द्वारा कोल्हू के पास से रस लाकर कड़ाह में डालते हैं। इसे पकड़ने के लिए इसमें मुठिया लगी रहती है। इसमें नम्बरी वजन से लगभग बारह सेर रस आता है। इससे छोटे बर्तन को लड्की कहते हैं जिसमें लगभग डेढ़-दो सेर रस आता है। इससे भी छोटा बर्तन जनुता है जिसमें लगभग आध सेर रस आता है। इसे चुचुई या लब्जी भी कहते हैं। लड्का और लड्की के मध्य के बर्तन को लम्होला कहते हैं जिसमें लगभग छः सेर रस आता है। शीरा उदहने के लिए लकड़ी की एक बड़ी कलछी होती है जिसे दाली कहते हैं। रस की मैल छानने के लिए पौना (लोहे की एक बड़ी कलछी) होता है।

कोल्हाड़ में झोंकने के लिए जो खर-पात संग्रह किया जाता है उसे सँगहा कहते हैं। सँगहा के लिए ईख की पत्ती बहुत काम देती है। ईख छोलते समय

जितनी टूटी-फटी पत्ती निकलती है सब सॅगहा मे काम दे जाती है। इसके अतिरिक्त खोइया को धूप मे सुखा कर रख देते हैं और वह भी झूक के लिए बहुत काम देती है। सॅगहा सम्बन्धी सारा काम गॅवहियाँ चमार करता है। प्रत्येक गाँव में एक-दो चमार ऐसे होते हैं जो गाँव कमाते हैं अर्थात् गाॅव का डाॅगर ढोते हैं तथा गाॅव के प्रत्येक घर की सौरी-वियौरी कमाते हैं। यह चमार गाॅव की परजा है और गाॅव के लोग इसके जजमान हैं। इसकी यह जजमानी पुश्तैनी है। कोल्हाड़ के लिए सॅगहा जुहाने (एकत्र करने) का काम भी इसी का है। यह खेत से पत्ती ढो कर गुलउर पर पहुँचाता है। यही खोइया भी सुखाता और उसे एकत्र करता है। इसके बदले में उसे प्रति दिन पाॅच ईख तथा कुछ रस दिया जाता है। इसके अतिरिक्त एक परई गुड़ (लगभग १ सेर) भी वह पाता है।

कोल्हाड़ चलाने में सहयोग:

२७५. बहुधा गाँव मे कोई सम्पन्न किसान कोल्हू गाड़ता और गुलउर बनाता है; वह उससे अपना कार्य लेता है और उसे किराये पर भी चलाता है कभी-कभी कुछ लोग मिलकर भी कोल्हू और कडाह खरीद लेते है और वे साझीदार हो जाते हैं। जितने साझीदार होते हैं सब मिलकर काम करते हैं। यह सहयोग ईख छोलने से ले कर गुड़ बनाने तक बराबर बना रहता है। साधारणतः एक कोल्हू में आठ साझीदार होते हैं। सब के लिए पारी बॅध जाती है। एक साझीदार को पेरने के लिए कितने दिन दिए जाॅय इसका निश्चय उसके दिए गए बैलों के अनुसार होता है। एक जोड़ी बैल वाले को एक दिन पेरने का समय दिया जाता है। आधा दिन उसके हिस्से में पड़ता है जो एक ही बैल दे सकता है। इस प्रकार उसकी दो पारी मिलकर एक पारी होती है। जब एक एक पारी सब की हो जाती है तब उसे एक भोंज कहते हैं। सहयोग को ग्रामीण जनता अॅगवार कहती है। किसी के यहाॅ इस उद्देश्य से काम करना कि वह भी अपने यहाॅ आवश्यकता पड़ने पर काम करेगा अॅगवार करब (करना) कहलाता है। किसी के किए हुए अॅगवार के बदले अॅगवार करने को अॅगवार देव (देना) कहते है। जो लोग स्वयं अॅगवार नहीं देते वे अपने एवज मे अपना मजदूर कर देते हैं जिसे मेहनार कहते हैं। जब तक कोल्हाड़ का काम रहता है तब तक उसका मालिक उसे एक रुपया मासिक वेतन देता है और कोल्हाड़ पर उसे पीने के लिए रस मिलता है; जब उसके मालिक का गुड़ बनता है तब उसे एक परई गुड़ भी मिलता है वर्षा में कभी-कभी कोल्हाड़ बंद हो जाता है; इसे कोल्हाड़ बइठब (बैठना) कहते हैं और ऐसे दिन को बैठक का दिन कहते हैं। बैठक के दिन यदि कोई साझीदार कोल्हाड़ चला कर अपना गुड़ बनाना चाहता है तब इसमे सब का सहयोग नहीं होता है, सारा काम बिना साझीदारों की मदद के करना पड़ता है। किन्तु इस कार्य के लिए भी सब की स्वीकृति लेनी पड़ती है। इस प्रकार बैठक से लाभ

भेली, गुड़ या राब बनाना :

२७९. भेली का शीरा सब से कड़ा होता है। कड़े शीरे को **खर शीरा** कहते हैं। राब का शीरा इससे हलका होता है। जब शीरा बहुत बहुत हलका हो जाता है तब उसे **रबनी** कहते हैं। वस्तुतः रबनी केवल गरीब लोग बनाते हैं। रबनी बरसात में खराब हो जाती है। भेली का शीरा बहुत साफ नहीं किया जाता लेकिन राब के लिए जो शीरा बनाया जाता है वह अधिक साफ किया जाता है क्योंकि राब से ही शक्कर बनाई जाती है।

२८०. कड़ाह में रस डालने के बाद उसमें आँच लगाते हैं। जब रस से **बाफ** निकलने लगती है तब उसे **बफियाब** (बफियाना) कहते हैं। इस समय सन-सन की ध्वनि निकलती है जिसे **सनकब** या **सनसनाब** (सनसनाना) कहते हैं। जब रस भली-भाँति गरम हो जाता है तब रस की **मैल** रस के ऊपर आ जाती है जिसे **महिया** कहते हैं। महिया अलग करने को **महिया काटब** (काटना) या **महिया मारब** (मारना) कहते हैं; इस क्रिया को **मैल कमाब** या **रस कमाब** (कमाना) भी कहते हैं।

२८१. रस कमाने का कार्य **पौना** से किया जाता है। महिया काटते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बहुत तेज आँच न हो। तेज आँच होने से मैल रस के ऊपर एकत्र न होकर फैल जाती है जिसे **मैल फूटब** (फूटना) कहते हैं। मैल फूटने पर उसे पौना से उठाने में कठिनाई होती है।

२८२. मैल काटने के लिए **भिंडी** का **पंचांग** या एक जंगली पौधा **दुल्ला**, जो भिंडी के ही ढंग का होता है, डाला जाता है। दुल्ला डालने से मैल कट जाती है और शीरा जल्द साफ हो जाता है; पर अधिक दुल्ला पड़ने से रस में कुछ खट्टापन आ जाता है और उसका गुड़ प्रभाव में कुछ गरम होता है।

२८३. अगले कड़ाह का रस पिछले की अपेक्षा शीघ्र गरम होता है। अगले कड़ाह का रस जब कुछ पक जाता है तब उसमें से कुछ हिस्सा पिछले कड़ाह के रस में डालते हैं। इस गरम रस को **कोहरा** कहते हैं और इसे आगे के कड़ाह से पीछे के कड़ाह मे डालने को **कोहरा करब** (करना) कहते हैं; इसे **रस फेरब** (फेरना) भी कहते हैं।

२८४. कोहरा करने के उपरांत अगले कड़ाह का रस तेजी से खौलने लगता है और **तर-ऊपर** होने लगता है जिसे **मड़ियाब** (मड़ियाना) कहते हैं। रस के कुछ गाढ़ा हो जाने पर उसमें **बुल्ला** (बुलबुला) उठने लगता है। बुल्ला उठने को **फूला उठब** (उठना) या **फूला लेब** (लेना) भी कहते हैं। बुलबुले का आकार **मजीरा** (एक बाजा) की तरह होने के कारण शीरे की इस अवस्था को **मजीरा लेब** (लेना) भी कहते हैं। इस समय रस में काफी तेज चाल हो जाती है जिसे

चाल आइब (आना) कहते हैं। ऐसे समय पिछले कड़ाह से थोड़ा-थोड़ा रस आगे के कड़ाह में डालते जाते हैं। इस प्रकार पिछले कड़ाह का रस अगले में ले आया जाता है। इस क्रिया को चालब (चालना) कहते हैं। चालने के फल-स्वरूप सारे रस का शीरा शीघ्र बन जाता है। पिछले कड़ाह के खाली हो जाने पर उसे ठंडा करने के लिए उसमें पानी डालते हैं जिसे कड़ाह जुड़वाइब (जुड़वाना) कहते हैं। शीरा बनते समय जब बद्-बद् की आवाज होती है तब शीरे के गाढ़े होने की सूचना मिलती है। शीरा गाढ़ा होने पर जब उसमें तार बँधने लगता है तब बहुत सावधानी से आँच दी जाती है। अधिक आँच होने से कड़ाह में शीरा लग (जल कर छुपट) सकता है अथवा शीरा खर हो सकता है। तार आने को सूत आइब (आना) या सूत उड़ब (उड़ना) भी कहते हैं।

२८५. मेली के योग्य शीरा होने पर उसको उतार लेते हैं। मेली का शीरा इस योग्य होना चाहिए कि उसकी मेली बन सके। मेली बनाने के लिए शीरा को चकरा में डालते हैं। चकरा में शीरा उड़ेलने (गिराने) के बाद उसे ईख के अँगोर या अँगोरी से चला-चला कर ठंडा करते हैं। जब शीरा मेली के योग्य हो जाता है तब उसे चकरा के बीच में एकत्र कर देते हैं। फिर दोनों हथेलियों की की सहायता से मेली बनाते हैं। छोटी मेलियाँ मुट्ठी से बनाई जाती हैं जिन्हें मुठिया या पिड़िया कहते हैं।

२८६ गुड़ या राब के योग्य शीरा हो जाने पर उसे कड़ाह में तामी से उठा-उठा कर ओसाते (गिराते) हैं जिसे झोरब (झोरना) कहते हैं। ओसाने के बाद शीरे को तामी द्वारा खपड़े में उदह कर हौदे में डालते हैं। फिर हौदे के शीरे को एक रेंड़ के डंडे से मारते हैं, इस क्रिया को गुड़ मारब (मारना) या गुड़ डोलाइब (डोलाना) कहते हैं। राब जितनी ही मारी जाती है उतनी ही अच्छी बनती है क्योंकि मारने से ही उसमें दाने पड़ते हैं। राब जब भली-भाँति नहीं मारी जाती तब न तो वह ठीक से जमती है और न उसमें दाने ही पड़ते हैं। कहावत है, अपने मरब इया बिना राब भइ रबनी अर्थात् मारनेवाले के न होने से राब पतली रह गई। गुड़ शब्द राब के पर्याय रूप में प्रयुक्त होता है।

२८७. गुड़ या राब को घर में ले जाकर रखने को गुड़ करब (करना) कहते हैं। गुड़ मिट्टी के बर्तनों में रक्खा जाता है। गुड़ रखने पर जम जाता है, जम जाने पर जो पतला भाग ऊपर रहता है उसे फाट कहते हैं।

२८८. कड़ाह धोने पर जो गरम-गरम धोवन निकलता है उसे धोनारी कहते हैं। इसे मजदूरों को पीने के लिए देते हैं या गरीब किसान अपने काम में लाते हैं। रस पकते-पकते जब गाढ़ा हो जाता है तब उसे स्वाद के लिए गरम-गरम पीते हैं; इसे औंटी कहते हैं।

२८९. छोटकी ईख की एकत्र महिया को छींटा (सरकंडा की छोटी चटाई)

से एक सूराखदार हौदे मे छानते हैं। इस हौदे की सूराख ठेंठी से बंद की जाती है इसीलिए इसे ठेंठीदार हौदा कहते हैं। महिया का रस सूराख से छन कर दूसरे हौदे में गिरता है। इस छने हुए रस को मइछना (महिछना) कहते हैं। यह पशुओं को दिया जाता है। बड़की ईख का मइछना नहीं तैयार किया जाता है। संपन्न किसान मइछना नहीं बनाते हैं।

शक्कर बनाना :

२६०. शक्कर बनाने के लिए गुड़ को लोथा मे बाँधते हैं। लोथा अच्छे गजी का बनता है जिसे लोथहिया कपड़ा कहते हैं। जुलाहे इसे लोथा के लिए ही बनाते हैं। यह बहुत गाढ़ा कपड़ा है। इसकी चौड़ाई चौदह गिरह होती है। दो गज लंबे टुकड़े से एक लोथा बनता है। लोथा बनाने के लिए इस कपड़े को लंबाई की ओर से दोहरा सीते हैं। उसके बाद एक ओर के दोनों सिरों को एक में मिला कर सीते हैं। ऐसा करने पर यह बस्ते के आकार का हो जाता है। इस समय कपड़े में तीन कोने रहते हैं। इन कोनों में छोटी-छोटी रस्सियाँ बाँध देते हैं। लोथे मे राब भरने के बाद इन रस्सियों को आपस मे बाँध देते हैं और लोथे के तीन ओर खुले हुए किनारों को मुर्रियाते (ऐंठते) हैं। मुर्री लगाने से लोथा कस जाता है। लोथे को और कसने के लिए उसके कोनो को गुड सहित रस्सियों से बाँध देते हैं। इस प्रकार बाँधने से तीनो कोने मिट्टी के ढेले के आकार के दिखाई पडते हैं। इस बँधाई को गलिया बाँधब (बाँधना) कहते हैं। चूँकि बंधन के स्थान का घेरा गलिया के आकार का होता है इसीलिए इस बँधाई को गलिया कहते हैं। अँगूठा और तर्जनी के मध्य में जितना स्थान घेर उठता है गलिया कहलाता है।

२६१ लोथा बँध जाने के बाद, शीरा चुआने के लिए, उसे एक के ऊपर एक करके रखते हैं। शीरे के लिए जमीन मे तगाड़ गडा रहता है। तगाड़ हौदा सदृश मिट्टी का छिछला बर्तन है। तगाड़ पर छींटा रक्खा जाता है और इस छींटे पर लोथे रक्खे जाते हैं। लोथे का शीरा छींटे से होता हुआ तगाड़ में चूता है। लोथों को दबाने के लिए उनके ऊपर मिट्टी का भीरा रक्खा जाता है। कहीं-कहीं पर तगाड़ नहीं गाड़ते फर्श पक्की बना कर उसमें नाली बना देते हैं। इन नालियों पर गोनरा (पुआल की चटाई) बिछा कर तब लोथे रक्खे जाते हैं। जो शीरा इन लोथों से चूता है उसे वन्हुई कहते है।

२६२. लगभग चार-पाँच दिन में वन्हुई चू जाती है। तदुपरान्त लोथे को खोल कर बँधी शक्कर एक कपड़े पर फैला देते हैं। इस शक्कर को उलदा शक्कर कहते हैं। इस शक्कर को फिर गरम पानी से सानते हैं, इसे पीठी सानब (सानना) कहते हैं और इस सानी हुई शक्कर को पीठी सानी शक्कर कहते हैं।

२६३ शक्कर की और सफाई के लिए लोथे को पुनः भरकर उसी प्रकार रखते

हैं। लोथा रखने के बाद उसके ऊपर चढ़ कर उसे काँड़ते हैं; इस क्रिया को लोथा काँड़ब काँड़ना) कहते हैं। ऐसा करने से बन्हुई चूने में सुविधा होती है। बन्हुई निथर जाने पर लोथे पर बुज्जा (बुजबुजा) छूटने लगता है जिसे गजाब या गाज आइब (आना) कहते हैं। बुज्जे का रंग लाही सदृश होता है इसलिए इसे लाही कहते हैं। इस लाही को गरम पानी से धोते हैं। इस क्रिया को लोथा धोइब (धोना) कहते हैं। यह क्रिया शक्कर की सफाई के लिए अत्यंत आवश्यक है। लोथा धोने से लोथे के छिद्र खुल जाते हैं। लोथे के धोने का कार्य यदि ठीक समय पर न हो तो शक्कर के लौंट, फिर या घूम जाने का भय रहता है। घूमी हुई शक्कर का रंग अच्छा नहीं आता है।

२९४. लोथे के शक्कर को फिर एक कपड़े पर फैला कर उसे पैरों से रगड़ते हैं। इस क्रिया को पाटा मारब (मारना) या पाटा डालब (डालना) कहते हैं। पाटा डालने से शक्कर में सफाई और चमक आ जाती है और दाना खसर-खसर करने लगता है। बढ़िया चमकदार शक्कर को बगबगा अर्थात् बगबग चमकने वाली शक्कर कहते हैं।

च्ची चीनी बनाना :

२९५. जब कच्ची चीनी बनानी होती है तब शीरे को हौदों में रखते हैं। [illegible] प्रकार रखने को गढ़ करब (करना) कहते हैं। गढ़ करने से शीरा ठंडा [illegible]ता है। गढ़ करके शीरे को तामी से ओसाते हैं। ऐसा करने से शीरे की लस्सी [illegible]टती है। जब गढ़ ठंडा हो जाता है तब उसे दूसरे हौदों में बदलते हैं; इसे [illegible]ियाइब (पियाना) कहते हैं। हौदे में गढ़ पिया देने पर वह लगभग दो सप्ताह [illegible] जमता है और उसमें दाने पड़ते हैं। जब माल (सामान) बढ़िया जमता है [illegible]ब वह ककरी की तरह चेहरा (फट) जाता है। अब इस जमे हुए गढ़ को [illegible]ाट-काट कर ठेंठीदार हौदे में रखते हैं। इस क्रिया को गढ़ काटब या नाद [illegible]ाटब (काटना) कहते हैं। हौदों में गढ़ रखने के पहले उसकी पेंदी में सरकंडे [illegible] टुकड़े बिछाकर उस पर सरपत की चटाई चँटते (बिछाते) हैं। ऐसा करने से [illegible]ीरा धीरे-धीरे चूता है। इन हौदों से जो शीरा एकत्र होता है उसे चोटा कहते हैं।

२९६. जिन्हें बड़े पैमाने पर व्यापार की दृष्टि से काम करना होता है वे [illegible]ौदों की जगह पर पक्की ईंट के खाते बनवाते हैं। एक खाता लगभग दो गज [illegible]ंबा, एक गज चौड़ा और एक गज ऊँचा होता है। खाते की फर्श में लंबी-लंबी [illegible]ालियाँ बनी रहती हैं। इन नालियों से चोटा बह कर एक जगह एकत्र होता है। [illegible]जस प्रकार हौदों में सरकंडे के ऊपर चटाई बिछाई जाती है उसी प्रकार यहाँ पर [illegible]ाँस के फलठे बिछा कर उस पर सरपत, पुआल या कुश की चटाई फैलाते हैं; [illegible]न चटाइयों को चँटगा कहते हैं और इन्हें फैलाने को चँटगा चँटब (चँटना) [illegible]हते हैं। इसके बाद इनके ऊपर गढ़ गिराते हैं।

२६७. चोटा जब चू जाता है तब गद कुछ साफ हो जाता है। इसकी और सफाई के लिए उस पर गरम पानी का छिड़काव करते हैं जिसे रुक्खा देव (देना) कहते हैं। इससे ऊपरी सतह नरम पड़ जाती है और चोटा के चूने में सहायता मिलती है। नाँद यदि कड़ी अर्थात् सूखी कटी हो तब तो रुक्खा देना ठीक होता है। अन्यथा नरम (भली-भाँति न जमी हुई) नाँद में पानी की आवश्यकता नहीं पड़ती।

२६८. रुक्खा देने के कुछ घंटों बाद जब ऊपरी सतह मुलायम पड़ जाती है तब उसे गोड़ा जाता है; इस क्रिया के लिए लोहे का सुतुहा, जो सुतुही सदृश पर उससे बड़ा होता है, बना रहता है। इसी से खाते को गोड़ते है। इस गोड़ने की क्रिया को खतिआइव (खतिआना) कहते हैं। इसके उपरांत खाते को सेवार (नदी की एक घास) से ढक देते हैं। साधारणतः तीन दिन के बाद सेवार हटा लेते हैं। सेवार रखने से गढ़ की चीनी में सफेदी आ जाती है यह सफेद चीज पछनी या परछनी कहलाती है। गढ़ में जितनी गहराई तक सफेदी आ जाती है उतने भाग की पछनी को सुतुहा से अलग कर लेते हैं। पहली पछनी सब से साफ होती है। इसे पहला फूल कहते हैं। पछनी हटाने के बाद खाते को खतिया कर पुनः नई सेवार से ढक देते हैं। फिर तीसरे दिन सेवार हटा कर दूसरी पछनी खुरच लेते हैं। उसके उपरांत उसे पुनः सेवार से ढक देते हैं। यह क्रिया तब तक होती रहती है जब तक सारा गढ़ पछनी के रूप में नहीं हो जाता है। अंतिम पछनी को तरायल कहते हैं; यह सब से खराब होती है। पहली पछनी सब से अच्छी और उसके बाद की क्रमशः घटिया या नरम होती जाती है। इसके बाद एकत्र पछनी को पाटा डाल कर पैरों से रगड़ते हैं। इस क्रिया को पाटा कसव (कसना) कहते है। यह क्रिया कुछ देर धूप में की जाती है। पाटा कसने से चीनी में सफेदी और चमक आ जाती है। इतना करने के उपरांत कच्ची चीनी तैयार हो जाती है।

पक्की चीनी बनाना :

२६९. पक्की चीनी बनाने के लिए भेली गलाई जाती है। इस क्रिया को भेली भूनव (भूनना) भी कहते हैं। राब या गुड़ भी गला कर चीनी बनाते हैं। भेली और गुड़ को इस प्रकार दुबारा कड़ाह में गलाना पड़ता है। इसीलिए इससे बनाई हुई चीनी को पक्की चीनी कहते हैं। भेली बनाते समय एक बार शीरे की सफाई की गई थी पर अब पुनः अब सफाई करनी पड़ती है। इस बार भी दुल्ले से सफाई की जाती है लेकिन इतने से पूरा काम नहीं होता है। इसके लिए दूध और पानी मिलाकर दुधवानी बनाई जाती है क्योंकि इस से शीरा बहुत अच्छा साफ होता है। दुधवानी को शीरा में छोड़ने को छूटा मारव (मारना) कहते हैं। अब जो मैल निकलती है उसे कचरी कहते हैं।

३००. शीरे में उफान आने पर उसको शांत करने के लिए ठंडा पानी डालना पड़ता है। उफान शांत होने से मैल ऊपर आ जाती है। इस प्रकार पानी देने से

भी मैल कटने में सहायता मिलती है। पानी डालने को जूड़ देब (देना) कहते हैं। चीनी के लिए यह आवश्यक है कि उसमे लसी न हो क्योंकि शीरा जितना ही आरर होगा उतना ही उसमें दाना पड़ेगा। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए शीरे में रेड़ी की गुद्दी (गूदी) पीसकर डालते हैं इसे दावन; कहते हैं।

३०१. शीरा भली भाँति तैयार होने पर इसका गढ़ करते हैं। जिस प्रकार कच्ची चीनी तैयार करने के लिए गढ़ बनाना पड़ा था ठीक उसी प्रकार सारी प्रक्रियाएँ इस पक्की चीनी के लिए भी करनी पड़ती है। इस बार जब पछुनी तैयार होती है तब उसकी पुनः सफाई की जाती है। पछुनी को पूर्ववत् ठेठीदार हौदे में रखते हैं। इस बार जो शीरा चूता है उसे ठोपारी कहते हैं। यह चोटे से कहीं अधिक साफ और अच्छी होती है; क्योंकि इतनी सफाई होने के बाद इसमें चोटे का अंश नाम मात्र रह जाता है। ठोपारी चू जाने पर पछुनी बहुत साफ हो जाती है। जो लोग और बढ़िया चीनी बनाना चाहते हैं वे ठोपारी चूने के बाद गढ़ को पुनः ठेठीदार हौदे मे रखते हैं। अब की बार जो शीरा चूता है उसे चुअन कहते हैं। यह बहुत अल्प मात्रा मे निकलता है और इसका स्वाद बहुत मीठा होता है।

३०२. ठोपारी चूने के बाद ही साधारणतः चीनी को पूर्ववत् पाटा डालकर कसते हैं। कसने से चीनी बहुत सफेद और चमकदार हो जाती है। इस समय चीनी को झन्ने से चालते हैं। चालने से जो टुकड़े बड़े रहते हैं वे अलग हो जाते हैं। इन टुकड़ों को ठोरी या ठुर्री कहते हैं। ठुर्री अलग हो जाने के बाद पुनः चीनी के सब रवे बराबर हो जाते हैं। इस प्रकार चीनी बड़ी सुंदर हो जाती है। निकली हुई ठुर्री को पीस कर फिर चीनी में मिला देते हैं।

३०३ चीनी से जो चोटा चूता है उसे कड़ाह मे डालकर कुछ लोग पुनः चीनी बनाते हैं। इस प्रकार बनी हुई चीनी दोमा चीनी कहलाती है और इस चीनी से चुए हुए चोटे को दोमा चोटा कहते है।

३०४. दोमा चीनी से चुए हुए चोटे से भी कुछ लोग चीनी बनाते हैं। इस चीनी को सोमा चीनी कहते हैं और इससे चुए हुए चोटे को सोमा चोटा कहते हैं। किन्तु यह चीनी निकृष्ट होती है और इसे बहुत कम लोग पसंद करते हैं।

कपड़े का काम

सूत पक्का करना :

३०५. कपड़ा बुनने का काम जुलाहा करता है। वह बाजार से मिल का सूत खरीद कर ले आता है और अपने घर में उसे बुनता है। इस कार्य में उसका सारा परिवार बच्चे से लेकर बूढ़े तक लगा रहता है। साधारणतः जुलाहे गजी

(एक कपड़ा) बनाते हैं जिसमे सूत नं० ५, ८, १०½, ११½, १३½, १६½, १८½, २०½, तथा २२½ लगते हैं। सूत के बंडल मे सूत के मोटे-मोटे पोले होते हैं और हर एक पोले में छीरे होते हैं। छीरे की सिकुड़न को मिटाने के लिए उसके बीच मे दोनो हाथ डाल कर उसे कई बार झटकते हैं। फिर उसे दोनों घुटनों में अॅटकाते हैं। इसके बाद तीन छीरा एक हाथ मे और दो दूसरे हाथ मे माला की तरह लेते हैं जिसे लरियाइब (लरियाना) कहते हैं। फिर इन्हें एक दूसरे के साथ गॉंछ देते हैं तदनन्तर अथरा (मिट्टी का तसला) में पानी डाल कर उन्हें भिगो देते हैं। पानी में सूत भिगोने को सूत पक्का करब (करना) कहते हैं। २४ घंटे सूत भिगा रहने से वह पक्का समझा जाता है।

ताना—पाई करना :

३०६ ताना के लिए छीरे को फटक-फटक कर एक चरखी पर चढ़ा कर के नारा (लकड़ी की नली) भरते है। एक नारा के लिए एक छीरे का सूत पर्याप्त होना है। सूत अरुझे नहीं इस दृष्टि से प्रत्येक छीरे मे रंगीन सूत बँधा रहता है जिसे बनिका बोलते हैं। चरखी पर सूत चढ़ाने के बाद बनिका खोल कर अलग कर लेते हैं। छीरे का एक टोंक (किनारा) लेकर नारा भरना आरंभ करते हैं। सूत टूटने पर उसमें मुर्री (एक प्रकार का बट) लगाते हैं जिसे मुर्रियाइब (मुर्रियाना) कहते हैं। नारा पर सूत बराबर से भरना चाहिए; यदि नारा बराबर से नहीं भरा जायगा तो उसमें से सूत आसानी से नहीं निकलेगा। बराबर से न भरे हुए नारे को ढगढोलन कहते हैं। नारा भर जाने पर उसे पानी मे भिगो देते हैं।

३०७. ताना करने का साधारण ढङ्ग यह है कि दो नारों को दो लोहे के सरागों में पिरो कर सरागों को दो सरकंडों मे खोंस देते हैं। इस प्रकार सरकंडे में लगा हुआ नारा सूत खुलने के साथ-साथ घूमता जाता है। सरागे की नोंक पर एक घुंडी होती है ताकि नारा बाहर न निकल जाय। जितने सै (राछ का सौ खाना) का ताना करना होता है उसके हिसाब से ताना करते हैं; राछ के सूराखों से ही सूत निकलता है। ताने का एक छोर एक खूँटे में रहता है दूसरा दूसरे में। ये दोनो खूंटे एक ही ओर रहते है; एक तीसरे खूँटे मे ताने का मध्य भाग रहता है। ताना करते समय एक खूँटे से दूसरे खूँटे तक दौड़ लगाना पड़ता है। जब ताना पूरा हो जाता है तब जहाँ-जहाँ साँथी (ऑ०क्रॉस) रहती है वहाँ-वहाँ सरई पहना दी जाती है जिसे सर पहनाइब (पहनाना) कहते हैं। सॉथी के दोनों ओर एक-एक सर डालकर दोनों सरों के किनारों को आपस में सूत से बाँध देते हैं ताकि वे गिरें न।

ताना उठाने के लिए दो आदमी चाहिए। दोनों आदमी दोनों खूँटे से ताना निकालकर दोनों ओर दो लंबी, गोली और चिकनी लकड़ी लगाते हैं ताकि सूत मिल न जाय। इसे सिरारा कहते हैं। सिरारा लपेटते समय सरई रख कर लपेटते

हैं। सरई लगाने से लपेटने में कसाव रहता है। इस प्रकार दोनों ओर से ताना लपेटने पर जो लुंडी तैयार होती है उसे एक मचिया पर रख देते हैं।

२०८. पाई के लिए ताना में माड़ी लगाई जाती है। गेहूँ की रोटी को पानी में भिगो देते हैं। रात भर में रोटी गल कर माड़ी के रूप में हो जाती है। उसे छान कर अथरा (एक मिट्टी का बरतन) में रखते हैं। इसी माड़ी में तानी भिगोते हैं। उस लपेटी हुई तानी को विथरी कहते हैं और उसमें माड़ी लगाने को लेवरब (लेवरना) कहते हैं। विथरी को अथरी पर रख कर लपेटते हैं फिर चिपुरे हुए तागों को सीधा करने के लिए ताना को एक ओर से खींचते हैं। प्रत्येक सर पर झटका देने से सूत सीधे हो जाते हैं।

२०९. ताना फैलाने के लिए सहारे की आवश्यकता होती है अतः बाँस का कैंचा बनाकर उस पर बाँस का टुकड़ा रख कर उसी पर ताना फैलाते हैं। बाँसों को माझा कहते हैं। ताना के दोनों किनारे पर जो कैंचा होता है उसे खोभनी कहते हैं। यह रस्सी द्वारा खूँटे में बँधी रहती है। ताना फैलाने के बाद दो-तीन आदमी तागे को छिटकाते हैं। साधारणतः इस कार्य को स्त्रियाँ करती हैं; पुरुष तानी को कूँचा द्वारा माँजता है। कूँचा खस का बना होता है। कूँचे को दोनों हाथों से पकड़ कर ताना माँजा जाता है। माँजने की क्रिया एक ही दिन में होती है। माँजने से माड़ी सूख जाती है। इस सारी क्रिया को पाई करब (करना) कहते हैं। पाई तैयार होने पर सर की जगह पर बनिका (सूत) बाँध देते हैं। इससे उनकी साँथी बनी रहती है और लुंडी बनाने में भी सुविधा होती है। फिर पाई को बाध की भाँति लुड़ियाते (लपेटते) हैं। जिधर से पाई का माँजना आरम्भ करते हैं; उधर से ही उसे लपेटना शुरू करते हैं; जब सारी पाई लपेट उठती है तब दूसरी ओर का सिरा निकाल कर सूत को ऐंठ देते हैं; इसे अँगूठी करब (करना) कहते हैं। इस मुरेरे भाग को फिर लुंडी में घुसेड़ देते हैं।

बय भरना और भाँज करना :

२१०. पाई तैयार होने पर पनिक द्वारा बय में सूत पहनाया जाता है। मुरेरे हुए भाग के एक-एक सूत को तोड़ कर फिर उसका एक सिरा एक बय में दूसरा दूसरे बय में पहनाते हैं; इस प्रकार सारा सूत बय में पहना दिया जाता है। सूत के ये दोनों भाग फिर राछ के एक नक्खे (सूराख) में से निकाले जाते हैं। सारा सूत पहन जाने पर थोड़े-थोड़े सूतों को एक समूह में गठिया (बाँध) देते हैं। फिर इन के अन्दर से एक सरई पहनाते हैं। इस सरई को लपेटन में पतली रस्सियों से बाँध देते हैं। इन रस्सियों को जोत कहते हैं। प्रत्येक बार बय भरने की झंझट न करनी पड़े इसलिए कपड़े का थान उतारते समय भरी हुई बय को नहीं काटते, उतना भाग छोड़ देते हैं। इस छोड़े हुए भाग को

गेठुआ कहते हैं। इसी गेठुआ में हर बार पाई का सूत मुर्री द्वारा जोड़ देते हैं। इस प्रकार गेठुआ हमेशा करगह में पड़ा रहता है।

३११. अब बुनाई के लिए भॉज तैयार करते हैं। पाई का कुछ भाग फैला कर बनिका की जगह सरई पहनाते हैं। एक ओर से सरई पहना कर दूसरी ओर मे डोरा (सूत) बाँधते हैं। इससे बुनाई के समय जो सूत टूटता है उसका पता चल जाता है। जितनी लंबी भॉज रखनी होती है उतनी दूर पर एक लकड़ी लगाते है जिसे भँजनी कहते हैं। भॅजनी रख कर भॉज को उलटते हैं इस प्रकार भॅजनी बीच में पड जाती है, इसे अब चपनी कहते है। फिर इस के ऊपर एक चपटी लकड़ी रखते हैं। चपनी में दो रस्सियॉ बॅधी रहती हैं जिन्हे जोत कहते है। भॉज को बॉधने के लिए एक लम्बी रस्सी होती है जिसके एक सिरे पर दो रस्सियॉ होती हैं। इन्हीं दोनों रस्सियों में चपनी का जोता बॉधा जाता है। रस्सी का दूसरा सिरा जुलाहे के पास उसकी बाईं ओर एक खूँटे से बॉध दिया जाता है। भाँज से कुछ दूरी पर एक खूॅटा गाडा रहता है जिसे महतवा कहते है; इस खूॅटे से भॉजवाली रस्सी मुड़ती हुई जुलाहे के खूॅटे मे आती है। इस प्रकार रस्सी से भॉज तना रहता है और जुलाहा आवश्यकतानुसार इसी रस्सी द्वारा भॉज को कड़ा और ढीला करता है। शेष भॉज लॅडिया कर के अलग टॉग देते हैं और आवश्यकता पड़ने पर फैलाते हैं। भॉज के नीचे बय के पास करगह के समानान्तर एक लकड़ी रहती है जिसे खरकौट कहते हैं; इससे पाई कुछ उठी रहती है और बुनाई मे सुविधा होती है। बुनाई के समय थान की चौड़ाई बराबर रहे इसके लिए दो लकड़ियों के किनारे नोकीला लोहा लगाकर उसे कपड़े के दोनों किनारों में धॅसाते हैं। इन लकड़ियों का दूसरा किनारा इस प्रकार बॅधा रहता है कि दोनो ओर तनाव रहता है।

बुनाई के समय सूत भिगो लिया जाता है ताकि सूत टूटे नहीं। ऐसा करने के लिए एक कपड़ा भिगोकर रखते हैं जिसे पोतारी कहते हैं।

करगह और कपड़ा बुनना :

३१२. करगह का मुख्य भाग राछ है जिसके द्वारा ठोक-ठोक कर कपडा बुना जाता है। राछ के ठोंक से कपड़े की बुनाई घनी होती है। राछ करगह में लगी रहती है। बाये हाथ से करगह चलाते हैं। जहॉ पर करगह पकड़ा जाता है वहीं राछ के सामने ढरकी, सटल या ढोटा के दौडने के लिए सडक बनी रहती है। उसी पर से ढरकी घूमती है। ढरकी को चलाने के लिए झटका देना पडता है। इस झटके के लिए हत्थे के दोनों ओर बक्स बने रहते हैं। ढरकी इसी के अन्दर चली जाती है। ढरकी को पुनः बाहर फेंकने के लिए बक्सों के अन्दर लकडी का एक औजार होता है जिसे पीकर कहते हैं। झटका देने के लिए एक रस्सी होती है जिसका संबंध दोनों पीकरों से होता है। रस्सी में एक लकडी की मुठिया बॅधी रहती है। इस मुठिया को दाहिने हाथ से पकड़ते है। जब मुठिया को बाईं ओर

झटकते हैं तब दाहिनी ओर के पीकर में और जब दाहिनी ओर खींचते हैं तब बाईं ओर के पीकर में धक्का लगता है, पीकर में धक्का लगने पर वह ढरकी को धक्का देता है और ढरकी दौड़ती है। ढरकी मे **नरा** भर कर रखते हैं जिससे सूत निकलता है। हत्थे के दोनों बगल मे जो लकड़ी होती है और जिसके सहारे वह लटकता है वह **पंखा** कहलाता है। पंखे के ऊपरी भाग में बेंड़े-बेंड़ लकड़ी लगी रहती है जिसके सहारे वह लटकता रहता है। करगह चलाने के लिए जो समकोण लकड़ी दोनों ओर गड़ी रहती है उसे **खूँटा** कहते हैं। बय लटकाने के लिए ऊपर एक गोला रूल होता है जिससे बय आसानी से नीचे ऊपर होती है। बय जिस लकड़ी में पहनाई जाती है उसे **बयसर** कहते हैं। बयसर के नीचे एक लकड़ी होती है जिसे **पवसार या पावसार** कहते हैं। दोनों बयों को नीचे ऊपर करने के लिए गड्ढे में दो **पावदान या पावड़ियाँ** होती हैं जो दोनों पैरो से बारी-बारी दबाई-उठाई जाती है। एक पावड़ी दबाने से एक बय नीचे आती और दूसरी ऊपर जाती है; इसी प्रकार दूसरी पावड़ी से दूसरी बय नीचे आती और पहली बय ऊपर जाती है। बय के नीचे ऊपर आने पर हर बार ढरकी फेंकी जाती है। इस पूरी क्रिया से कपड़े की बुनावट होती जाती है।

२१३. थान लपेटने के लिए एक लकड़ी चौपहल होती है जिसे **लपेटन** कहते हैं। इसे घुमाने के लिए इसमें दाहिनी ओर सूराख बने होते हैं। जब लपेटन घुमाना होता है तब इसी सूराख में एक लकड़ी डालकर उसे घुमाते है। इस लकड़ी को **गिरदानक** कहते हैं।

ऊन का काम

भेड़ मूड़ना :

२१४ ऊन का उद्योग करनेवाली जाति गड़ेरिया है। गड़ेरिया भेड़ पालता है और उससे ऊन पैदा करता है। वर्ष भर में दो बार गड़ेरिया भेड़ों के बाल (ऊन) काटता है—एक चैत में दूसरा कुआर में। चैत का बाल उत्तम होता है। कुछ लोग वर्ष भर मे तीन बार बाल काटते हैं—फागुन, असाढ़ और कातिक मे। एक बार में एक भेड़ से लगभग पाव भर ऊन निकलता है। बच्चों के बाल मुलायम और गरम होते हैं। भेड़ के बाल काटने को भेड़ मूड़ब (मूडना) कहते हैं।

२१५. बाल काटने से पहले भेड़ को खूब धो-धो कर नहलाते हैं ताकि मैल साफ हो जाय। नहलाने के बाद जब ऊन सूख जाता है तब बाल काटते हैं। बाल काटने के लिए लोहे की हँसिया या कैंचा होता है। खेत की कटाई के लिए जिस

हँसिया का प्रयोग करते है वह बाल काटने के काम मे भी आती है। कैचा बहुत कम गड़ेरियो के पास होता है; यह कैंची के आकार का पर उससे बड़ा होता है। गड़ेरिया भेड को सुला (लेटा) कर उसे अपने पैरो के नीचे दबा कर बाल काटता है। बाल को काटकर उसे डंडे से पोटते हैं ताकि उसका गर्दा (धूल) झड़ जाय।

ऊन धुनना और कातना :

३१६. बॉस का करीब २॥ हाथ का फलठा होता है। इसके दोनो सिरों को कुछ पतला करके तथा चमड़े की दोहरी तॉत बॉध कर धुनकी बनाते है। धुनकी को बाये हाथ से बीचो-बीच पकड़ कर दाये हाथ से तॉत को धीरे-धीरे ऊन मे ही खींचते हैं, धुना हुआ ऊन पीछे हटता जाता है। ताँत को चमार या मोची बनाता है। यह दोबट होती है। तॉत चिकनी रेशे की अच्छी होती है। धूप या गर्मी से तॉत जल्द टूट जाती है। लगभग छः सात सेर ऊन धुनने के बाद तॉत बदलनी पड़ती है। किसी साफ, तर (नम) और निर्वात स्थान मे ऊन धुनते है। यह तीन-चार बार धुनने पर कातने योग्य हो जाता है। जब इसका एक-एक आर अलग-अलग हो जाता है और इसम फुटकी नही रह जाता और गर्द नीचे बैठ जाती है तब समझना चाहिए कि ऊन धुन गया। ऊन धुन जाने पर कातने के लिए मोटी-मोटी पूनी बना लेते हैं।

३१७. सूत कातने का जो चरखा होता है वही ऊन कातने का भी है अन्तर केवल यह है कि ऊन कातने के चरखे म तॉत का अवाल लगाते हैं। दायें हाथ से चरखे म लगी हथेली को घुमाते हैं और बायें हाथ से पूनी पकड़ते हैं कभी-कभी चमरख मे जहां तकुआ रहता है तेल लगाते हैं जिससे चरखा तेज और हल्का चलता है। एक घटे मे एक छटॉक ऊन कात सकते हैं। कताई का काम परिवार में औरते करती हैं। मर्द बुनाई करते हैं। गर्मी के अतिरिक्त प्रत्येक ऋतु मे कताई होती है। ऊन को कातने के बाद परेता पर लपेटते हैं फिर उसकी अँटिया बना कर रखते है।

ताना-पाई करना :

३१८. धुने हुए ऊन को कात कर नरी तैयार की जाती है ऊन को दोहरा करके जितना लम्बा कम्बल बनाना होता है उतना लम्बा ताना करत हैं। चार हाथ लंबे कम्बल में दो सेर और पॉच हाथ लम्बे कम्बल में अढ़ाई सेर ऊन लगता है। यदि ताना करत समय ऊन टूट जाय ता उसे सूत में मिला कर उल्टी गॉट दे देते हैं।

३१९. ऊन को चिकना और कड़ा करने के लिए बेल के गूदे या खली को पानी म भिगो कर खूब ढाली कर लेते हैं। फिर उसी पानी को सूत म लगा कर हाथ से मॉजते हैं। ऐसा करने से ऊन बुनाई योग्य हो जाता है।

वुनाई के हथियार :

३२०. ओखर—यह महुवे की एक मोटी गोली लकड़ी है। इसमें तीन छेद होते हैं इसमें ही ताने का एक सिरा बाँधते हैं और ज्यों-ज्यो कम्बल तैयार होता जाता है त्यों-त्यों उसमें लपेटते जाते हैं।

छड़—यह लोहे की एक हाथ लम्बी. गोली सीधी छड़ होती है इसमे ताने का दूसरा सिरा बाँधते हैं।

सहता—यह बाँस का एक हाथ लम्बा, गोल और मोटा टुकड़ा होता है। इसको उठे हुए ताने के बीच में लगाते हैं।

चपनो—यह बाँस की एक इंच चौड़ी फलठी हैं; इससे बै उठाते हैं।

तन्ना—यह बाँस का लगभग तेरह अंगुल लंबा एक टुकड़ा है, इसके दोनों किनारों को बुनी जाने वाली पट्टी के दोनों किनारों में खोंसते है ताकि पट्टी की चौड़ाई मे तनाव रहे और वह ठीक से बुनी जा सके।

बै या बय—एक आठ हाथ लम्बो बारीक रस्सी द्वारा बै बनाते हैं जिसके अन्दर ताने का सूत रहता है।

बैभरना—यह बाँस की एक हाथ लम्बी पतली लकड़ी है जिसमें बै भरी रहती है।

बेंव—इससे बुनी हुई पट्टी को ठोंक कर सूत गफ करते हैं।

डाँड़ी—एक लकड़ी जिसे ताने के सिरे पर लगाते हैं।

डोरी—यह एक २० हाथ लम्बी रस्सी है; इसके सिरे पर एक मुद्धीदार रस्सी लगाकर उसे ताने में बाँध कर ताने को कसते हैं।

खूँटी—ताने को कसने के लिए उसके आखिरी सिरे पर यह गाड़ी जाती है।

पट्टी बुनना :

३२१. जिस प्रकार टाट की पटिया (पट्टी) बुनी जाती है उसी प्रकार ऊन की भी। जब पटिया तैयार हो जाती है तब वह एक दूसरे से सूजा द्वारा दोहरे ऊन से जोड़ दी जाती है। चार घंटे में एक पट्टी बुनी जा सकती है। एक पट्टी लगभग एक हाथ चौड़ी और ४ या ५ हाथ लंबी होता है। तीन-चार पटिया जोड़ने पर एक कमरा (कम्बल तैयार होता है। एक परिश्रमी आदमी ८ घंटे प्रति दिन काम करके एक कम्बल तीन दिन मे तैयार करता है।

३२२. गड़रिया पहनने के लिए ऊन की पट्टी का अंगा और फतुही तथा ओढ़ने के लिए घोघी बनाते हैं। घोघी ओढ़ने से वर्षा में भीगने का डर नहीं रहता है। पट्टी का आसन या असनी भी बनती है।

तेल का काम

३२३. तेल का उद्योग तेली करता है। तेल पेरने का यंत्र कोल्हू कहलाता है। यह लकड़ी का होता है। इसे सभी बढ़ई नहीं बना सकते। पथरिया कोल्हू और इसकी बनावट एक ही ढंग की होती है अंतर केवल यह है कि यह लकड़ी का और उससे छोटा होता है।

कोल्हू :

३२४. कोल्हू के मध्य में एक गड्ढा होता है जिसे हड़ोड़ा कहते हैं। इसी में पेरने वाला सामान डाला जाता है। हड़ोड़ा से तेल चूने के लिए एक नारी (नाली) बनी होती है जिससे तेल बाहर निकलता है, इसे नेरुआ कहते हैं। नेरुआ के नीचे तेल रोपने के लिए मेटी (मिट्टी का एक पात्र) रक्खी जाती है। हड़ोड़ा लकड़ी के कई टुकड़ों से बनता है जिन्हें पाचर कहते हैं। पाचर घिस जाने पर उसे बदल दिया जाता है; इस क्रिया को पचरवाइब (पचरवाना) कहते हैं। पाचर बबूल की लकड़ी का अच्छा होता है क्योंकि यह लकड़ी कम घिसती है। हड़ोढ़ा में तेल पेरने के लिए एक लंबी व मोटी लकड़ी चलती है जिसे जाठ कहते हैं। जाठ का नीचे के भाग जो मूड़ सदृश गोला होता है और हड़ोढा में पाचर से सटकर चलता है मूड़ी कहलाता है। जाठ का ऊपरी किनारा नोकीला होता है, इसे चूर कहते हैं। इस पर कलछुल सदृश एक लकड़ी लगी रहती है जिसे ढेका कहते हैं। ढेका का खोरियावाला भाग चूर पर रहता है और उसकी डाँड़ी वाले भाग में एक सूराख करके गुल्ला (लकड़ी का एक टुकड़ा) डाल देते हैं और इस गुल्ले में एक रस्सी अँटका कर इसका सम्बन्ध कातर से करते हैं जिस पर हँकवैया बैठकर बैल को हाँकता है। कातर कोल्हू के निचले भाग से सट कर चलती है; इस स्थान को घघरा कहते हैं। कातर के इस भाग में एक अर्द्धचंद्राकार लकड़ी इस अभिप्राय से जड़ी रहती है कि कातर अपने स्थान पर ही चले; इसे चनेटा कहते हैं। पाचर के पिछले भाग में एक खूँटी गड़ी रहती है जिसे मरिखम कहते हैं। इसी मरिखम में एक गुल्ला लगा कर मरिखम और ढेंके के गुल्ले को एक रस्सी से संबंधित कर देते हैं। रस्सी बड़ी होने से कभी-कभी झटके से टूट जाती है और इसके टूटने पर कातर से बैल के पैरों में चोट लगने का भय रहता है इसलिए रस्सी के स्थान पर एक बाँस का टुकड़ा लगाते हैं जिसे काढ़ा कहते हैं। काढ़ा के दोनों किनारों पर सूराख रहते हैं जिनमें गुल्ला लगाकर रस्सी के द्वारा इसका संबन्ध ढेंका और मरिखम के कर देते हैं।

३२५. कोल्हू नाधे जाने वाले बैल के कंधे पर एक बींड़ (पुराने कपड़े की गद्दी) रखते हैं जिस के दोनों ओर रस्सियाँ लगी रहती हैं जिनका संबन्ध कातर से रहता है। बैल के चलने से कातर घूमती है। और कातर घूमने से जाठ घूमती है जिससे

पेराई की क्रिया होती है बैल के चक्कर करने की जगह को पउदरि कहते हैं। घेरा कम होने के कारण बैल को घूमने में कष्ट होता है। वह घूमने में कठिनाई न उपस्थित करे इसलिए उसकी दोनों आँखें बन्द कर दी जाती हैं। इन्हें ढकने के लिए बड़े कोसे के आकार का मूँज का ढक्कन बना दिया जाता है जिन्हें ढोंका कहते हैं। ये बैलों की आँखों पर चश्मे की भाँति पहना दिए जाते हैं। बैल हाँकने के लिए तेली कातर पर बैठता है। इसका दाहिना हाथ बैल के चूतर (चूतड़) या पुट्ठे पर रहता है जिसके सहारे वह बैल को हाँकता है। बायें हाथ से वह हढ़ोढ़ा के ऊपरी भाग से निकलती हुई घानी को बटोर कर पुनः हढ़ोढ़ा के अंदर डालता जाता है। बैल हाँकने के लिए हट तथा उसे खड़ा करने के लिए हो, होर अथवा खड़ा रह कहते हैं। पउदरि बैल के पेशाब से गीली न हो जाय इसलिए उसका मूत किसी परड या भरुका (मिट्टी का बर्तन) में रोप लेते हैं। गोबर के चोत या छोत भी हटाते रहते हैं ताकि पउदरि गंदी न हो और उसमें चहँटा न हो। इतना करने पर भी बहुधा बैल का मल-मूत्र पउदरि में गिर जाता है। जब मल-मूत्र से पउदरि गीली हो जाता है तब उसमें राखी छींट कर उसे सुखा देते हैं अथवा ऊपर से राखी-पाती पत्ती) डाल देते हैं। राखा-पाती धीरे-धीरे सड़कर खाद बन जाती है जिसे कचार कहते हैं।

३२६. एक बार में जितना माल पेरने के लिए डाला जाता है उसे घानी कोल्हू में और माल डालने को घानी लगाइब (लगाना) कहते हैं। थोड़ी देर में घानी पिसकर पाचर में लिपटने लगती है, इस अवस्था को घानी बैठब (बैठना) या जमब (जमना) कहते हैं। घानी जम जाने पर जाठ का पूरा-पूरा दबाव पड़ता है और तेल निकलना आरंभ होता है। तेल पहले गाज (फेन) के रूप में निकलता है। घानी से जब तक पूरा-पूरा तेल नहीं निकल जाता तब तक उसे कच्ची घानी कहते हैं। साफ घानी को जिससे तेल निकल गया हो निथरी घानी कहते हैं। जाठ ढीली होने पर अथवा मूड़ी के नीचे धान समा जाने पर कोल्हू जाठ को बाहर फेंक देता है, इसे जाठ फेंकब (फेंकना) कहते हैं। इस समय जाठ और धान को बाहर निकाल कर जाठ को फिर से डालना पड़ता है।

३२७. तेल निथर जाने पर जो पदार्थ बचता है उसे खरी (खली) कहते हैं। इसे निकालने के लिए लोहे की रुखाना या हल का फार रखते हैं। जिस मेंटा में तेल एकत्र होता है वह तेल रखते-रखते बहुत मजबूत हो जाती है। ऐसी मेंटी को पोखी मेंटी कहते हैं। जिस कपड़े से मेंटा पोछी जाती है वह तेल लगते-लगते लसर-लसर करने लगता है और उसमें तेल की काटि (मैल) छोप उठती (जाती) है। इस कपड़े को चोकट कहते हैं।

३२८. तेल बेचने के लिए तेली मिट्टी की नपी हुई परिया (मिट्टी का एक बर्तन) रखता है जिसे नपना कहते हैं। आधी छटाँक, छटाँक, आध पाव,

तथा पाव भर के नपने को क्रमशः अधछटंकी, छटंकी, अधगई, तथा पौआ कहते हैं। इन छोटे छोटे मिट्टी के बर्तनों को घरिया या घोंचिया कहते हैं। पहले बाँस काटकर उसका नपना बनाते थे जिसे कुप्पी कहते थे। मेंटी से तेल निकालने के लिए प.ी हो ी है; इसे पकडने के लिए इसमें डाँड़ी रहती है।

तेल के पदार्थ और उनकी पेराई :

३२६. तीसी—यह पेरने के लिए खून कर लगाई जाती है।

तिल्ली—यह सब से नरम तिलहन (तेल वाला पदार्थ) है। इसे न खूनना पड़ता है और न दरना, यह ज्यों की त्यों लगाई जाती है।

कोइनी—महुआ के पेड़ के फल को कोइना कहते हैं। कोइना के भीतर की गुठली को कोइनी कहते हैं। इसे निकालने के लिए कोइना को पानी में थोड़े समय के लिए भे (भिगो) देते हैं और जब उसका छिलका कुछ नरम पड़ जाता है तब दो पत्थरों के द्वारा उसे दर कर कोइनी अलग कर लेते हैं। एक-एक कोइना को लाढ़ा से फोड़कर भी कोइनी निकालते हैं। फिर काइनी को धूप में सुखाते हैं। यह तीसी की भाँति खून कर लगाई जाती है।

नीम—इस के फल को निमकौड़ी कहते हैं। इसे सड़ा कर धोते हैं। धोने के बाद बीज अलग हो जाता है। फिर उसे सुखा कर टीकुर (सूखी) जमीन पर रख कर किसी पिढ़ई या लकड़ी के छोटे से पल्ले से दरते हैं, फलस्वरूप गूदा बाहर निकल आता है। इसी गूदे को पेरते हैं।

सरसों—तिलहन में सब से मुख्य चीज यही है। बारहो मास इसकी पेराई होती है। सरसों पहले सूप से पछोरते हैं फिर इसकी अमनिया (बिनाई) कर इसे साफ करते हैं। इस प्रकार सफाई होने के बाद उसे चाकी में दरते (दलते) हैं। कोल्हू में डालने के पूर्व इसे करमोते (पानी से भिगोते) हैं; पिसाई के समय भी बीच बीच में कोल्हू में थोड़ा पानी डालते हैं, इससे घानी में अधिक तेल बैठता (पड़ता) है।

बाँस का काम

३३०. बाँस साधारणतः ऐसे स्थान पर लगाया जाता है जहाँ खेती की हानि न हो, बहुधा बाग के चारों ओर, जलाशय के किनारे या किसी बेकार जमीन में इसे लगाते हैं। इसके लिए दोमट मिट्टी अच्छी होती है यद्यपि यह ऊसर में भी हो जाता है। ऊसर के बाँस बाढ़ (वृद्धि) में कम लेकिन मजबूत होते हैं; मटियरा का बाँस विस्तार नहीं करता पर अपेक्षाकृत ठोस और मजबूत होता है।

३३१. बाँस फैलनेवाले वृक्षों में से है। जिस प्रकार केरा (केला) की एक पूती से धीरे-धीरे बहुत सी पूतियाँ निकल आती हैं और कुछ दिनों में केले के बहुत से

वृक्ष तैयार हो जाते हैं उसी प्रकार एक बाँस लगाने पर कुछ दिनों में बाँस की कोठी तैयार हो जाती है। बाँस कट जाने पर शेष भाग खूँटे की भाँति दिखाई इता है, संभवतः इसीलिए बाँस के स्थान को खूँटी भी कहते हैं। कोठा शब्द का इस अर्थ में प्रयोग केवल बाँस के लिए ही मिलता है। बाँस की कोठी या खूँटी के समूह को **बँसवारी** या **बँसवाड़ी** कहते हैं।

३३२. बाँस लगाने के लिए नए बाँस का **फेदा** (जड़ सहित तना वाला भाग) खोद कर नई जगह लगाते हैं। वर्षा में बाँस में नई-नई आँखें निकलती हैं अतः उसी समय इसे लगाना ठीक होता है। **मृगडाह नखत** (मृगशिरा नक्षत्र) में बाँस के लगाने की प्रथा है। लगाने के पूर्व बाँस को एक रात पानी में भिगो देते हैं; इससे तरावट बनी रहती है। वर्षा न होने पर इसे सींचते रहते हैं। बाँस खनते समय इस बात का ध्यान रखते हैं कि उसकी आँखें न कटें क्योंकि ये ही विकास करके नए-नए बाँस का रूप धारण करती हैं। आँख बढ़कर जब बाँस का रूप धारण करती है तो उसे **करिल** कहते हैं। इस प्रकार एक बाँस से कई बाँस उत्पन्न होते हैं और बाँस का परिवार बढ़ता जाता है।

३३३. बाँस के जड़ वाले भाग को **जरौधा**, तने को **पेड़हरा** तथा **पलई** या सिरे के भाग को **पलौठा** कहते हैं। बाँस के गाँठों पर से **कंछे** निकलते हैं जिन्हें **कइन** कहते हैं. ये पतली-पतली डालियाँ छप्पर और खपरैल की छाजन में काम देती हैं। इन्हीं गाँठों पर, बाँस की रक्षा के लिए, एक पत्ता निकलता है जो बाँस को लगभग चारो ओर से ढके रहता है; करिल के बढ़ने के साथ ही यह भी बढ़ता है। यह पत्ता, बाँस मजबूत हो जाने पर, स्वयं झड़ जाता है; इसको **सिपोलो** कहते हैं। यह नाम संभवतः इसलिए है कि इसका आकार छोटे सूप की भाँति होता है। बच्चे इससे अपने खेल मे सूप का काम लेते हैं। इसका ऊपरी भाग रोएँदार किन्तु भीतरी भाग जो बाँस पर चिपका रहता है अत्यंत चिकना होता है; इसलिए बच्चे इस पर गुड़ आदि रख कर खाते हैं। बाँस में फूल आते हैं लेकिन फल बहुत कम; जो बाँस फलता है वह सूख जाता है। इस प्रकार बाँस में फल लगना उसके विनाश का चिह्न है, कहावत है, '**केरा बीछी बाँस अपने फरे या जनमले नास**' अर्थात् केला बाँस फल देने तथा बीछा बच्चा देने पर मर जाती है। किसी-किसी बाँस के भीतरी भाग में चीरने पर छोटे-छोटे हल्के नीले रंग के टुकड़े प्राप्त होते हैं जिन्हें **वंसलोचन** कहते हैं; कहा जाता है कि स्वाति नक्षत्र के जल से इसकी उत्पत्ति होती है। बाँस में **कराइन** (छान की पुरानी पत्ती) खाद का अच्छा काम करती है खूँटी के बाहरी भाग के बाँसो में आँखें अधिक निकलती हैं। आँखो के निकलने को **पौधब** (पौधना) कहते हैं, इस समय कहा जाता है कि बाँस '**पौधत बा**', अर्थात् बाँस में नए-नए पौधे निकल रहे हैं। भीतर के बाँसों में आँख कम निकलती हैं अतः भीतर वाले बाँस ही काटे जाते हैं। बाँस कटने से उसकी जड़

से नई-नई आँखे निकलती हैं । अतः पुराने बाँस का कटना लाभप्रद होता है । बाँस अन्हियारे (अँधियारे) पाख में काटने पर घुन जाता है । अत. इसे अँजोर पाख (शुक्ल पक्ष) में ही मकान आदि के लिए काटते हैं । लोगो का ऐसा अनुभव है कि बाँस काटकर यदि उसे पानी मे कुछ दिन डाल कर रक्खा जाय तो उसके घुनने की संभावना नहीं रहती । बलुही जमीन के बाँस दोमट तथा ऊसर के बाँसों की अपेक्षा अधिक घुनते है।

३३४. बाँस ग्रामीण लोगों के बड़े काम की वस्तु है । बाँस ऐसी लंबी चीज और कोई नहीं होती, खेत की सिंचाई के लिए ढेंकुर के लिए इसका बल्ला लगाते है । पुर में घुरई इसी की बनती है । मकान मे तो इसका बहुत ही उपयोग होता है । छप्पर की छाजन तो बाँस के बिना तैयार करना कठिन हो जाय, खपरैल की छाजन में कोरो व कड़ी के रूप मे इसका प्रयोग अत्यधिक होता है । इसके अतिरिक्त चीरने पर इसके फल्ठे छाजन मे बहुत उपयोगी होते हैं । ठट्टर बनाने के काम में भी ये आते हैं । बाँस की लाठी बनती है । बाँस को चीर कर इसके अनेक उपयोगी सामान बनाते हैं, यथा बेंड़ी, पलरा, पलरी, तराजू, दौरा, दौरी आदि । बड़े सामानों के अतिरिक्त पंखा, पानदान आदि छोटे-छोटे सामान भी बनते हैं ।

बाँस के भेद :

३३५. भलुआ—बाँसों में यह सब से मोटा पर, पोला होने के कारण, मजबूत कम होता है । किन्तु सामान बनाने के लिए यह सब से अच्छा होता है । लबाई में यह सब से अधिक होता है । इसमें गाँठें दूर-दूर होती हैं अतः कइन अधिक नहीं होती हैं । साधारणतः जो बाँस लंबे होने हैं उनमें गाँठें और कइनें कम होती है; नाटे कद के बाँस टेढ़े, गठीले तथा कंछेदार होते हैं ।

३३६. बँसफूल या फुलबाँस—यह भलुआ से छोटा और कम मोटा होता है । इसकी पत्तियाँ भी उससे छोटी होती हैं किन्तु मजबूती में यह उससे कहीं अधिक होता है, यह कड़ी जाति का बाँस है । इसके लाठी-डंडे बनते हैं ।

३३७. दुबिहन—यह अपेक्षाकृत ठोस बाँस है । इसकी सब से बड़ी विशेषता यह है कि इसमें लचक होती है और यह जल्दी टूटता नहीं, अन्य बाँस जरा से ही दबाव मे टूट जाते हैं पर यह बोझ संभाल लेता है । लचक से इसकी लाठी बहुत अच्छी मानी जाती है । यह मोटाई में मध्यम श्रेणी का बाँस है अतः यह सभी काम मे आता है । सिधाई की दृष्टि से भी यह अच्छा होता है । सीधे बाँस को छरहरा बाँस कहते हैं । दुबले पतले नवयुवक के लिए 'नवा छरहरा' प्रयोग करते हैं ।

३३८. सुमेर—यह गँठीले बाँसों में से है । यह दुबिहन से लंबाई में छोटा एवं पतला होता है । यह ठोस और बहुत मजबूत होता है, लाठी के लिए यह उत्तम बाँस है । एक सुमेर में दो लाठियाँ निकल सकती हैं ।

३३९. कँटवासी—यह अपने ढंग का एक ही बाँस है । इसकी गाँठों पर

काँटे होते हैं इसी कारण इसे कँटवासी कहते हैं। यह पतला, टेढ़ा तथा अत्यंत गठीला बाँस है। इसमें कइनें अत्यधिक होती हैं जो बाँस को लता की भाँति जकड़े रहती हैं अतः इसकी खूँटी एक घनी काँटेदार झाड़ी सदृश होती है जिसमे घुसना असंभव होता है। इसमें से बाँस काट कर निकालना एक टेढ़ी खीर है यह बाँस केवल लाठी या छड़ी के काम में आता है। इसकी पत्तियाँ बहुत छोटी होती हैं। जंगली कँटवासी की अपेक्षा लगाई हुई कँटवासी सीधी और साफ होती है। इसमे कइनें भी कम होती हैं। छाजन के लिए इसे काटकर काम मे लाते हैं क्योंकि इसकी छाजन बहुत मजबूत तथा टिकाऊ होती है। इसके घुनने का डर नहीं होता है।

धरिकार और बाँस के सामान :

३४०. गृहस्थी के साधारण उपयोग मे जहाँ तक बाँस आता है वहाँ तक तो गृहस्थ उसे काट छाँट कर अपनी आवश्यकतानुसार स्वयं बना लेता है या बढ़ई से बनवा लेता है किन्तु जहाँ तक बाँस के उद्योग का सम्बन्ध है यह **बँसफोर**, **धरिकार** तथा **डोम** करते है। **बँसफोर** तथा धरिकार एक ही वर्ग की दो शाखाएँ हैं, उन्हें ही **बँसफोर**, **धरिकार** या **बेनुबंसी धरिकार** कहते हैं। बँसफोर अधिकतर घूम-घूम कर अपना पेशा करते हैं, उनका कोई स्थान नही होता है। बेनुबंसी गाँव मे बस गए है और विवाह आदि उत्सवो पर **सिंघा** तथा **तुरही** बाजा बजाते हैं। डोम को, कुछ लोग इन्हीं के वर्ग का मानते हैं पर इनका रहन-सहन इनसे गिरा हुआ होता है। गाँवों मे ये बहुत कम हैं। बाँस का काम करने के कारण इस उद्योग के करने वालों को **बँसकट** कहते हैं।

३४१. बाँस के काटने तथा चीरने के लिए धरिकार के पास **बाँकी** होती है। यह इस्पात को बनी होती है। पकड़ने के लिए इसमे **मुठिया** लगी होती है। बाँस फाड़ने, चीरने तथा काटने के लिए यह बहुत अच्छा औजार है। बारीक काम के लिए उसके पास **छूरी** होती है। बाँस को काटते या चीरते-फाड़ते समय उसके नीचे किसी लकड़ी या फेंदे (बाँस की जड़ के समीप का भाग) को वह रखता है जिसे **ठहा** या **मूँगरि** कहते हैं।

३४२. बाँस के दो गाँठों के बीच के सादे भाग को **अँकउरा** कहते हैं। जब टुकड़े मे केवल एक गाँठ हो तो उसे **पोर** कहते हैं। इस प्रकार एक पोर में दो अँकउरा निकल सकते हैं। धरिकार को बारीक काम के लिए बाँस की पतली-पतली तीलियाँ या पत्तियाँ चाहिए, उसके लिए उसे बाँस को खड़े-खड़ फाड़ना पड़ता है। बाँस को फाड़कर वह चार बराबर फल्ठो में करता है। इसमें दो फल्ठे ऐसे होते हैं जिनमें गाँठे होती हैं और दो फल्ठे ऐसे निकलते हैं जिनमें गाँठों का निशान मात्र रहता है। गाँठ वाले दोनों हिस्सों को **गेंठी** तथा चिकने हिस्सो को **चींसी** या **चींहर** कहते हैं। चींसी मे भी दोनों भाग दो प्रकार के होते हैं। गाँठ के समीप वाला भाग नर तथा गाँठ से दूर वाला भाग मादा कहलाता

है क्योंकि पहला दूसरे से कड़ा होता है; इन्हें क्रमशः मँड़सँड़ तथा जोइयँड़ कहते हैं। मादा वाले भाग की तीलियाँ लचीली तथा मुलायम होती हैं और इसके चीरने में भी सुविधा होती है। इसका सामान साफ, सुथरा तथा सुन्दर होता है। फल्ठे से पतली पतली तीली बनाते हैं जिन्हें सार कहते है छिलके सहित सार को दिउली कहते हैं। दिउली चीर कर तेरवन या तेरहवन बनाते हैं। फल्ठे की पतली परन्तु चौड़ी पत्ती को पाती कहते हैं जो पंखे के बुनने में काम देती है। इससे मोटी और चौड़ी पत्ती को पाटा कहते हैं। दौरा दौरी की बुनावट में ताना इसी का करते हैं। बाँस का मोटा पाटा जो लगभग डेढ़ अंगुल चौड़ा और एक अंगुल मोटा होता है दौरे के मेंडरा बनाने के काम में आता है। बाँस का सार और पत्ती आदि बनाते समय जो छीलन गिरता है उसे लीम्फी कहते हैं। बाँकी के द्वारा बाँस साफ करने को रोलब (रोलना) कहते हैं। बाँस की पत्ती नोकदार बनाने को चोखियाइब (चोखियाना) कहते हैं। बाँस के पतले चुभ सकने वाले छोटे टुकड़ों को खैंच पैंच, फइंच अथवा खपीच कहते हैं।

२४३. बाँस के सामानों में दौरा-दौरी सब से अधिक बनती है। यह चौड़े मुँह का सब से बड़ा बर्तन है। दौरा को पाथी भी कहते हैं। दौरे से जो बड़ा बर्तन होता है उसे ढरवा कहते हैं। दौरा बनाने में बाहर और भीतर का ढाँचा अलग-अलग बनाना पड़ता है। बाहरी ढाँचे का खँखरा कहते हैं। इसमें पाटा से ताना करके सार से बिनाई की जाती है। दौरे के भीतर वाले ढाँचे की बनावट जो चटाई सदृश चिकनी और साफ होती है बेनी कहलाती है। इसकी बिनावट पत्तियों से की जाती है; बिनावट शुरू करने को बेनी अथवा पूरन छानब (छानना) कहते हैं। बेनी की बुनावट तीन-दो, तीन-दो होती है, अर्थात् तीन पत्तियाँ उठतीं और दो दबती हैं। इसी तरह से सारी बिनावट होती है। एक साथ उठनेवाली पत्तियों को गावा कहते है। दो-दो पत्तियों के उठाने को दोवावनि कहते हैं। बेनी उलट कर बिनी जाती है, इस प्रकार बिनने को डाँड़ कहते हैं। जब बेनी लगभग तैयार हो जाती है और केवल किनारे का भाग बाकी रहता है तो पत्तियाँ जोड़ कर उसे भरने को पंखिला करब (करना) कहते हैं। बेनी तैयार हो जाने पर खाँखर के अन्दर उसे बैठा देते हैं। इसे खोल बैठाइब (बैठाना) भी कहते हैं। तदुपरान्त किनारे पर मेंड़रा लगाकर बंधन से बाँधते हैं, बंधन भी बाँस का ही होता है। दौरा की पेनी (पेंदी) से बिनावट का वृत्त बढ़ता जाता है और कुछ दूर जाकर फिर घटने लगता है। इस उभड़े हुए मध्य भाग को पाँजर तथा पाँजर से मेंड़रा तक सँकरे होते हुए भाग को चूरी कहते हैं। पाँजर लगभग एक बीता और चूरी आधी बीता ऊँची होती है। दौरे की इस प्रकार की बिनावट से दो लाभ होते हैं एक तो उसमें स्थान बढ़ जाता है दूसरे उसका मेंड़रा भी दोनों हाथों से पकड़ा जा सकता है। वृत्त की मजबूती के लिए खाँखर में पेंदी

के मुड़ाव पर तीन सार एक साथ चोटी की भाँति **तर-ऊपर** करते हुए बिनते हैं इसे **गाड़न** कहते हैं। गोलाई में बाँधने को **तेंवर** कहते है। मेंडरे पर जो चौड़ी पत्ती दी जाती है उसे **गात** कहते हैं। मेंड़रा के पास दो सार एक साथ ऐंठ कर या बटे हुए रूप में देते हैं जिसे **मोरवट** कहते हैं। अंतिम बिनाई को **तिकिच** कहते हैं।

३४४ **तेराजू** का **पलरा** तथा पानी उबहने के लिए बेंड़ी बाँस की ही बनती है। गर्मियों में **पंखा** भी बहुतायत से बनता है। विवाह के अवसर पर घरिकार वर-पक्ष को **डाल** और **चोंगा** बनाकर देता है। डाल पर **ताग-पाट** रक्खा जाता है। चोंगा द्वारा लावा उठा कर डाल पर डालते हैं। बाँस की **छतरी** (छाता) जो **चरवाहों** के बड़े काम की चीज है घरिकार ही बनाता है।

सोने-चाँदी का काम

३४५. सोने-चाँदी के **गहने** (आभूषण) बनते हैं। गहना बनाने का काम **सोनार** (स्वर्णकार) करता है। सोनार जहाँ बैठकर **गहना गढ़ता** है उस स्थान को **बेदी** कहते हैं। यह स्थान वह प्रति दिन **लीपता** है। सोनार के पास सोना-चाँदी गलाने के लिए मिट्टी की **बोरसी** होती है। बोरसी घर की स्त्रियाँ बनाती है। बोरसी में इमली या बबूल का कोयला रख कर आग **सुलगाते** (जलाते) हैं। आग धौंकने के लिए बाँस की **पंखी** होती है आग फूँकने के लिए वह बाँस की एक नली रखता है जिसे **फोंफी** कहते हैं। आग धौंकने के लिए किसी-किसी सोनार के पास चमड़े की **भाथी** होती है। आग उठाने के लिए **चिमचा** होता है।

सोनार के हथियार :

३४६ **निहाई**—यह लोहे की **चौपहल** आकार की होती है। इस पर सोना-चाँदी रखकर पीटा जाता है। निहाई को एक लकड़ी में गाड़ कर बैठा देते हैं ताकि यह हिले-डुले नहीं। इस लकड़ी को **ठीहा** कहते हैं।

हथउड़ या हथउड़ा—यह लोहे का होता है इससे पीटने का काम लेते हैं। इसे पकड़ने के लिए इसमें लकड़ी का बेंट लगा रहता है। इसके छोटे और हलके रूप को **हथउड़ी** कहते हैं।

चिमटी—यह बारीक चीजों को पकड़ कर उन्हें उठाने के काम में आती है।

जतरी—यह चाँदी के **सूत** (तार) खींचने का लोहे का औजार है। इसमें विभिन्न आकार के छिद्र बने होते हैं। यह २ अँगुल चौड़ी $\frac{1}{4}$ इंच मोटी तथा २$\frac{1}{2}$ बीता लंबी होती है।

परगहनी—इसमें चाँदी गला कर ढारते हैं। यह लगभग दो बीता लंबी, दो या तीन इंच चौड़ी और एक या डेढ़ इंच गहरी होती है। इसे पकड़ने के लिए जो पतला भाग होता है उसे **डाँड़ी** कहते हैं।

घरिया—चाँदी गलाने के लिए यह मिट्टी का एक छोटा पात्र है। पोतनी मिट्टी में रूई मिला कर खूब कूटते हैं जब मिट्टी लसदार हो जाती है तब उसकी घरिया बनाते हैं। इसी घरिया में चाँदी गला कर उसे परगहनी में ढारते हैं।

कतरी—यह कैंची की तरह चाँदी का टुकड़ा काटने के लिए होती है।

रेती—यह खुरदुरापन मिटाने के लिए लोहे का एक औजार है।

कलम—गहनों पर नक्काशी करने के लिए ये विभिन्न आकार के होते हैं, आकार के अनुसार इनके विभिन्न नाम होते है यथा, गोलहाँ, दुइमुँहा तथा दुइधरा।

सलिस्त—यह छेद करने के लिए होता है।

दरी—यह काँसा या पीतल का चौकोर—लगभग चार अंगुल वर्ग का—होता है। इसमें छोटे-बड़े विभिन्न आकार के गाड़ (गड्ढे) बने रहते हैं जिसमें घुंडी ऐसी गोली चीज खाली (बनाई) जाती है।

ठप्पा—बटन, अमूठी मुनरी आदि बनाने के लिए यह होता है।

गहुआ—सँड़सी की तरह यह पकड़ने का एक औजार है। चाँदी का तार खींचते समय उसे इसी से पकड़ कर खींचते हैं।

गहने से संबंधित कार्य:

३४७. चाँदी गलाना—चाँदी के टुकड़े करके घरिया में डाल कर उसे आग पर रखते हैं। आग की आँच कड़ी होनी चाहिए। जिस समय चाँदी आग पर रहती है उस समय उस पर सोहागा की बुकनी (चूर्ण) भोहराते (छिड़कते) हैं। जब चाँदी पूर्णरूपेण द्रवीभूत हो जाती है तब उसे ढारते हैं। सोहागा डालने से चाँदी की मैल कट जाती है और चाँदी पक्की हो जाती है। मैल को चिमचे से निकालकर बाहर कर देते हैं। ढालने के पूर्व परगहनी में थोड़ा सा तेल डाल कर रखते हैं; यह तेल पिघली हुई गरम चाँदी पड़ते ही जल उठता है। परगहनी में सारी चाँदी फैल न जाय इस अभिप्राय से उसे आवश्यकतानुसार मिट्टी से लेस (घेर) देते हैं। इस प्रकार जितनी मोटी चाँदी ढारना चाहें ढार सकते हैं।

३४८. चाँदी का तार खींचना—जतरी के सूराख में चाँदी के छड़ का एक सिरा पतला करके डाल कर गहुआ से खींचते हैं। जब एक बार तार खिच जाता है तब उसे और बारीक करने के लिए उससे बारीक छेद में डाल कर खींचते हैं।

३४९. चाँदी का गहना साफ करना—इसके लिए एक मसाला तैयार करते हैं जिसमें नसादर, सोरा, नमक तथा फिटकरी बराबर-बराबर मिलाकर पानी में लेई की तरह बनाते हैं इसके अतिरिक्त अथरा (मिट्टी का एक बर्तन) में इमली भिगो देते हैं। इमली घुल जाने पर खटाई का पानी तैयार हो जाता है। जिस गहने को साफ करना होता है उसे थोड़ा गर्म करते हैं जब वह ठंडा हो जाता है तब मसाला लगा कर थोड़ी आँच से उसे पुनः गर्म करते हैं। गर्म होने पर गहने को इस

सर का गहना :

२५५ चंदक या चँदवा—यह माँग पर पहना जाता है। चाँदी का एक एक गोला चंद्राकार पत्र बनाकर उसके ऊपरी भाग पर तीन-चार चन्द्राकार उभड़ी हुई चाँदी की पतल-पतली पत्तियाँ लगाते हैं। इसमें तीन सीकड़ें लगी रहती हैं। एक पीछे जूड़ा में खोंस दी जाती है और शेष (दोनों कानों) पर लटकती हैं। इनमें झुमका लगा रहता है।

बंदी—यह चँदवा का छोटा रूप है।

सुपारी—यह सुपारी के आकार का होती है, विशेषतः लड़कियाँ पहनती हैं।

गले का गहना :

२५६ सकरी—यह चाँदी और सोने की जंजीर है।

कंठा—सोने का पत्तर काट कर नकासते हैं फिर दो पत्तरों को मिलाकर अंडाकार बना लेते हैं। यह गुह कर पहना जाता है।

हँसुल—यह चौपहल आकार की भरतू और खोलऊ दोनों बनती है। हँसुली के दोनो किनारों पर हुंडी के आकार का छोटा गूँजा होता है।

तिलरी—सोने के तिकोने पत्तर को गुह कर बनाई जाती है।

तवक—यह चंद्राकार होता है। मुसलमान स्त्रियाँ चाँदी का तवक पहनती हैं।

गुलेबंद—यह गले में लपटा रहता है। इसमें एक इंच चौकोर के कई फूलदार टुकड़े रहते हैं। यह सोने का होता है।

पखियारी—सोने की गुरिया गुह कर गुलेबंद की तरह पहनी जाती है; सामने सोने का एक पत्तर लगा रहता है।

टीका—गुलेबंद की तरह होता है। इसमें घुँघुरू भी लगा रहता है।

जुगनू—यह हुमेल की तरह पहना जाता है। इसमें छोटी-छोटी सोने की खोरिया होती है जिनमें शीशा जड़ा रहता है और जो चमकता है।

हुमेल—सोना और चाँदी दोनों की होती है। चाँदी के रुपये में दोहरा कोंढ़ा जोड़ कर बनाते हैं।

पनवाँ—यह पान के आकार का होता है, हुमेल में लटकता रहता है।

चौकी—यह चौकोर होता है। और पनवा के स्थान पर लगता है।

बाजू का गहना :

२५७ बिजायठ—यह सोने और चाँदी के पत्तर का बनता है, गुल्ली के आकार का नकाशदार होता है।

जौसन—इसमें चौपहल दाने होते हैं जो गुह कर पहने जाते हैं।

टड्डा या फेरवा—ताँबे के छड़ पर सोने का पत्तर चढ़ा कर बनाते हैं यह दो या तीन फेरे का रहता है।

बाजू—एक बाजू में बीस-पचीस या तीस दाने रहते हैं। बाजू के दाने साँचे

में ढार लिए जाते हैं। इन दानों के दोनों सिरों पर गूँजा होता है जिसमें सूराख रहता है। इसे पटहार से गुहा कर पहनते हैं एक बाजू में बीस-पचीस या तीस दाने रहते हैं।

बैरखी—यह गुल्ली के आकार का होता है।

टँड़िया—यह चाँदी के पत्तर का खोलरू होता है, इस पर फूल बना रहता है।

बहूँटा—यह भी खोलरू होता है। बाजू के ऊपर पहना जाता है।

अनन्ता—यह सोने का बनता है, ताँबा पर सोने का पत्तर चढ़ा रहता है। टँड़िया से मिलता-जुलता है।

कलाई का गहना :

२५८. **छन्ना**—चाँदी का गोल लगभग आधा इंच चौड़ा पत्तर बनाकर उस पर छपहल के चौथाई इंच के तीन या चार चाँदी के टुकड़े लगा कर जोड़ देते हैं। इसके दोनों सिरों पर गूँजा होता है जिसमें कील डाल कर पहनते हैं। यह चूड़ियों के बीच पहना जाता है।

ककना—यह छन्ने की तरह चाँदी के पत्तर से बनता है। इसके पत्तरों के किनारों पर चाँदी के **रवे** (दाने) जोड़े जाते हैं **रवा** का आकार गिनती के एक की भाँति होता है। इसमें भी गूँजा बना रहता है।

ढरकउआ—यह सोने-चाँदी दोनों का बनता है—बच्चों के लिए भरतू बनता है। यह पोला और नकाशदार भी बनता है। हुंडी पर बाघ (शेर) का मुँह बनाते हैं ऐसी हुंडी को **बघमुँहाँ हुंडी** कहते हैं।

सिंघाड़ा—यह चाँदी का बनता है। और सिंघाड़ा के आकार का होता है।

पहुँची—यह भी सोने-चाँदी दोनों की बनती है। मोती के आकार की गुरिया पिटाई जाती है। यह तीन **पतियारी** (पाँती) गुही जाती है।

कतरी—यह चाँदी की पतली पत्ती है जो चूड़ी के आगे पहनी जाती है।

पट्टा—यह बहुत ही सादा गहना है इसीलिए इसे विधवा स्त्रियाँ भी पहनती हैं। चाँदी का पत्तर गोला करके उसमें दोनों ओर कोंढ़ा लगा देते हैं। एक ओर दो कोंढ़े होते हैं। दोनों सिरों को मिला कर उनके सूराखों से एक चाँदी की कील डाल देते हैं जिससे वह हाथ में थम्हा (रुका) रहता है।

पछेला—यह भरतू तथा पोलदार दोनों बनता है। यह चूड़ी के पीछे पहना जाता है।

मोतिहरा—इस पर मोती सदृश दाने लगते हैं। पछेला की भाँति वह खोलरू बनता है।

हाथ की अँगुलियों का गहना :

२५६. **अरसी**—यह तर्जनी में पहनी जाती है।

मुँदरी—यह चाँदी के तार की अँगुरी (अँगुली) के साध (नाप) की बनती है।

करैनी—यह नकासदार मुँदरी है—अँगुलियों मे पहनी जाती है।

अँगूठी—यह सोने की बनती है।

अँगुरताना—यह अँगूठे में पहना जाता है—चाँदी की पत्ती पर फूल नकाश कर अँगूठा की तरह पहनते हैं।

कमर का गहना :

३६०. करधनि—यह कमर में पहनते हैं। यह तीन-चार अंगुल चौड़ी पट्टी होती है। पट्टियों पर फूल आदि बने रहते हैं। दोनों किनारों पर ओंढ़े बने रहते हैं जिनमें एक सलाई डाल दी जाती है।

पैर का गहना :

३६१. कड़ा या गोड़हरा—यह भरतू (ठोस) तथा खोलऊ (पोलदार) दोनों ढंग का बनता है। कड़ा के दोनों सिरों पर गोल नकाशी हुई हुडी (घुण्डी) होती है।

पायजेब या पैजेब—यह घुँघरूदार गहना है चाँदी के पत्तर पर रवागार घुँघुरू गाँछ देते है। ये रवा चाँदी के तार द्वारा गाँछे जाते हैं। इसे गँछुआ पैजेब कहते हैं। ढरुवा पैजेब भी बनता है।

लच्छा—चाँदी का तार खींच कर बनाया जाता है। दो तीन तार ले कर एक साथ रस्सी की तरह बट दिए जाते हैं; बटने के बाद आवश्यक आकार के लच्छे काट कर जोड़ दिए जाते हैं।

मल—यह लच्छे के ढंग का गहना है, चाँदी की पत्ती ऐंठ करके बनाते हैं।

छागल—इसे लच्छो के नीचे पहनत हैं यह एक पटरीदार गहना है। इसमें घुँघुरू लगे होते हैं।

पायल—यह नया गहना है, लड़ीदार होता है।

झाँझ—यह पोल दार कड़ा कहा जा सकता है। चाँदी के पत्तर का बनता है। इसके भीतर ताँबें की टुकड़ी डाल देते हैं जिससे यह झनकार करती है।

पटरी—यह पटरी के आकार का आभूषण है इस पर नकाशी हुई रहती है।

पैर की अँगुलियों का गहना :

३६२ जोट—अँगूठा में पहना जाता है, पहनने के लिए नीचे डाँड़ी लगी रहती है।

बताशा—यह बताशे के आकार का होता है। अँगूठा और कनगुरी को छोड़ कर शेष अँगुलियों मे पहना जाता है।

बिछिया—यह मन्दिर के आकार की या कलश सदृश होती है। यह भी बताशा की भाँति पहनी जाती है।

ढार या त्रि या—यह ढाल के आकार का चाँदी का होता है।

सा ड़ी का ग ह ना :

३६६ अँचरा—यह पोलदार दाना है जो साड़ी के आँचर मे लगता है।

मनोहरी—यह साड़ी मे घूँघट के पास गुहा रहता है।

गहना गुहने का काम

३६७. गहना गुहने का काम पटह'र करते हैं। विवाह के अवसर पर जहाँ सोनार, माली, दरजी, बढ़ई आदि का काम पड़ता है वहाँ पटहार का भी। पटहार की भी अन्य परजा की भाँति जजमानी होती है। जिसके यहाँ जो पटहार गहना गुहता रहा है वही गुहेगा। विवाह संस्कार में ताग-पाट की आवश्यकता पड़ती है। यह लड़के की ओर से लडकी के लिए जाता है। ताग-पाट बना कर पटहार ही देता है। संभवतः इसी आधार पर इसे पटहार की संज्ञा दी गई।

प ट हा र के ह थि या र औ र का म :

३६८. कैंची-छूरी के अतिरिक्त उसके पास चरक या लटाई होती है। यह लकड़ी का लगभग डेढ़ बीता लंबा होता है। इसके एक किनारे पर ताँबे का पतला तार लपेटा रहता है, यह तार सफेद और पीला होता है। गहना गुहते समय उसकी सुन्दरता के लिए यह मिढ़ा जाता है। इसके एक किनारे पर रुपए के आकार की लकड़ी की दो फिरकियाँ रहती हैं, इन्हीं फिरकियों के बीच में तार लपेटा रहता है। तार मिढ़ने के लिए चरक को सूत के चारो ओर चक्कर दे कर घुमाते हैं।

एक अन्य औजार चक स है। यह लोहे का होता है। इसे अगूठे में बझा (फँसा कर) इसके सहारे सूत को कई परत करते हैं।

सूत रँगना—सूत को जिस रंग में रँगना होता है उस रंग को पहले थोड़ा सा पानी डाल कर फेंटते हैं फिर उसमें रँगने के लिए उचित मात्रा में पानी डाल कर और थोड़ा सा नमक मिला कर उसे आग पर रखते हैं। फिर सूत को उसी रंग में डाल देते हैं। जब सूत उसिन (उबल) जाता है तब रंग पक्का हो जाता है।

३६६ पटहार सूत के निम्न गहने बनाता है :—

मुँड़गुहना—स्त्रियाँ इससे सर का बाल बाँधती हैं। यह पाँच लट की चोटी है।

करधन—यह बच्चों के लिए विशेष रूप से बनती है।

बौंखा—यह बाजू में बाँधने के लिए बनता है। इस मे सुंदरता के लिए घुंडी या फुल्ली लगाते हैं।

जरबन या कमरकस—इससे स्त्रियाँ अपने लूगा (धोती) को कमर के पास बाँधती हैं।

जयतुआ या जिउत—क्वार के महीने में कृष्ण पक्ष की अष्टमी को जयतुआ का व्रत होता है। स्त्रियाँ इस दिन व्रत करती हैं। यह गले में पहनने के लिए बनाया जाता है।

अनंत—अनंत चतुर्दशी के दिन बाँह में पहनने के लिए यह बनता है, इस में चौदह गाँठ होती हैं।

बाल बनाने का काम

३७०. बाल बनाने का काम करने वाली जाति नाई या नाऊ कहलाती है। इन्हें नाऊ ठाकुर भी कहते हैं। मुसलमान लोग नाई को हज्जाम कहते हैं। स्त्री को नाइन या नाउन कहते हैं। नाई के निम्न हथियार होते हैं:—

३७१. छूरा—यह लोहे का होता है। इसी से बाल बनाते हैं। विलायती छूरे को अस्तुरा कहते हैं।

कैंची—यह भी लोहे की होती है। इससे बाल कतरते या काटते हैं।

नहन्नी—यह भी लोहे की होती है। इससे नँह (नाखून) काटते हैं इसका पिछला भाग कुछ टेढ़ा रहता है जिससे काँटा और कान की खूँट मैल) निकालते हैं। इसे एक बाँस की फोंफी में रखते हैं जो पोली होती है।

चिमटी—यह भी लोहे की होती है। यह धँसे हुए काँटों को पकड़ कर खींचने या पके बाल को उखाड़ने या नोचने के काम में आती है। इसी से इसे मोचना भी कहते हैं।

चमोटा या चमोटी—यह सिझाये (पकाये) चमड़े का टुकड़ा है छूरे को तेज करने के लिए उसे इस पर पहँटते हैं।

सिल्ली—यह एक बनाया हुआ पत्थर है जो बाहर से आता है। छूरे की धार गुठला जाने पर उसे इसी पर रगड़ते हैं जिसे सिल्लियाउब (सिल्लियाना) कहते हैं।

कंघी—बाल काटने के समय कैंची के साथ इसका प्रयोग होता है। यह टीन की होती है पर आजकल सैलोलाइड की कंघियाँ भी देहात में पहुँच गई हैं।

गुठली—यह आम की सूखी गुठली के छिलके का आधा भाग है। बाल काटने के बाद इसके सहारे सर की रूसी साफ की जाती है।

सीसा—यह मुँह देखने के काम में आता है। दरपन, (दर्पण) दरपनी या ऐना (आईना) भी इसे कहते हैं।

३७२. हथियारों की मरम्मत लोहार करता है। छूरा की धार खराब हो जाने पर उस पर लोहार के यहाँ सान रखाते हैं। धार बहुत अधिक मोटी होने पर छूरे को पिटवाते हैं। पिटाई के बाद औजार को पानी में बुझाते हैं इससे लोहे में

कड़ापन आ जाता है। इस क्रिया को **पानी देब** (देना) कहते हैं। सान रखने या पीटने से कभी-कभी धार झड़ जाती है; इसे **फूल झड़ब** (झड़ना) कहते हैं। फूल झड़ने पर छूरा बराबर से बाल नहीं बनाता। इसलिए सान रखाए हुए छूरे को पहले चमौटी पर रगड़ कर तब प्रयोग करते है।

३७३. छूरे से सारा बाल बनाने को **मूँड़ मूड़ब** (मूड़ना) या **सर घोटब** (घोटना) कहते हैं। केवल डाढ़ी बनाने को **डाढ़ी मूड़ब** (मूड़ना) कहते हैं। कान के बगल के बाल को छाँट कर छोटा करने और खत काटने को **कलम छाँटब** (छाँटना) या **काटब** (काटना) कहते हैं। इसे **खत काटब** (काटना) भी कहते हैं। माथ के बाल को गोलाई में बनाने को **खोंपा काटब** (काटना) या **काढ़ब** (काढ़ना) कहते हैं। सर के मध्य व तालु स्थान पर तेल सोखाने के लिए या किसी औषधि के लगाने के लिए बाल बनवा देते हैं जिसे **चाँद खोलाइब** (खोलाना) कहते हैं। बड़े-बड़े बालों को बराबर से रखने और उन्हे पीछे को फेरने को **पट्टा** कहते हं।

कख को **बगल** कहते हैं और काँख के बाल बनाने को **बगल बनाइब** (बनाना) कहते हैं। छूरे में जंग न लगे इसलिए इसे वर्षा के दिन में ऊनी कपड़े में लपेट कर रखते हैं। चमड़े की पेटी जिसमें नाई अपने औजार रखते है **किस्बस** या **किस्बत** कहलाती है।

६

गृहोद्योग (अ) पुरुषों से संबंधित

सुतली कातना

३७४. सन कातकर सुतली तैयार की जाती है। सुतली को बाध भी कहते हैं। कातने का कार्य **ढेरा** पर होता है ढेरा को **कतनी** भी कहते हैं। ढेरा लकड़ी का होता है। ढेरा **टिकुरी** का ही बड़ा रूप कहा जा सकता है। जिस प्रकार **टिकुरी** में सूत कातने के लिए लोहे को तीली लगी रहती है उसी प्रकार ढेरा में भी। **करा** (सन का लच्छा) तीली में बझा कर ढेरा चला दिया जाता है; चक्कर करने से करा में ऐंठन पड़ती जाती है। टिकुरी की फिरकी छोटी होती है लेकिन ढेरा की बहुत बड़ी। जिस प्रकार टिकुरी में सूत लपेटा जाता है उस ढंग से ढेरा में लपेटना असंभव है क्योंकि लपेट खुल जाय। लपेट खुले नहीं इसलिए इसकी फिरकी गोली तो अवश्य होती है पर उसमें दो पतली गढ़ी हुई लकड़ियाँ इस प्रकार लगी होती हैं कि उनसे गुणन का निशान बनता है। ये लकड़ियाँ लगभग एक बीता लम्बी होती हैं। सुतली एक दूसरे को काटते हुए ढंग पर इन लकडियों द्वारा बने हुए स्थान में लपेटी जाती है। इन लकड़ियों के मध्य में ही तीली रहती है और उसका ऊपरी भाग टेढ़ा रहता है। कते हुए बाध की **लुंडी** बनाकर उसे आवश्यकतानुसार **दोहरा-तेहरा** कर सकते हैं। बट देते समय उसे पानी से भिगोकर माँजते हैं जिससे मजबूती बढ़ जाती है दोहरे बाध को **दोकला** तथा तिहरे बाध को **तिकला** कहते हैं।

बैलों पर गल्ला लादने के लिए इसका थैला सदृश बोरा बनता है जिसे **पेटार** कहते हैं। सुतली से **चारपाई** बुनी जाती है। सुतली की रस्सी बनती है।

रस्सी बनाना

३७५. रस्सी को **रसरी** अथवा **लसरी** कहते हैं। मोटी रस्सी को **रस्सा** कहते हैं। रसरी के लिए **जेंवर** शब्द का भी प्रयोग होता है; किन्तु साधारणतः छोटी रस्सी के लिए ही यह व्यवहृत होता है। जेंवर शब्द रसरी की अपेक्षा अधिक ठेठ कहा जा सकता है। डोरी शब्द भी रसरी के लिए प्रयुक्त होता है किन्तु ठेठ बोली में इसका प्रयोग कम है। रस्सी जब बाँधने के काम में आती है तब उसे **बंधन** कहते हैं। रस्सी निम्न प्रकार से बनती है—

३७६. **जोइना या गूरही**—सन, पुआल या हरे सरपत को ऐंठ कर जब रस्सी का काम लेते हैं तब उसे जोइना या गूरही कहते हैं। इसमें बट नहीं होता है, काम चलाने के लिए केवल साधारण ऐंठन रहती है। छप्पर की मरम्मत के लिए परछथी बनाने में पुआल का जोइना प्रयोग किया जाता है। कूँड़ के मुँह पर गुल्ले को बाँधने के लिए सन की गूरही का प्रयोग होता है। गूरही लपेटने को गुरिहआइब (गुरिहआना) कहते हैं। गूरही द्वारा जो बंधन पड़ता है उसे गूरहन कहते हैं।

३७७. **सेल्हा या सेल्हुई रसरी**—रस्सी बटने के ध्यान से जब सन के लच्छों को ऐंठ कर रख लेते हैं तब उसे सेल्हा कहते हैं। सन की जितनी लच्छी एक बार में ऐंठन के लिए लेते हैं उसे करा कहते हैं। सेल्हा बनाने के लिए करा का एक टोंक या किनारा हाथ में होता है और दूसरा पैर के नीचे दबा रहता है। एक करा ऐंठ लेने पर उसमें दूसरा करा जोड़ देते हैं। इस प्रकार सेल्हा बनाते हैं। बने हुए सेल्हा को किसी चीज में लपेटते रहना चाहिए, इस दृष्टि से सेल्हवैया (सेल्हा बनाने वाला) चारपाई पर बैठ कर सेल्हा बनाता है और उसे चारपाई के पावे में लपेटता जाता है। इससे सेल्हा बनाने में सुविधा होती है। जब वह अपनी आवश्यकतानुसार सेल्हा तैयार कर लेता है तब वह एक दूसरी लकड़ी में उसे अलग लपेट लेता है जिसे लुँड़ियाइब (लुँड़ियाना) कहते हैं। इस प्रकार लुँडियाई रसरी को लुंडी कहते हैं। सेल्हा तैयार होने पर उसे दोहरा-तेहरा बट दे कर चाहे जितनी मोटी रस्सी बना ली जाय। रोजगारियों के सेल्हा बनाने का ढंग यह है कि एक छोटी लकड़ी में करा लगाकर लकड़ी को चक्कर देते हैं। लकड़ी घुमाने से करा में ऐंठन पड़ती जाती है और एक दूसरा आदमी करा में करा जोड़ता जाता है। लकड़ी घुमाने के लिए उसके दोनों किनारों को एक रस्सी से संबंधित करते हैं और फिर उस रस्सी को हाथ से पकड कर घुमाते हैं।

३७८ **बरी या बरुई रस्सी**—हाथ में दो करा एक साथ ले कर उसे पूरते या बटते हैं। इस प्रकार बरने (बटने) से जो रस्सी तैयार होती है इसे बरुई कहते हैं।

३७९. **भाँजी रस्सी**—सेल्हुई या बरुई रस्सी को दुहरा-तेहरा या दो बट-तिबट करने को भाँजब (भाँजना) कहते हैं। तीन बट को रस्सी अच्छी होती है। बटी हुई रस्सी को भाँजी रस्सी कहते हैं।

रस्सी के लिए कच्चा माल:

३८०. रस्सी बनाने के लिए जंगली चीजों में कुस, बेरूहल तथा मूँज मुख्य हैं; बोई गई चीजों में सन और पेटुआ है।

कुस—इसकी रसरी कम बनती है। कुश पानी में जल्दी सड़ता नहीं इसलिए गोड़िया या मल्लाह इसका प्रयोग करते हैं। इसकी पतली रस्सियाँ बरई पान का

भीट तैयार करने में लगाता है। पवित्र माना जाने के कारण इसे साधु अपने काम में लाते हैं। इसे भिगो कर तथा पीट कर कुएँ की रस्सी बनाते हैं।

बेकहल— यह पलास की **सोर** (जड़) है। इसकी भी रस्सी वर्षा के लिए अच्छी होती है क्योंकि यह कड़ी चीज होती है। गर्मी में इसका प्रयोग करने से हाथ छिल जाता है। वर्षा में यह मुलायम रहती है और सड़ती नहीं। वर्षा में पलास की पतली-पतली सोर काट लेते हैं। इन्हें **मुँगरी** (लकड़ी का एक औजार) से सूत खूनते हैं जिससे रेशे अलग हो जाते हैं फिर उसके **करा** को अलग कर लेते हैं। यदि आवश्यकता हुई तो गीली दशा में ही रस्सी बना ली जाती है नहीं तो उसे सुखा कर रख लेते हैं और जब रस्सी बनाना होता है तब भिगोकर काम मे लाते हैं। मुसहर बेकहल की रस्सियाँ बनाकर बेचते है। बेकहल का **सिकहर** मजबूत बनता है। इसे टाँग कर उसमें कुछ खाने-पीने का सामान रखते हैं।

मूँज—सरपत के **जुट्टे** मे से मूँज निकाली जाती है। मूँज का भुआ वाला भाग निकाल कर मूँज सुखा लेते हैं। जब रस्सी बनानी होती है तब उसे कूटकर पानी में भिगो देते हैं और नरम हो जाने पर **रसरी बरते** हैं।

मूँज की रसरी सन के बराबर मजबूत नहीं होती, यह **रूखर** भी होती है। यह पवित्र मानी जाती है इसलिए विवाह-मृत्यु आदि सभी संस्कारों मे इसका उपयोग होता है रूखर होने से इसमें बट कड़ा पड़ता है। इसकी रस्सी चरखे के **चमरख** तथा **फटके** (रूई धुनने की धनुही) के लिए अच्छी होती है। सुतरी की भाँति यह भी काती जाती है इसके बाध से चारपाई बुनी जाती है।

सन—सबसे अधिक उपयोग में आने वाला सामान यही है। इसकी रस्सी हर एक काम के योग्य होती है और इसके बनाने मे सुविधा भी होती है। प्रत्येक किसान अपने काम भर का सन बोता है। इसकी हर ढंग की रस्सी बनती है।

पेटुआ—इसके छिलके की सन की भाँति रस्सी बनती है।

बड़ी रस्सियाँ :

३८१. **उबहनि**—कुएँ से पानी भरने के काम में आती है।

बरहा—ढेंकुर और चरखी चलाने में इसका प्रयोग होता है।

नार—यह पुर तथा घर्रा मे काम देता है। दस हाथ लंबे नार को एक **पयँड़** कहते हैं। एक नार दो पयँड़ लंबा होता है।

छोटी रस्सियाँ :

३८२. **दवँरी**—अनाज की दवाँई के समय यह रस्सी बैलों के गले में पड़े गेराँव को सम्बंधित करती है।

गेराँव—पशुओं को बाँधने के लिए उनके गले में एक रस्सी पहना दी जाती है जिसे **गराँव** या **गेराँव** कहते हैं।

पगहा—पशु बाँधने के काम में आने वाली रस्सी का यह नाम है। इसका संबंध गेराँव तथा खूँटा से होता है।

खूरा या खुराँस—भैंस के पैर मे खुरी के पास एक रस्सी बाँध कर उसे खूँटे में बाँध देते हैं।

नाथी—बैल के नाक में पहनाई जाने वाली रस्सी नाथी कहलाती है। बैल नाथ दिए जाने पर शरारत नहीं कर सकता है। पौला की रस्सी भी नाथी है।

बींड़ि—यह बिड़िहा बैल तीन बैल वाली गाड़ी मे सब से अगला बैल) के कंधे पर लगाई जाने वाली रस्सी है।

पेटी—यह बीड़ वाले बैल के पेट के चारो ओर रहती है इसका संबंध बीड़ से होता है।

नाधा—हर नाघने के समय जुआठा और हरिस मे संबंध स्थापित करने के लिए यह काम में आती है।

जाबा—बैल के मुँह पर रस्सी की एक जाली बना कर लगाते हैं इससे जबड़े खुल नहीं सकते और बैल कुछ खा नहीं सकता।

छोर—बरहा के छोर (किनारे) पर कूँड़ बाँधने के लिए यह छोटी रस्सी है।

बरही—यह रस्सी हेंगा मे बाँधी जाती है। यह बरहा से छोटी होती है।

फाना—उबहनि के टोंक पर घड़ा फानने (बाँधने) के लिए रस्सी का एक गोल फंदा लगा रहता है।

डारा—यह कपड़े रखने के लिए घर में बाँधी जाने वाली रस्सी है।

ओरवन—किसी बर्तन के ओर (किनारे) या मुँहकड़े पर उसे लटकाने के लिए जो रस्सी लगाई जाती है।

दवन या दवनि—यह बेंड़ी में लगाई जाने वाली रस्सी है।

अरदावनि या अरदवान या ओरदावन—वह रस्सी जो चारपाई बुनने के आरंभ में गोड़वारी की ओर बेंड़े बेंड़ लगाई जाती है। इसे मैनी भी कहते हैं।

उनचन या ओनचन—वह रस्सा जो गोड़वारी की ओर चारपाई की बुनावट उनचने (कड़ी करने) के लिए लगाई जाती है।

जोतो—यह तरजुई (तराजू) को डाँड़ी से संयुक्त करती है।

चारपाई बुनना

३८३ चारपाई को देहात में खटिया कहते हैं। इसे बढ़ई बनाता है। यों तो बढ़ई ही चारपाई बुनते हैं किन्तु देहात में और भी लोग इस कला को जानते हैं अतः यह सर्व साधारण का उद्योग हो गया है।

चारपाई के सिरहाने और पैताने की लकड़ियों को सीरो या सिरई तथा दोनों बगल का लकड़ियों की ' कह इस प्रकार सिरई-पटा मालकर

चारपाई का घेरा पूरा बनता है। चारपाई की गोड़वारी का भाग नहीं बुना जाता अतः जहाँ तक बुनावट करनी होती है वहीं पर दोनों पाटियों से सम्बधित करते हुए बाध लपेटते हैं जिसे अरदावनि या अरदवान कहते हैं। पैताने की ओर बुनावट कड़ी करने के लिए जो रस्सी लगाई जाती है उसे उनचन या ओनचन कहते हैं। ओनचन दो प्रकार की होती है एक सादी दूसरा मोगली। सादी उनचन में पैताने के सीरो से अरदावनि के पास छेद म से रस्सी सीधे सीधे आती जाती है। मोगली उनचन में रस्सी सूराख में से निकल कर सीधी सीरो में न जाकर उनचन की रस्सी को फँसाती हुई जाती है। यह उनचन जल्दी ढीली नहीं होती है, पर इसमें रस्सी अधिक लगती है।

३८४. बुनावट तीन प्रकार की होती है—(१) चौकली (२) छकली (३ कियारीदार। चौकली में चार-चार बाध उठते और नीचे जाते हैं और छकली में छः-छः बाध। जितने बाध एक बार मे उठते और दबते है उन्हें सोक कहते हैं। चारपाई की बुनावट के मध्य में भी एक चौक बनता है। कियारादार बुनावट में चारपाई में कियारी बनी हुई जान पड़ती है यह बुनावट पलँग में ही की जाती है।

बुनते समय कभी-कभी बाध ऊपर-नीचे हो जाने से ऐंठन पड़ जाती है जिसे बेउन्ही कहते हैं। बेउन्ही पड़ जाने पर चारपाई की बुनावट साफ नहीं आ सकती। कभी-कभी बुनावट तिरछी होने लगती है जिसे तिरकोनी बुनावट कहते हैं; यह भी दोख (दोष) है, इसे बुनते समय ही ठीक कर लिया जाता है। बुनावट बिगड़ जाने पर उसे खोलने को उधेरब (उधेड़ना) कहते हैं।

मंगलवार को चारपाई बुनना दोख (दोष, मानते हैं। इसके अतिरिक्त पचखा (पाचक), मलमास (तीसरे वर्ष का वह चद्रमास जो अधिक मास होता है) तथा खरमास चैत और पूस के महीने) में बुनना वर्जित है। भादों में भी चारपाई नहीं बुनी जाती है।

झौआ बुनना

३८५ झौआ गृहस्थी के बड़े काम का है। पशुओ को भूसा या चारा डालने के लिए यह काम में आता है। इसके भीतरी भाग में पीली मिट्टी और गोबर मिलाकर लीप देते हैं जिससे इसमें अनाज वगैरह रखकर ढोने में बड़ी सुविधा होती है। इसके छोटे रूप को भौली कहते हैं। बोउनहरि (खेत बोने वाली) इसी में अनाज भर कर हर के पाछे बेंगा छीटती चलती है।

३८६ झौआ झाऊ (एक जंगली पौधा जो नदियों के किनारे पाया जाता है) का अच्छा बनता है पर झाऊ के स्थान पर रहठा की पतली-पतली डाँठी जिसे सार या वाती कहते हैं काम में आती है। बहुत पतली कंछियों को टिल्ठी कहते हैं। इन का भी इसमें उपयोग होता है।

३८७. झौआ बनाने के लिए सार और टिल्ठियों को भिगो देते हैं; इनके मुलायम पड़ जाने पर बनाना शुरू करते हैं। पहले चार या पाँच सार बिछाते हैं यही ताने काम देता है फिर टिल्ठी की एक नोक हँसुआ से चोख या चोखार (नोकीली) करके बुनना आरम्भ करते हैं। बुनाई गोलाई मे होती है। क्रम से एक सार नीचे और एक ऊपर करते हुए साधारण बुनावट की जाती है। एक टिल्ठी के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी लगाते जाते हैं। बुनाई समाप्त होने पर ऊपरी भाग पर कई टिल्ठियों की अवँठ मारते हैं जिसे मींढ़ब (मींढ़ना) और उस अवॅठ को मींढ़ी कहते हैं। मींढ़ी मार देने पर झौआ पूरा हो जाता है। इसकी बुनावट उधिरती खुलती) नहीं। झौआ मजबूत करने के लिए झौए की पेंदी से मींढ़ी तक रस्सी से नाथ (सी) देते हैं, नाथने की क्रिया सूजा की सहायता से की जाती है। इतना करने पर झौआ पोढ़ (पुष्ट) हो जाता है।

खाँचा-खाँची बुनना

३८८. खॉचा सामान ढोने के लिए सब से बड़ा टोकरा है। इसके द्वारा भूसा ढोने में सुविधा होती है। भड़भूँज इससे सूखी पत्तियॉ ढोता है।

३८९ खाँचा बनाने के लिए रहठा की पतली-पतली टहनियॉ बेराई जाती हैं। इन्हे बाती या सार कहते हैं। जितना बड़ा खाँचा बनाना होता है उतनी ही अधिक बातियाँ चाहिए। खॉचा के छोटे रूप को खाँची कहते हैं। सोलह गाही (पाँच) बातियों से खॉची बनती है इससे अधिक बातियाँ होने पर खॉचा बनता है। बातियों की संख्या सदैव जूस होती है। बत्तीस बातियों का बड़ा खाँचा बनता है। बातियों को पहले एक रात पानी में भिगो देते हैं ताकि वे नरम पड़ जायें। कुल बातियों को दो भागों मे बाटते हैं। फिर दोनों को पाँच-पाँच बराबर भागों में बाटते हैं। इस प्रकार एक समूह मे कुल बातियों का दसवाँ भाग हो जाता है। इस समूह को चौक कहते हैं। चौक पूरने की भॉति बुनाई की जाती है। पॉच चौक लेकर बुनाई आरंभ करते हैं। खॉचा की पेंदी में सूराख रहता है और उसके चारों ओर यही चौक रहता है। पेंदी ही मध्य भाग है। बुनावट साधारण है। एक बार मे जितनी बातियाँ दबाई जाती हैं उन्हें एक संक कहते हैं। सोकों के अलग करने को सोक फोरब (फोरना) कहते हैं। तदनन्तर पाँच चौकों का एक अन्य चौक बनाते हैं और दोनों चौकों को एक दूसरे पर रख कर बुनाई करते हैं। खाँचे को अपनी गोलाई में लाने के लिए बने हुए चौक के बीच में एक आदमी खड़ा हो जाता है और तीन आदमी चौक के किनारों को उठाते हैं। इस प्रकार खॉचा अपने आकार में हो जाता है। किनारे पर बाँस की कइन द्वारा मेंड़रा बना देते हैं। मेंडरा बाँधने से बुनावट निम्मन (दृढ़) होजाती है।

३९०. बाँस की भी खॉची बनती है। इस खाँची के लिए कइन को फाड़कर

सुखा लेते हैं फिर आवश्यकता पड़ने पर भिगोकर बनाते हैं। इसकी बुनावट भौए की भाँति होती है। इसमें ताने के लिए अड़्स या अँकोल्ह की कड़ी व सीधी डालों का प्रयोग करते हैं। यह खाँची मिट्टी, खर-कतवार और गोबर फेंकने के काम में आती है।

गोनरी बुनना

३६१. गोनरी को पुआल की चटाई कह सकते हैं। इसके बनाने के लिए जड़हनी धान का पुअरा या पोवरा चाहिए क्योंकि वह लम्बा होता है। जो धान पीटा गया हो उसी का पुअरा काम दे सकता है क्योंकि वह सीधा होता है और उसमें टूटा-टाटा पुअरा नहीं होता। गोनरी बनाते समय इस पुअरा को पुनः साफ कर लेते हैं।

३६२. जितनी लम्बी गोनरी बनानी होती है उसकी दूनी बड़ी रस्सी लेकर उसके मध्य भाग को एक खूँटी में बाँध देते हैं। फिर इस दोहरी रस्सी को दूसरी खूँटी के किनारे तक ले जाते समय उसमें पुअरा की गलिया (अंगुष्ठ और तर्जनी से जितना पुअरा पकड़ा जा सकता है) अटकाते जाते हैं। जब पूरी रस्सी पर गलिया लग जाती है तब रस्सी को खूँटी में बाँध देते हैं। गलिया इस प्रकार बाँधते (अँटकाते) हैं कि गिरती नहीं, दोनों रस्सियों के बीच में दबी रहती है। इतना करने के बाद बुनाई आरम्भ होती है। प्रत्येक गलिया को दो बराबर भागों में बाँटते हैं यही सोक कहलाता है। इस प्रकार सोक फोर (फोड़) लेने पर एक सोक को दूसरे सोक से बझाते हैं। बुनावट का ढंग साधारण है, अर्थात् एक सोक नीचे और एक ऊपर यही क्रम रहता है पुअरा घट जाने पर और जोड़ लेते हैं लेकिन पहले से ही पुअरा की लम्बी लच्छियाँ लेते हैं क्योंकि जोड़ वाली गोनरी कमजोर होती है और जोड़ पर टूट जाती है। बुनते समय पानी का छिड़काव करते हैं क्योंकि पुअरा आरर चीज है मोड़ने से टूटने का डर रहता है। बुनाई समाप्त होने पर अवँठि (किनारे) पर चोटी की भाँति गाँछते हैं जिसे मेंढ़ा मारब (मारना) कहते हैं। अब चटाई तैयार हो जाती है। देहात में उठने बैठने तथा लेटने के लिए इसका प्रयोग होता है। यह एक प्रकार से गद्दे का काम देती है। जाड़े के लिए यह बहुत अच्छी वस्तु है। एक गोनरी लगभग एक साल चलती है।

गृहोद्योग (आ) स्त्रियों से सम्बन्धित

मिट्टी के सामान बनाना

३६३. चूल्हि और चूल्हा — इसे बनाने के लिए कनई (गड़ही या पोखरी की मिट्टी) काम में लाई जाती है। इस मिट्टी को गीली दशा में लाते हैं इसीलिए

इसे गिलई भी कहते हैं। फिर इसमें धान की पुरेसी या पोरसी (पुआल का चूर) अथवा धान की भूसी डाल कर इसे खूब सानते हैं। इसके बाद प्रायः डेढ़ हाथ लम्बा मिट्टी का पाटा डालते हैं। चूल्हे का पाटा लगभग एक बित्ता और चूल्हि का पाटा लगभग सवा बित्ता चौड़ा होता है। पाटे को पानी से चिक्नाते हैं। प्रायः स्त्रियाँ एक साथ आठ-दस पाटे डाल लेती हैं जिससे बार-बार उनकी आवश्यकता न पड़े।

२६४. जब पाटा कुछ सूख कर कटुआय (कठोर हो) जाता है तब वह तोड़ा (मोड़ा) जाता है। एक हाँड़ा को औंधा कर उसके चारों तरफ पाटे को लपेट कर उसे अर्द्धवृत्ताकार किया जाता है। इस रूप में इसे अइला कहते हैं। प्रत्येक अइले से एक-एक चूल्हा बन जाता है। पाटा तोड़ने के बाद उसे मिट्टी से पोत कर चिक्ना कर दिया जाता है। अब एक चूल्हा तैयार हो गया। चूल्हि बनाने के लिए दो अइलों को आमने-सामने रक्खा जाता है। ऊपर से अँग्रेजी 'टी' के आकार का मिट्टी का एक पूता रख कर मिट्टी से जोड़ कर चिक्ना दिया जाता है। इस प्रकार चूल्हि के दोनों अइलों को एक पूता द्वारा जोड़ दिया जाता है। सामने की ओर चूल्हि की दुआरि (दरवाजा) रहती है। इसे चूल्हि का मोहाना भी कहते हैं। चूल्हि पर एक साथ दो बर्तन चढ़ाए जाते हैं किन्तु चूल्हा पर एक ही। विशेष अवसर पर तीन-चार अइले की बनी चूल्हि प्रयोग में आती है।

२६५ डेहरी, कोठिला तथा मुडुकी—इनमें अनाज रक्खा जाता है। इनके लिए भी मिट्टी, पुरेसी डाल कर, तैयार की जाती है। डेहरी बनाने के लिए पहले भूमि पर मिट्टी का एक गोल चाक (चक्र) बनाते हैं फिर इसके किनारे पर मिट्टी का इतना ऊँचा गोल घेरा उठाते हैं जितना कि सँभल सके। दूसरे दिन फिर इसी को और ऊँचा बनाते हैं। जितनी ऊँची डेहरी की आवश्यकता होती है उतनी ऊँची डेहरी बना कर अन्त में मुँह को सँकरा बनाते हैं। डेहरी प्रायः अढ़ाई-तीन हाथ ऊँची होती है। कुछ स्त्रियाँ पेंदी से आधा भाग बना लेने पर आधे को अलग बनाती हैं; घर में जहाँ डेहरी रखनी होती है वहाँ पहले आधे को रख कर ऊपर से पिछले आधे को रखती हैं। ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि उसके ले जाने में सरलता हो। नीचे के आधे भाग में भूमि से प्रायः हाथ भर की ऊँचाई पर डेहरी का गोल छेद होता है जिसे मोहान या अवाँन कहते हैं। ऊपरी भाग को बन्द करने के लिए एक गोल पिहान (ढक्कन) बना होता है।

कोठिला कोठिली डेहरी का बड़ा रूप होता है। कुछ लोग गोल कोठिला बनवाते हैं, कुछ लोग चौकोर। गोल कोठिला बनाने के लिए पहले पेंदा तैयार कर लिया जाता है इसके बाद अलग से प्रायः हाथ-हाथ भर ऊँचे गोले छल्ले तैयार किए जाते हैं जिन्हें पर्झाँड़ कहते हैं। जहाँ कोठिला रखना होता है वहाँ पहले पेंदा रखकर ऊपर से पर्झाँड़ों को एक के ऊपर एक रखकर जोड़ देते हैं। अन्तिम

पताँड मुँह की ओर कुछ सँकरा रहता है इसी पर पिहान रक्खा जाता है। डेहरी की तरह इसमें भी अवान रहता है।

चौकोर कोठिला बहुत बड़ा होता है। इसे बनाने के लिए अलग-अलग पाटा बनाते हैं। जहाँ इस कोठिला को रखना अभीष्ट होता है वहाँ पहले चौकोर पेंदा रख कर ऊपर से एक-एक पाटा जोड़ते जाते हैं जिस प्रकार कि ईंटों की जोड़ाई होती है। ऊपर चौकोर पिहान से मुँह बन्द किया जाता है। इसका नीचे का अवाँन कुछ बड़ा रहता है। कोठिला को भीतर पोत कर चिकना कर देते हैं। कहीं-कहीं इन में गल्ले के अतिरिक्त गुड़-भेली-शक्कर भी रखते हैं।

स्त्रियों का ऐसा विश्वास है कि कोठिला या डेहरी का अवाँन खुला नहीं रहना चाहिए, क्योंकि खुले अवाँन वाली डेहरी खियानत (कमी) का कारण होती है।

भुड़की डेहरी का छोटा रूप है।

३६६. बोरसी—हर एक गृहस्थ के घर आग रखने के लिए यह रहती है। इसे बनाने के लिए एक बड़ी हाँडी को औंधा कर ऊपर से मिट्टी छोप देते हैं, फिर इसे चिकना देते हैं। मिट्टी सूख जाने पर स्वतः अलग हो जाती है; यही बोरसी है।

सूत कातना

रूई तूमना :

३६७. रूई की प्यूनी (पूनी) बनाने के लिए यह आवश्यक है कि रूई के रेसे (रेशे) एक सीध में कर लिए जायँ, इस क्रिया को तूमब तूमना या निकियाइब (निकियाना) कहते हैं। इनमें दूसरा शब्द ही अधिक प्रचलित है। रूई निकियाने के लिए थोड़ी रूई बाएँ हाथ में ले कर उसे बाएँ हाथ के अँगूठा तर्जनी तथा मध्यमा (अर्थात् अँगूठे की ओर से तीन अँगुलियों) से पकड़े फिर दाहिने हाथ की इन्हीं अँगुलियों से धीरे-धीरे रूई के रेशों को फैलावे। इस प्रकार फैलाते फैलाते रूई एक लच्छा के रूप में हो जाती है। फिर इस लच्छे को चार-चार अँगुल के टुकड़ों में तोड़ कर एक के ऊपर एक तहावे। तहा कर पुनः उसी भाँति इन्हें तूमे। इस प्रकार तीन-चार तूमने से रूई के रेशे रेशे अलग हो जाते हैं। आखिरी तुमाई में यदि कहीं-कहीं फुटकी (कचरा या रूई की गाँठ) मिले तो उसे तूमते समय निकाल दिया जाय इस क्रिया को फरियाइब (फरियाना) कहते हैं। फरियाने के पश्चात् रूई निखर जाती है और रेशे रेशे अलग हो जाने से वह फूल उठती है अब इस तैयार हुई रूई का फाहा कहते हैं। इसी प्रकार रूई का बहुत सा फाहा बना कर उसे एक बर्तन में तह के ऊपर तह रखते हैं। रूई तूमते समय इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि रेशे खिंचने से टूटे नहीं, तूमते समय रूई का रुख आड़े आड़े होना चाहिए।

रुई धुनना तथा पूनी बनाना :

३९८. रुई जिससे धुनते हैं उसे **फटका** (धनुही) कहते हैं यह धनुष के आकार का होता है। फटका लकड़ी या बाँस दोनों चीजों का बनता है। बाँस तीन हाथ लम्बा तथा एक इंच मोटा होना चाहिए; धनुष के आकार में बनाने के लिए इसके दोनों छूरों (किनारों) पर बाढ (गड्ढा) बनाते हैं फिर उन्हें झुका कर एक रस्सी से बाँध कर रख देते हैं। कुछ दिन रखने से ये छूर झुकी हुई अवस्था में हो जायँगे। फिर उसमें रस्सी के स्थान पर ताँत लगा देते हैं। ताँत को बबूल, सेम, गेंदा, बेर, अरुस, बेल की पत्ती अथवा दूब से रगड़ कर थोड़ा माँजते हैं इससे ताँत में रुई चिपकती नहीं और यह रुई को भली-भाँति काटती है। ताँत की जगह पर मूँज की रस्सी भी बटकर लगाते हैं किन्तु यह कमजोर पड़ती है।

३९९. रुई धुनने के लिए उसे किसी फूल की थाली की पेंदी पर रखकर धुनते हैं; जब अधिक धुनना होता है तो उसे साफ जमीन या सरकंडे के टटरे पर धुनते हैं पर थाली पर ही धुनने की अधिक प्रथा है। जितनी रुई धुनने के लिए एक बार में रक्खी जाती है उसे **रास** (राशि) कहते हैं। रुई में **सीना** (सीड़न) न होना चाहिए।

धनुही को बाएँ हाथ में पकड़ते हैं और ताँत को दाहिने हाथ के अँगूठे तथा तर्जनी से। धनुही ढालूदार रुख में रक्खी जाती है। ताँत के निचले भाग या उससे कुछ और आगे के भाग से रुई धुनी जाती है; मध्य भाग के पिछले भाग का ताँत दोनों अँगुलियों की चुटकी से पकड़ा जाता है और इसे इस प्रकार खींचकर छोड़ा जाता है कि ताँत से भन-भन की ध्वनि निकलती है। ताँत ढीली न होनी चाहिए नहीं तो उसके झटके में तेजी न होगी। अँगुलियों में चमड़े का **अँगुरताना** पहनते हैं। अधिक रुई धुनने के लिए **बेलनी** (लकड़ी का एक हथियार) का प्रयोग किया जाता है। बेलनी से ताँत को अपनी ओर इशारे से खींच कर छोड़ दिया जाता है। धुनने में इस बात पर ध्यान रक्खा जाता है कि रुई के रेशे अलग-अलग हो जायँ। अधिक धुनने से रुई के रेशे एकत्र हो जाते हैं जिसे **गुमटियाव** (गुमटियाना) कहते हैं।

प्यूनी (पूनी) बनाने के लिए रुई को किसी फूल की थाली की पेंदी पर रखते हैं और रुई के निचले भाग पर एक **सरफुलाही** या **सरई** (सरकंडा का ऊपरी पतला भाग) रखकर रुई को नीचे से ऊपर की ओर लपेटते हैं। लपेटने के समय बहुत जोर से न दबाना चाहिए। पूनी जितनी मोटी चाहे बना ले। फिर ऊपर से कागज लगा कर एक डोरे से बाँध दे। पूनी का वृत्त लगभग ४ (चार) इंच होता है और इसकी लम्बाई भी लगभग इतनी ही होती है।

टिकुरी से सूत कातना :

४००. टिकुरी में दो मुख्य भाग होते हैं—एक उसकी **सराई** जो लोहे की होती है, दूसरा उसकी **फिरकी** जो लकड़ी की होती है। सराई लगभग बारह

अंगुल लम्बी होती है और यह ऊपर की ओर उत्तरोत्तर नोकीली होती जाती है। सराई का निचला भाग भी नोकीला होता है और यह टिकुरी चलाते समय लकड़ी की एक छोटी कटोरी में होता है जिसे ढोकिया कहते हैं।

सूत कातने के समय बाएँ हाथ में पूनी होती है और दाहिने हाथ में टिकुरी। सूत कातते समय अँगुलियों का पसीना सूत में न लगे इसलिए अँगुलियों में चूने की बुकनी लगाते हैं। इससे सूत निकालने में सुविधा होती है और सूत गंदा भी नहीं होता है। सूत को टिकुरी में लपेटते जाते हैं जिसे घोंटाइब (घोंटाना) कहते हैं। सूत में ऐंठन कम होने पर नरम सूत तथा अधिक होने पर खर सूत कहते हैं। अधिक ऐंठन पड़ने पर सूत में गुरची पड़ जाती है।

चरखा कातना:

चरखे के विभिन्न अंग इस प्रकार हैं—

४०१. **मूड़ी**—यह एक गोली मोटी लकड़ी है इसके दोनों ओर पहिया के आकार की पटरियाँ लगती हैं। मूड़ी के बीच में धुरा रहता है।

कँवरी—मूड़ में लगी हुई पटरियों की संख्या सोलह होती है इन्हें कँवरी कहते हैं।

अवाल—मूड़ के दोनों ओर की पटरियों के ऊपरी भाग को बाध द्वारा संबंधित कर देते हैं। इस बाध को अवाल कहते हैं।

माल्ह—अवाल के ऊपर से एक बटा हुआ डोरा रहता है जो तकुए से संबंधित रहता है; इस डोरे को माल्ह कहते हैं।

हथेली—चरखे को हाथ से घुमाने के लिए एक लकड़ी लगी होती है; इसे ही हथेली कहते हैं।

खूँटा—मूड़ी के दोनों ओर दो खूँटे होते हैं जिनके सहारे मूड़ी वाला भाग लगा रहता है ये खूँटे लकड़ी की एक पिढ़ई में गड़े रहते हैं।

पिढ़ई—चरखे में दो पिढ़इयाँ होती हैं. एक पिढ़ई में मूड़ी वाला भाग रहता है दूसरी पिढ़ई में. जो उससे छोटी होती है, तकुआ वाला भाग होता है।

तकुआ—यह लोहे की सलाई है इसी के द्वारा सूत कतता है।

चमरख—तकुआ रखने के लिए आगे वाली पिढ़ई पर दो खूटियाँ गड़ी रहती हैं—इन खूटियों में मूँज को बट कर लगाते हैं, जिसे चमरख कहते हैं। तकुआ चरमख के बीच से चलता है।

सूत अटेरना:

सूत कत जाने पर उसे बाँस के बने परेते पर उतारते हैं।

जाँत पीसना

४०२. जाँत या जाँता गेहूँ. जौ. चना मटर आदि पीसने का यंत्र है। जाँत गाड़ने के लिए सब से पहले जमीन में एक किला या किल्ला (लकड़ी की खूँटी) गाड़ते

हैं। फिर इस किल्ले के चारो ओर गोनाई में एक छोटा सा चबूतरा बनाते हैं जिस पर जाँत रक्खा जाता है। इस चबूतरे की परिधि जाँत की परिधि के बराबर होती है और इसकी ऊँचाई लगभग तीन इंच होती है। इस गोले चबूतरे को **मेड़री** कहते हैं। मेड़री से जाँत की स्थिति ऊँची हो जाती है जिससे जाँत के पीसने में सुविधा होती है। मेड़री के आस-पास स्वच्छता के लिए गोबरी से लीपते हैं जिसे **गोबरियाइब** (गोबरियाना) कहते हैं वर्षा म मेड़री पर भुकुड़ी की तरह मैल जम जाती है इसे **लिभरी** कहते हैं। जाँत के ऊपरी पल्ले को **उपरौटा** और नीचे के पल्ले को **तरौटा** कहते है। उपरौटा चलाने के लिए इसमे लकड़ी का एक **हथवड़** या **जुआ** लगाते हैं। उपरौटे के बीचो-बीच पत्थर का कुछ भाग नाली के रूप म कटा रहता है, इसी में हथवड़ बैठाया जाता है। हथवड़ का वह भाग जो हाथ से पकडा जाता है **मुठिया** कहलाता है, यह उठा रहता है। किल्ले के स्थान पर जाँत के दोनो पल्लों मे तथा हथवड़ से सूराख रहता है किल्ला इन सूराखों से होता हुआ हथवड़ के बाहर निकला रहता है। किल्ला मध्य में होने से जाँत को यथा स्थान रखता है।

४०३. पिसाई के कार्य के लिए जाँते को छेनी से छीना जाता है जिसे **कूटब** (कूटना) कहते हैं। जाँत कूटने पर जो निशान बनता है उसे **दाँत** कहते हैं। जाँत पीसते समय एक बार मे जितना अनाज पीसने के लिए डाला जाता है उसे **झोंक** या **झोंका** कहते हैं। झोंक कम पड़ने पर **पिसान** या **आटा** महीन निकलता है और झोंक अधिक पड़ने पर मोटा। पिसान को बटोर कर **उठा** लेते हैं। जाँत मे अंतिम झोंक का कुछ न कुछ भाग रह जाता है। अत उसको पिसाई के लिए यह आवश्यक है कि कुछ खडा अनाज और डाला जाय। गेहूँ म.ीन (अच्छा) अनाज है इसलिए इसके पीसने पर जौ आदि मोटा अनाज डाल कर पिसाई समाप्त करते हैं इस क्रिया को **निहारब** (निहारना) या **निघारब** (निघारना) कहते हैं। आटा चालने पर जो छिलका निकलता है उसे **चोकर** कहते हैं, चोकर डालकर पीसने को **चोकर निहारब** कहते हैं। पिसाई लगातार न होने पर जाँता की गर्मी कम हो जाती है। इसे **ओ.रब** (ठंडा होना) कहते हैं। इस प्रकार जाँत को ठंडा करने को **ओहराउब** (ओहराना) कहते हैं। ओहरा ओहरा कर पीसने से परिश्रम कम लगता है पर समय अधिक लगता है। जाँत पीसनेवाली को **पिसनहरि** कहते हैं। पीसने के कार्य को **पिसाई** कहते हैं। पीसने के लिए दी गई मजदूरी को **पिसौनी** कहते हैं। **पिसाई** शब्द भी इस अर्थ में प्रयुक्त होता है। पिसनहरि के बैठने के लिए जाँत के पास मिट्टी का आसन बना रहता है जिसे **ओटा** कहते हैं। ओटा न रहने पर **मचिया** या **मोरा** पर बैठते हैं। गेहूँ मसीन (ओद) रहने पर पिसाई भली-भाँति नहीं होती है। जब चोकर में कुछ गूदा लगा रहता है। तब उसे **चोक.ी** कहते हैं। जौ का पिसान

चालने पर जो मोटा दरवर अंश निकलता है उसे दरिया कहते हैं और जौ के छिलके को भूसी कहते हैं।

चाकी-चकरी दरना

४०४. चाकी या चकरी अनाज दरने का यंत्र है। इसमें चना, मटर, दाल, सरसों आदि दरी जाती है। जाँते की भाँति यह भी गाड़ी जाती है परन्तु बिना गाड़े भी इसका प्रयोग होता है। गाड़ी हुई चाकी को गड़उवा तथा इधर-उधर उठा कर ले आई जाने वाली को उठउवा (उठाई जाने वाली) चाकी कहते हैं। गड़ी चाकी को मान कहते हैं पर यह उन्हीं के पास होती है जिन्हें दरने का काम अधिक करना पड़ता है।

चाकी में भी तरौटा उपरौटा होते हैं। इसमें हथवड़ नहीं होता। इस में एक किनारे पर एक छोटा गड्ढा रहता है जिसमें लकड़ी की एक खूँटी बैठा (जड़) देते हैं यही खूटो पकड़ कर चाकी चलाई जाती है। किल्ला जब जमीन में नहीं गड़ा रहता तब वह तरौटा के मध्य के सूराख में कस कर ठोंक दिया जाता है। जितना अनाज एक बार में दरने के लिए डाला जाता है उसे झोंक कहते हैं।

४०५. अरहर दरने पर दो टुकड़ा में हो जाती है। इन टुकड़ों को दाल कहते हैं। दाल दर जाने पर उसे दलझन्ना से झारते हैं। झारने से दाल और कराई (दाल का छिलका) अलग हो जाती है। फिर दाल को दुबारा झारने पर उसमें मिली हुई चूनी भी अलग हो जाती है। चूनी के बड़े टुकड़ों को खड़हुला तथा झान-झान (बहुत छोटे) टुकड़ों को किरखुन कहते हैं। चूनी की रोटी बनाकर खाते हैं।

उरद और मूँग की धोई दाल को धोइया कहते हैं। उरद के दाल की कराई सूखने पर चिगुर कर छोटी हो जाती है और उसी में चूनी छपटी रहती है। इस प्रकार की कराई को चुइयाँ कहते हैं।

व्यापार की दृष्टि से जिस स्थान पर दरने का काम होता है उसे दराना कहते हैं। सरसो दरने के लिए तेली चाकी का ही प्रयोग करते हैं।

दाना भूँजना

४०६. यह कार्य भड़भूँजे का है पर स्त्रियाँ भी अपनी आवश्यकतानुसार दाना भूँज लेती हैं। दाना भूँजने के लिए गगरी या हाँड़ा के नीचे वाला आधा भाग काम में आता है इसे खपड़ी कहते हैं। इसे चूल्हे पर रख कर इसमें बालू डाल कर गरम करते हैं फिर जो दाना भूँजना होता है उसे इसी में डालकर भूँजते हैं। भूँजते समय किसी लकड़ी से चलाते जाते हैं। इस लकड़ी को चलोनी कहते हैं। भूने हुए अन्न को दाना, चरवन या चबैना या भुजैना कहते हैं। दाना करने को

दनाव (दनाना) कहते हैं। साधारणतः निम्न प्रकार के दाने-भूँजे जाते हैं :—

जोन्हरी का लावा—जोन्हरी का कच्चा दाना भूनने पर जो दाने फूट कर खिल जाते हैं इन्हें लावा तथा जो नहीं खिलते उन्हें ठोरा या ठुर्री कहते हैं।

मटर और अरहर का फुटहरा—मटर और अरहर भूनने पर फूट जाती है इसीलिए इस दाने को फुटहरा कहते हैं मटर भून करके उसका आटा तैयार करते हैं। इस आटे को मकुनी का आटा कहते हैं।

जौ की बहुरी—बहुरी तैयार करने का निम्न ढंग है। जौ को पानी में रात भर भिगो देते हैं। सबेरे उस जौ को काँड़ा में कूट कर भूसी अलग कर देते हैं। अब इस साफ दाने को गूरी कहते हैं। गूरी भूनने पर बहुरी कहलाती है। पहली बार साधारण गरम बालू का प्रयोग होता है पर दूसरी बार बालू अत्यन्त गरम होनी चाहिए। बहुरी के साथ भूनी हुई मटर या तिरछी (अरहर का कमजोर दाना) मिलाकर सतुआ (सतू) बनाते है।

परमल—यह गेहूँ, जोन्हरी तथा बाजरा का बनता है। परमल बनाने के लिए अन्न को एक रात पानी में भिगो देते हैं, सबेरे कौंड़ी में अधकुट (आधा कुटा हुआ) कर सूप से पछोर लेते हैं। तब इसे थोड़ो आँच पर कउर (गरम) लेते है। फिर इसे धूप मे डालकर भली-भाँति सुखाकर खपरी में अधिक तप्त बालू द्वारा भूँजते हैं। बाजरा की पकी बाल खेत से लाकर खटिया पर रगड़ कर उसका दाना अलग करते हैं। फिर पूर्ववत् कउर करके कौंड़ी मे थोड़ा कूट कर के धूप में डाल देते हैं। सूखने पर उसे पुनः खूब गरम बालू डाल कर भूनते हैं।

चिउरी या चूरी—जौ की बाल गद्दा (पक) जाने पर तोड़ लेते हैं फिर बाल को भूईं (भूमि) पर रखकर गँड़सा से कल्ले-कल्ले (धीरे-धीरे) मार कर टूँड़ को अलग करते हैं फिर सूप से पछोर कर काँड़ा या ओखरी मे मूसर या पहरुआ से छाँट कर पछोरते हैं। तब इसे धूप मे सुखाकर भूँजते हैं। चिउरी चबाने में बडी सोन्हि (सोंधी) होती है।

लाई—धान को रात भर भिगोकर सवेरे थोड़ा पानी डाल कर उसिनते (उबालते) हैं। जब धान में चिट चिट या पुट-पुट की आवाज आती है तब धान पक गया ऐसा समझा जाता है। इस धान को भुँजिया धान कहते हैं। इसे ओखली में कूटकर चावल निकालते हैं—यह चावल भुँजिया चावल कहलाता है। इस चावल को भूनने पर लाई तैयार होती है।

दाने को अँगारे में भी कउरते हैं जिसे अंगराइब कहते हैं। कउरने को कोहरा करब (करना) भी कहते हैं। गोंइठा या उपरी (उपली) की निरधू (निर्धूम) आग मे कउरना अच्छा होता है। इस प्रकार कउरे हुए दाने में लावा नहीं तैयार होता केवल दाना खर हो जाता है और चबाने में सोन्ह (सोंध) आता है। चना-मटर कउरने की प्रथा है। खपड़ी में बिना बालू के

भूनने को भी कउरब (कउरना) कहते हैं। इसे ततइब या तताइब (तताना) भी कहते हैं।

सीना-पिरोना

४०७ साधारणतः स्त्रियाँ नए कपड़े की सिलाई नहीं जानतीं. पुराने फटे कपड़ों को सीकर मरम्मत कर लेती हैं। जब कोई कपड़ा खोंग (खोंच) लग कर फट जाता है तब उसे सी कर पुनः ठीक करती हैं। इस प्रकार की सिलाई को चीर सियब (सीना) कहते हैं। पुराने कपड़ों में कहीं-कहीं गल कर बड़ा सूराख हो जाता है ऐसे स्थान पर दूसरा कपड़ा रख कर जोड़ लगाते हैं उसको पेवन या पेवदाँ कहते हैं। पेवन रख कर पहले किनारों को सिलते हैं फिर उसे तुरपते हैं ऐसा करने से कपड़े का सिला हुआ किनारा भीतर दब जाता है और सिलाई सुन्दर हो जाती है। *मशीन की भाँति हाथ से भी* बखिया *की जाती* है। पर बखिया करने के पूर्व एक बार कच्ची सिलाई करते हैं जिसे कच्चा करब (करना) कहते हैं। दो कपड़ों को ले कर साधारण सिलाई करने को गूलब (गूलना) कहते हैं यह सिलाई कामचलाऊ होता है। जब कई परत कपड़ो को अँटकाने के लिए डोरा डाला जाता है तब उस सिलाई को लंगड़ डालब (डालना) कहते हैं। यह सिलाई पक्की सिलाई के बाद तोड़ दी जाती है। सूई में डोरा डालने को पि·ोउब (पिरोना) कहते हैं!

४०८, कथरी और सुजनी—पुरानी धोती, लूगा या लुगरी वगैरह को कई परत सिल कर कथरी बनाने की प्रथा है, यह दरी की भाँति बिछौने का काम देती है। कथरी के ऊपर का कपड़ा निम्मन या नामन अर्थात् मजबूत रहता है। नए कपड़े की भी कथरी बनती है और यह सुंदर और महान होती है। सुंदरता के लिए इसमें रंगीन सूत से पशु-पक्षी के चित्र भी उरेहते हैं। इसे सुजना कहते हैं। अच्छी सुजनी कई वर्षों तक चलती है।

पंखा बुनना

४०९. पंखे को साधारणतः बेना कहते हैं। गेहूँ के पौधे के समूचे डंठल, फसल के समय एकत्र कर लेते हैं इन्हें नरई कहते हैं। इन्हीं डंठलों के द्वारा पंखा बनाया जाता है। इन पर रंगीन सूत के फूल आदि बनाते हैं। ये कला की दृष्टि से सुंदर होते हैं।

सरहरी (सरकंडा) के ऊपर भुआ निकलता है। भुए में की सरहरी गेहूँ के डंठल की भाँति पतली होती है और इसका भी पंखा बनता है। इसे सींक या सींका कहते हैं। नरई की अपेक्षा यह मजबूत होती है।

बिनावट के लिए रंगीन सूत प्रयोग किया जाता है। सूत के सहारे ही डंठल आपस मे जुटे रहते हैं। बेना आरंभ करने को बेना नाधब (नाधना) कहते हैं। जिस प्रकार अन्य वस्तुओं की बिनावट मध्य से आरंभ होती है उसी प्रकार पंखे की बिनावट भी उसके मध्य भाग से आरंभ की जाती है। मध्य भाग को पेनी पेंदी) कहते हैं। पेनी आरंभ करने को पेनी छानब (छानना) कहते हैं। डंठल ताने का काम करता है और सूत बाने का। जिस प्रकार का बेल-बूटा डालना होता है उसी प्रकार की बिनावट करते हैं। पेनी छानने के लिए सात, नौ, ग्यारह सींकें (डंठल) लेकर उसी पर बिनना आरभ करते हैं। पंखे मे दोहरी सींकें लगाई जाती हैं। जितनी सींकें खड़े-खड़ लगती है उतनी ही बेंड़े-बेंड; इस प्रकार पेनी का जो आकार बनता है उसे चौक कहते हैं। ज्यों-ज्यों पंखा बुनते जाते हैं त्यों-त्यों सींकें जोड़ते जाते हैं। बेना पूरा तैयार हो जाने पर कैंची से किनारा काट कर उसे बराबर कर दिया जाता है बेना के चारों किनारो पर कपड़ा लगाते हैं जिसे गोंट या गोंटा कहते हैं सुन्दरता के लिए रगीन कपड़े का फुनना फूल) लगाते हैं। बेना घुमाने के लिए उसके चाएँ किनारे पर बाँस की एक कइन फाड़ कर लगाते है। कइन का निचला भाग पंखे से बढा हुआ होता है और यह फाड़ा नहीं जाता; इसी में बाँस की एक पतली फोंकी डाल देते हैं जिसे पकड़ कर बेना डोलाते (हाँकते) हैं।

मूँज के सामान बनाना

४१०. स्त्रियाँ मूँज के द्वारा भौकी या मौनी कुरुई (छोटी मौनी) पेटारा-पेटारी (बड़ा डब्बा) आदि सामान बनाती हैं ये वस्तुएं गृहस्थी में सामान वगैरह रखने के लिए बडी उपयोगी होती हैं साथ ही इनके बनाने में कला का विशेष स्थान है। फूलदार मौनी को फुलरी मौनी कहते हैं। बड़ी भौका को सिकहुला कहते हैं।

सरकंडे का पौधा जब हरा रहता है तब उसे मूँज कहते हैं; हरी मूँज काट कर उसकी पत्ती को लम्बे लम्बे चीर लेते हैं। इन टुकड़ों को चार कहते हैं। पत्ती सूखने पर सरपत कहलाती है। मूँज की पत्ती को चीरने, के बाद अँगुलियों में इस प्रकार लपेटते हैं कि उसका आकार अँग्रेजो के आठ के सदृश बन जाता है। इस लपेटे हुए चीर को वल्ला या वरुआ कहते हैं। इसे सुखा कर रख लेते हैं। जब आवश्यकता पड़ती है तब इसे रँग भी लेते हैं।

मूँज के साथ ही काँस की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि काँस के ऊपर ही वल्ले की बिनाई होती है। बिनने के लिए लोहे की तीली की टेकुरा या सराई होता है। सराई के ऊपरी भाग में या तो लकड़ी की मुठिया रहती है या लहठो (लाह) की। लाख की टूटी हुई चूड़ियो को इस काम में लाते हैं।

मौनी आदि आरंभ करने के लिए पहले काँस की पतली मेंडरी बनाते हैं, इसे पेनी कहते हैं। पेनी आरम्भ करने को पेनी छानब (छानना) कहते हैं। मेंडरी के एक चक्र या फेरे को वारी कहते हैं। इसी वारी को टिकुरी से छेद कर सुए की सहायता से बिनते जाते हैं। जब चीर को फाड़ कर बिनने के योग्य और बारीक कर लेते हैं तब उसे दिउली कहते हैं। बिनने का ढङ्ग आदि से अंत तक एक ही है। सुंदरता के लिए बीच-बीच में फूल बनाते हैं। वारी जहाँ समाप्त होती है वहाँ उसका सिरा पचाल कर मिढ़ देते हैं ताकि भद्दापन न रहे। बच्चों के लिए मूँज का घुनघुना, डलिया-डलरी-ढोला भी बनता है। एक छोटा ढक्कनदार अत्यन्त सुन्दर सपटा बुना जाता है जिसमें नथिया आदि सोने के छोटे-छोटे आभूषण रखते हैं। विवाह के समय लड़की के बिदाई के साथ ये सामान दिए जाते हैं।

———

शब्दानुक्रमणिका

[नीचे दी हुई संख्याएँ खंड १ के अनुच्छेदों को सूचित करती हैं।]

अ

अँइठ बाँकर–२४३ [वि०] कच्ची कटी हुई लकड़ी जो सूखने पर टेढ़ी पड़ गई हो (हिं० ऐंठन, सं० आवेष्ठन, पा० आवेट्ठन + हिं० बाँकर, सं० वक्र)।

अँउठ–३६२ [संज्ञा] अँगूठा (सं० अंगुष्ठ, प्रा० अंगुट्ठ)।

अँकउरा–३४२ [संज्ञा] बाँस के दो गाँठों का मध्यवर्ती सादा भाग (सं० अङ्कपूर–?)।

अँकड़ही–२ [वि०] कंकड़ी युक्त (हिं० अँकरा = अँकरी लता के दाने)।

अँकड़ी–२२७ [संज्ञा] कंकड़ के छोटे-छोटे टुकड़े (हिं० अँकरा)।

अँकरहिया मटर–८७ [संज्ञा] एक प्रकार की छोटी मटर (हिं० अँकरी = रबी के समय की एक लतर जिसमें छोटे-छोटे दाने फलते हैं)।

अँकवार–६६ [संज्ञा] दोनों भुजाओं का घेरा (सं० अंक पाल–, अंकपालिका)।

अँकोल्ह–२९० [संज्ञा] एक जंगली वृक्ष—ढेग (सं० अंकोल)।

अँखुआ–७५ [संज्ञा] अंकुर (सं० अंकुर और अक्षि–का मिश्रण?)।

अँखुआइब–७५ [क्रि०] अँखुआना, अँखुआ निकलना।

अँखुवा–१२५ [संज्ञा] दे० 'अँखुआ'।

अँगराइब–४०६ [क्रि०] अँगराना, अंगार की सहायता से दाना भूँजना (सं० अंगार)।

अँगवार–७३ [संज्ञा] दँवाई की हुई अन्न की राशि में हरवाह का भाग (सं० अंग = भाग + पाल–); २७५ [संज्ञा] सहयोग के रूप में किया गया कार्य। मुहा० **अँगवार करब**–किसी के कार्य में इस अभिप्राय से सहायता करना कि वह भी बदले में सहायता करेगा। **अँगवार देब**–किसी अँगवार के बदले में अँगार करना।

अंगा–२२२ [संज्ञा] एम प्रकार का पहनने का प्राचनी वस्त्र (सं० अंगक।

अँगीठी १८८–[संज्ञा] आग रखने की छोटी बोरसी, पर बोरसी की अपेक्षा यह छिछली होती है (सं० अग्निष्ठिका, पा० अग्गिट्ठो)।

अँगुरताना–२५९ [संज्ञा] अँगूठे में पहनने का एक आभूषण; २९९ [संज्ञा] अँगुली पर पहनने की चमड़े की एक टोपी जिसे रूई धुनते समय पहनते हैं (फ़ा० अंगुश्ताना)।

अँगूठी–२५९ [संज्ञा] अँगुली में पहनने का आभूषण (सं० अंगुष्ठिका); ३०९ मुहा० **अँगूठा करब**–लपेटी हुई कपड़े की पाई के एक किनारे को मुर्री देकर

लपेटे हुए भाग मे अँगूठे द्वारा घुसेड़ना।

अँगोर–१२२,२८५ [संज्ञा] ईख के सिरे पर का भाग (सं० अग्र–)।

अँगोरी–२८५ [संज्ञा] ईख के सिरे पर का भाग, दे० 'अँगोर'।

अँचरी–२६६ [संज्ञा] आँचर पर लगने वाले चाँदी के दाने (सं० अंचल–)

अँजोरा पाख–२२२ [संज्ञा] शुक्ल पक्ष (सं० उज्ज्वल+पक्ष)।

अँटऊ–११४,२७६ [वि०] आँटा के रूप में बँधी हुई, दे० 'आँटा'।

अँटकाइब–२२४ [क्रि०] अँटकाना, फँसाना।

अँटारी–२२४ [संज्ञा] कोठा (सं० अट्टालिका)।

अँटिया–१०१ [संज्ञा] सरसो के डंठलों का बोझ, दे० 'आँटा'; ११२ [संज्ञा] वेहन का छोटा बोझ।

अंधा–१२५ [संज्ञा] ईख का अँखुआ जब तक कि वह जमीन के भीतर छिपा रहता है (सं० अंध)।

अइती–१७२ [संज्ञा] अधिकार, काबू (सं० आयत्तिका)।

अइला–२९४ [संज्ञा] मिट्टी का एक अर्द्धवृत्ताकार रूप जिस से चूल्हा बनता है।

अखनी–७० [संज्ञा] एक टेढ़ी लकड़ी जिससे दॅवरी के समय डंठलो को बीच में करते हैं (सं० आखनिका)।

अखरब–२४ [क्रि०] कष्टप्रद होना; खलना (सं० आखर–)।

अखरी–१२२ [वि०] बिना भिगोया हुआ (सं० अक्षर–)।

अखलवट–२६३ [संज्ञा] भौ (अक्षि+इल्ल+पुट–)।

अगहनी–५९,१०२ [वि०] अगहन में होने वाला (सं० अग्रहायण–)।

अछारब–६१,२६७ [क्रि०] कुदाल या खुरपा घिस जाने पर उस पर नया लोहा चढ़ाना (सं० आच्छाद्–)।

अठइयाँ–१५० [संज्ञा] आठवें दिन (सं० अष्ट-)।

अठवाँसा–७,१२० [वि०] वह खेत जो आठ मास—आषाढ़ से माघ तक—ईख बोने के लिए जोता गया हो (सं० अष्ट मास-)।

अड़ान–१८२ [संज्ञा] पशुओं के टहरने का स्थान (प्रा० अड्ड)।

अड़ार–१८० [संज्ञा] चौपायो के रहने का हाता (हि० अडाड प्रा० अड्ड)।

अड़ाहर देव–१७७ [क्रि०] भैंस को भैंसाने के लिए चोकरना (तु० डहकना)।

अडुस–२९० [संज्ञा] एक जंगली पौधा (सं० अटरूप प्रा० अडरूह)।

अथरा–२२२,२४९ [संज्ञा] मिट्टी का एक छिछला पात्र जिस मे कुम्हार घड़ा रख कर उसकी पेंदी थापी से ठोक-ठोंक कर ठीक करता है (सं० आस्थाल-)।

अथिर जाव–१७७ [क्रि०] भैंस के भैंसाने की इच्छा का शांत हो जाना (तु०, हि० थिरना, सं० आस्थिर)।

अध कुट–४०६ [वि०] आधा कुटा हुआ (सं० अर्द्ध + कुट्टन)।

अध छटंकी–२२८ [संज्ञा] आधी छटाँक (सं० अर्द्ध + षट् + टंक)।

अधपई–२२८ [संज्ञा] आध पाव (सं० अर्द्ध + पादिका)।

अधवार–२४६ [वि०] आधा भाग (अर्द्ध + पाल 7 वाल 7 वार); मुहा० **अधवार खोलब**—लकड़ी की सिल्ली चीर कर दो भागों में करना।

अधहरा–१५ [संज्ञा] छोटे फाल वाला हल जो नौहरा का छोटा रूप कहा जा सकता है (स० अर्द्ध + हल-)।

अधेड़–१७० [संज्ञा] जीवन की आधी अवस्था जो पार कर चुका हो (अर्द्ध = आधा + एड़)।

अनंता–२५७ [संज्ञा] बाजू मे पहनने का एक आभूषण (सं० अनन्त–); २६९ अनंत चतुर्दशी को बाजू में पहना जाने वाला सूत का एक गंडा जिस मे चौदह गाँठें होती हैं।

अन्हियारा पाख–२३२ [संज्ञा] कृष्ण पक्ष (सं० अंधकार + पक्ष)।

अपटन–८० [संज्ञा] दे० 'उबटन'।

अफार–७,२३, ५८,९७, ११५ [संज्ञा] बिना जोता हुआ खेत (अ + स्फाटन)।

अबगा–२७७ [वि०] बिना मिलावट का, निसोख, सच्चा। यथा, अबगा रस (ईख का शुद्ध रस जिसमें पानी न मिला हो)।

अमनिया–२२९ [संज्ञा] अनाज आदि की बिनकर की गई सफाई।

अमहा–१६५ [वि०] मांस वाला। यथा, अमहा बैल (जिस बैल के शरीर पर कहीं अतिरिक्त मांस लटक रहा हो) (सं० आम–)।

अरइठ–२ [संज्ञा] खेत के नीचे की कडी मिट्टी (ने० अरट्ठ = कड़ा, सं० अरिष्ट); ११ मुहा० **अरइठ मनाइब**–अरइठ का प्रभाव पड़ना; ८८ **अरइठ मिटब**–अरइठ का प्रभाव मिटना।

अरदवान–२८२ [संज्ञा] दे० 'अरदावनि'।

अरदावनि–२८२ [संज्ञा] चारपाई के पैताने में बुनावट कसने के लिए जो डोरी लगाई जाती है (हि० ओर, सं० अवर- + दामनिका–)।

अरसी–३५९ [संज्ञा] तर्जनी में पहनने का आभूषण विशेष (स० आदर्शिका)

अरहर–९६,४०५ [संज्ञा] एक प्रक का अनाज (सं० आढ़की)।

अरुई–६० [संज्ञा] एक तरकारी (स० आलु–)

अरुझब–९० [क्रि०] अरुझना (सं०) आरुध्-)।

अल्हर–१६० [वि०] सुकुमार। यथा, अल्हर बछड़ा (हि० अल्हड़)।

अवँठ-अवँठि–२१७, ३८७, ३९२ [संज्ञा] किनारा, बारी (हिं० ओंठ सं० ओष्ठ, प्रा० ओट्ठ)।

अवहब–२९ [क्रि०] ढेकुर का टेढ़े–मेढे चलना (सं० अप-धाव् ?)।

अवान–२५८,३९५ [संज्ञा] दे० 'आँवन'।

अवाल–३१७, ४०१ [संज्ञा] चरखे की पटरियों (कवँरी) पर लगी हुई रस्सी जिस पर माल चढ़ाया जाता है।

अवाह–१८,२३,२२३, [वि०] ढालू (सं० आवाह); १४२ गहिर। यथा, अवाह

जोताई।

असनियाइब–२६२ [क्रि०] असनियाना, बैल को तेज हॉकने के लिए उसके दोनों जंघों के बीच के भाग को स्पर्श करना (सं० आसंज्ञा–)।

असनी–२२२ [संज्ञा] छोटा आसन (हि० आसनी, सं० आसन)।

असरेखा–११५ [सं०] एक नक्षत्र (सं० अश्लेषा)।

असाढ़–१२० [संज्ञा] बारह मास में से एक मास (सं० आषाढ़)।

अहरी–१६३ [संज्ञा] लेहँडी (सं० आहरिका; आहर्=एकत्र होना); २०१ जानवरों के पानी पीने के लिए बनवाया गया हौज।

अहारब–२४३ [क्रि०] लकड़ी को काट-छाँट कर काम के योग्य बनाना (हि० अहारना (सं० आ + धार्-)।

अहीर–१८८ [संज्ञा] एक जाति विशेष (स० आभीर)।

आ

आँ–२१ [अ०] बैलों को चलाने के लिए हरवाहे की एक बोली।

आँख–२३२ [संज्ञा] बाँस के वृक्ष में गाँठ पर आँख सदृश चिह्न जहाँ से अँखुए निकलते हैं (सं० अक्षि, प्रा० अक्खि)।

आँगन–२२१ [संज्ञा] मकान के भीतर का वह मध्य भाग जो खुला रहता है (सं० अंगण)।

आँच–२४० [संज्ञा] ताप (सं० अर्चिस्-)।

आँटा–११६ [संज्ञा] सनई के पौधों का बोझ; २०४ ईख की पत्तियों का छोटा-छोटा गट्ठर।

आँटी–११६ [संज्ञा] आँटा का अल्पा०।

आँत–१२६ [संज्ञा] भीतरी भाग (सं० अन्त्र)।

आँतर–२२ [संज्ञा] जोतने के लिए खेत का जितना भाग घेरते हैं उसे हराई कहते हैं। एक हराई समाप्त होने के पूर्व ही दूसरी हराई फान लेते हैं, पहली हराई के छूटे हुए भाग को दूसरी हराई के साथ जोतते हैं। इस छूटे हुए भाग को भी आँतर कहते हैं (सं० अंतर): १२७ [संज्ञा] पान की श्रेणी जो थोड़े-थोड़े अंतर पर लगाई जाती है।

आँवन–२५८ [संज्ञा] पहिये की मूडी में धुरा के लिए जो मुँह होता है उसी में एक लोहा लगा रहता है जिससे लकड़ी धुरा की रगड़ से न कटे (सं० आनन)।

आँवाँ–२४०, २४१ [संज्ञा] कुम्हार का भट्ठा जिस में बरतन पकाया जाता है (सं० आपाक)।

आटा–७८, ४०२ गेहूँ-जौ आदि का पिसान (सं० अड् =अन्नं)।

आभा–१७८ [संज्ञा] आपत्ति, तु० 'हाबा'।

आरर–२००, २९२ [वि०] जिस में लसी न हो। यथा, आरर शीरा, आरर पुअरा।

आरा–२४२ [संज्ञा] लोहे का एक औजार जिस से लकड़ी चीरी जाती है (फा० अर्र); २४६ मुहा० **आरा साधब**–लकड़ी चीरते समय यह देखना कि आरा निश्चित स्थान पर चल रहा है।

आराकस–२४२ [संज्ञा] आरा खींचने वाले (फा० आरा + कश)।

आरागज–२५६ [संज्ञा] पहिये की

मूठी और पहिये के पुट्ठों को संबंधित करने वाली आठों पटरियाँ (सं० आर + गज = आठ)।

आरि—१२ [संज्ञा] किनारा, मेंड़ (सं० आर—); मुहा० आरि मारब—मेंड़ को काट-छाँट कर ठीक करना। आरि फेंकब—मेंड़ की घास की मिट्टी को खेत में फेंकना। आरि मारब—दे० 'आरि मारब' ;१३ कहा० आरि मेंड़ सुडौल करि रहै न पावै दूब। सब से पहिले बोइए खेत जोत के खूब॥

आरी—२२२ [संज्ञा] आरा का छोटा रूप दे० 'आरा'।

आरीपास—५ [अ०] निकट।

आलू—६०, १२१ [संज्ञा] एक प्रकार का कंद (सं० आलु) मुहा० आलू भरब—आलू के खेत में पानी भरना।

इ

इन्नर—१६० [संज्ञा] गेहूँ को सोंठ-गुड़ डालकर जब पकाते हैं तब उसे इन्नर कहते हैं (सं० अन्नार ?); तु० इनरी।

इनारा—१९३ [संज्ञा] कुआँ (हिं० इंदारा सं० *इन्द्रागार); १९३ मुहा० इनारा बँधवाउब—इनारा खोदकर उसे पक्के ईंटों द्वारा तैयार कराना।

इयाँ—१८४ [अ०] पशुओं के बुलाने की सांकेतिक बोली। (सं० अत्र, प्रा० एत्थ-)।

उ

उँचास—५ [संज्ञा] ऊँचा स्थान। यथा, उँचासे का खेत।

उकठब—९९, ११५, १२८ [क्रि०] सूखना (सं० उत्कृष्ट-)।

उकठा—२३ [वि०] सूखा, दे० 'उकठब'।

उकड़ा—४७ [वि०] बिना सींचा खेत (सं० उत्कट)।

उकन्हब—२६२ [क्रि०] बैलों का जुआ फेंक कर अलग हो जाना; बैलों के पल्ला फेंक कर अलग हो जाने पर बैल उकन्हि गइलें कहा जाता है।

उकाव—७०, ७१ [संज्ञा] दँवाई के बाद की एकत्र राशि (सं० उत्कार: = राशि, सं० उत्क्राम = निकल जाना)।

उकाढ़ि—२९ [वि०] जो ठेकुर चलने में हिलती डुलती हो (प्रा० उक्कड्ढ-)।

उकिलब—४१ [क्रि०] छिल जाना (सं० उत्कल् = खुलना)।

उखुड़—११७ [संज्ञा] ईख (सं० इक्षु > इक्खु-उक्खु)।

उखकटिया—६२ [वि०] ऊख काटने वाली। यथा, उखकटिया कुदार (सं० इक्षु + हिं० कटिया)।

उखमर्जी—१७२ [वि०] बदमाश। यथा, उखमर्जी बैल।

उखाव—८, ५६, १२० [संज्ञा] ईख बोने के लिये जो खेत तैयार किया जाता है।

उज्जर—१, १११ [वि०] श्वेत (सं० उज्ज्वल)।

उजरकी—१, ८७, १३२, १५५ [वि०] उज्जर का स्त्री०, दे० 'उज्जर'।

उठउवा—४०४ [वि०] उठाई जा सकने वाली वस्तु यथा उठउवा चर्खी (हिं० उठाना सं० उत्थान्-)।

उठाइब—४०२ [क्रि०] किसी फैली हुई वस्तु को एकत्र कर रखना।

उठान—१५८ [संज्ञा] वह समय जब कि

पशु जोड़ा खाने के लिए अपनी इच्छा प्रकट करता है। यथा, गाय उठान पर उठी है (सं० उत्थान)।

उठावन–२२ [संज्ञा] पहली वर्षा के बाद की पहला जुताई (हिं० उठाना, सं० उत्थापन)।

उठौनी–२२ [संज्ञा] उठावन का स्त्री०।

उड़ेलब–२८५ [क्रि०] किसी द्रव पदार्थ को किसी पात्र मे गिराना।

उतन्ना–३६५ [संज्ञा] दे० 'उतरन'।

उतरंग–२१३,२५३ [संज्ञा] दरवाजे की ऊपरी चौखट (सं० उत्तराङ्ग-)।

उतरन–३६५ [संज्ञा] कान के ऊपरी भाग मे पहनी जाने वाली बारी (सं० उत्तरण-)।

उदंत–१६७ [वि०] बिना दाँत का यथा, उदंत वाछा (स० उद्दन्त)।

उदहब–२३३ [क्रि०] किसी पात्र से द्रव पदार्थ को उलच कर किसी दूसरे पात्र मे डालना तु० उबहब।

उधिरब–२८७ [क्रि०] उधड़ना, खुल जाना, अलग हो जाना (स० उद्धर्-)।

उधेड़ब–३८४ [क्रि०] चारपाई की बुनावट खोलना। दे० 'उधिरब'।

उधेरब–२२३ [क्रि०] खपड़े की छाजन बिगाड़ना, दे० 'उधेड़ब'।

उनचन–३८२, ३८३ [सज्ञा] चारपाई के पायताने की रस्सी जो चारपाई कड़ी करने के लिए लगाई जाती है (सं० उदंचन-)।

उनचब–३८२ [क्रि०] चारपाई के पायताने की उनचन को खींच कर कड़ी करना (हि० ओनचना सं० उदंचन-)।

उपरवार–५ [संज्ञा] ऊँचा स्थान। यथा, उपरवारे का खेत (सं० उपरि-)।

उपरी–४०६ [संज्ञा] गोबर पाथ कर बनाया हुआ ईंधन (हिं० उपली, सं०-उपल=पत्थर; तु० सं० उत्पली)।

उपरौटा–४०२,४०४ [वि०] ऊपर का का भाग (सं०उपरि+पुट-)।

उपल्ला–१९,१८८ [वि०] ऊपर का भाग (सं० उपरि+प्रा० विल्ल)।

उफान–३०० [सज्ञा] उबाल (सं० उत् +फणा-)।

उबटन–२३३ [संज्ञा] शरीर में लगाने के लिए एक पिसा हुआ पदार्थ (सं० उद्वर्तन, पा० उब्बट्टन)।

उबहब–२६ [क्रि०] किसी चीज से पानी उलीचना सं० उद्वह्-)।

उबहनि–२८१ [संज्ञा] रस्सी (सं० उद्वाहनिका, प्रा० उब्बहणिआ)।

उभारब–१८७,२५४ [क्रि०] उभाड़ना, उठाना (सं० उद्भर्, प्रा० उब्भर् का स० रूप)।

उम्मियाब–७८ [क्रि०] जौ-गेहूँ के बाल के दानों का पोढ़ाना।

उम्मी–७८ [संज्ञा] जौ–गेहूँ की अधपकी बाल जो भूनी गई हो, जौ-गेहूँ की बाल के साथ हरी मटर खून कर बनाया हुआ पदार्थ (स० उम्बी)।

उरेहब–४०८ [क्रि०] चित्र काढ़ना (सं० उल्लेख-)।

उलचब–४७ [क्रि०] किसी चीज से पानी उठा कर उसे अलग गिराना।

उलझा फेंकब–१९५ [क्रि०]

आईना)।

ऐरन–३६५ [संज्ञा] कान का एक आभूषण (अँ० इयरिंग)।

ओ

ओंड़–२२८ [संज्ञा] गड्ढा (सं० अवट, अप० अड, प्रा० अअड, म० आड = छोटा कुआँ)।

ओखर–३२० [संज्ञा] गडरियों का कम्मल बुनने का एक औजार जिस में ताने का एक सिरा लपेटा रहता है।

ओखरी–४०६ [संज्ञा] कोंडी (सं० उलूखल)।

ओगरब–२०१ [क्रि०] दूध दुहने के पूर्व गाय के स्तन में दूध उतरना।

ओगारब–२०१ [क्रि०] कुएँ का कीचड़ निकाल कर उसकी सफाई करना (सं० अवगारयते)।

ओछरा–५२ [संज्ञा] पशुओं के नीचे बिछाई गई पत्ती जो मल-मूत्र से खाद के रूप में हो जाती है।

ओछा काना–१६७ [वि०] जिस बैल के आठ दाँत पूरे न हों। यथा, ओछा काना बैल।

ओझरी–२६३ [संज्ञा] पेट के भीतर की वह थैली जिस में खाया हुआ पदार्थ रहता है (सं० अव + झर < क्षर्-)।

ओट–२६० [संज्ञा] रोक।

ओटा–४०३ [संज्ञा] घिसनहरि के बैठने का ऊँचा स्थान।

ओठगाइब–२२५ [क्रि०] किसी वस्तु के सहारे टेकाना (अव + स्था-अथवा अव + स्थग्-); २५३ [क्रि०] दरवाजा बन्द करना। तु० ओड़कावब् (प्रा० ओत्थेक्कणं)।

ओढ़ब–२२२ [क्रि०] शरीर पर वस्त्र डालना (सं० उपवेष्ठन प्रा० आवेड्ढन)।

ओदाई–१२६ [क्रि०] नमी (सं० आर्द्र,-प्रा० ओद्द –)।

ओनचन–२८२,२८३ [संज्ञा] दे० 'उनचन'।

ओनाइब–३८ [क्रि०] झुकाना (सं० अवनामयति)।

ओन्हउवा–२१८ [वि०] औंधा (सं० अवाङ्‌धा–)।

ओन्हाउब–२३१ [क्रि०] औंधाना।

ओयट–११ [संज्ञा] नमी (सं० आर्द्र) तु० अरइठ। मुहा० **ओयट खाब**–पानी खाना, खेत को खनी हुई सूखी मिट्टी पर पानी पड़ जाना।

ओयर–१५८ [संज्ञा] थन (सं० उदर)। मुहा० **ओयर छोड़ब**–बियाने के पूर्व थन में दूध उतरना।

ओर–२०६ [संज्ञा] किनारा (सं० अवर = किनारा; प्रा० ओर)।

ओरदावन–२८२ [संज्ञा] चारपाई के पैर की ओर लगी रस्सी, उनचन (सं० अवर + दामनिका)।

ओरवन–१८२ [संज्ञा] बर्तन को लटकाने की रस्सी (सं० अवर–)।

ओरौती–२०३,२०८ [संज्ञा] छाजन की ओरी (सं० अवर–)।

ओवैट–११ [संज्ञा] दे० 'ओयट'।

ओसउनी–७१ [संज्ञा] ओसाने का कार्य।

ओसनहरि–७१ [संज्ञा] ओसानेवाली स्त्री।

ओसर–१७७ [संज्ञा] जवान भैंस (सं० उपसर्या)।

भूषण (सं० कंठक); १७१ [संज्ञा] बैल के गले में पहनाई जाने वाली एक रस्सी।

कंडा—२४० [संज्ञा] गोबर का सूखा छोत या चोत जो ईंधन के काम में आता है (सं० स्कंदन = मलत्याग)।

कंडी—४९ [संज्ञा] उपली दे० 'कंडा'।

कँवरी—१४० [संज्ञा] पचास पान की एक कँवरी; ४०१ [संज्ञा] चरखे की मूडी से सम्बन्धित पटरियाँ।

कइन—९७,२०४,२३२ [संज्ञा] बाँस की पतली-पतली कंछियाँ (सं० कंचिका); ९९ [संज्ञा] अरहर की पतली कंछियाँ।

कइनहिया—११९ [वि०] कइन सदृश।

कउरब—४०६ [क्रि०] आग पर रख कर भूनना (हिं० कौरना, कौड़ा सं० कुड ?) तु० 'कहुलब'।

ककना—२५८ [संज्ञा] कलाई का एक आभूषण (सं० कंकण)।

ककना—२७० [संज्ञा] ईख पेरने की मशीन के मूसर में बने हुये दाँत (जब ये दाँत एक दूसरे में फँसते चलते हैं तब इन का रूप ककना—एक हाथ की अँगुलियों की घई में दूसरे हाथ की अँगुलियों को फँसाने की मुद्रा—के सदृश होता है)।

कचट—२३ [वि०] दे० 'कच्चा'।

कचरा—५३ [संज्ञा] पशुओं के नीचे बिछाई गई पत्ती जो खाद बन जाती है (सं० कच्चर)।

कचरी—२९९ [संज्ञा] मैल।

कचार—३२५ [संज्ञा] खाद।

कचौड़ीदार—३५४ [वि०] कचौड़ी की आकृति की वस्तु। यथा, कचौड़ीदार गहना।

कच्चा—४०७ [वि०] जो पका न हो। मुहा० कच्चा करब—कच्ची सिलाई करना।

कच्ची—३ [वि०] नम। यथा, कच्ची माटी; २२६ कच्ची घानी—जिस घानी से पूरा-पूरा तेल न निथरा हो।

कजरी—१५६ [संज्ञा] कालापन (हिं० काजल सं० कज्जल)।

कजरौटा—२६८ [संज्ञा] काजल रखने का लोहे का एक विशेष प्रकार का डिब्बा (सं० कज्जल + पुट-)।

कटवैया—६६,२७६ [संज्ञा] काटनेवाला (सं० कर्त्तन, प्रा० कट्टन)।

कटाई—६५ [संज्ञा] खेत कटाने का कार्य।

कटिया—६५,१३१ [संज्ञा] वही।

कटुआ—१४१ [वि०] काटा हुआ। यथा, कटुआ आलू (सं० कर्त्तन)।

कटुई—१८९ [वि०] काटी हुई। यथा, कटुई दही।

कठउवा—२६९ [वि०] काठ का। यथा, कठउवा कोल्हू। (सं० काष्ठ-)।

कठुआव—२९४ [क्रि०] सूखना या कड़ा होना (सं० काष्ठ-)।

कढ़ाव—४१ [संज्ञा] कुएँ की जितनी गहराई तक का पानी ढेंकुल द्वारा निकला जाता है।

कड़री—१४९ [संज्ञा] मूली का कंछा (सं० कांड + र)।

कड़ा—२६१ [संज्ञा] पैर का एक आभूषण विशेष (सं० कटक)।

कड़ाह—२८४ [संज्ञा] एक बड़ा लोहे का पात्र (सं० कटाह)।

कड़ी—२ [वि०] कठोर। यथा, कड़ी माटी; २१५ [संज्ञा] घर की छाजन में खड़ी-खड़ी

लगने वाली लकड़ियाँ (सं० कट); मुहा० **कड़ी बैठाइब**—छाजन में कड़ी लगाना।

कतनी—२७४ [संज्ञा] ढेरा जिस पर सुतली काती जाती है (सं० कर्त्तन, प्रा० कत्तन)।

कतरनी—१४० [संज्ञा] कैंची (हि० कतरना, स० कर्त्तरिका)।

कतरी—२४६ [संज्ञा] कतरनी की भाँति सोनार का एक औजार (सं० कर्त्तरी); ३५८ कलाई का एक आभूषण-विशेष।

कतारा—११८ [संज्ञा] एक प्रकार का मोटा गन्ना (सं० कांतार)।

कथरी—४०७ [संज्ञा] पुराने कपडो का बनाया हुआ बिछावन (कंथा+री)।

कदाउर—१८५ [संज्ञा] खेत की घास जिसे पशु चरते हैं (सं०कन्द+अवली)।

कनई—२३४ ३९३ [संज्ञा] गीली चिकनी मिट्टी जो किसी गड्ढे से निकाली जाती है।

कनगुरी—३६२ [संज्ञा] कनिष्ठा अँगुली।

कनचिप्टी—१५१ [वि०] जिस पशु के कान सीग से सटे हो (कर्ण-)।

कनफूल—३६५ [संज्ञा] कान का एक आभूषण विशेष (कर्ण+फुल्ल)।

कनस्तर—४८ [संज्ञा] एक टीन का बडा डिब्बा जिसमें तेल आदि रक्खा जाता हैं (अँ०कनिस्टर)।

कनही—१२९ [संज्ञा] एक प्रकार की कीड़े से खाई हुई (सं० काण-)।

कनेटा—३२४ [संज्ञा] कोल्हू के कातर में लगी हुई एक लकडी जो कोल्हू के बाहरी घेरे से सट कर चलती है (हि० कान+एठा, सं० कर्ण+वेष्टन)।

कन्ना—२७ [संज्ञा] कछा (सं० कर्ण)।

कपुरी पान—१३६ [संज्ञा] पान की एक जाति विशेष जिस मे कपूर की सुगंध आती है।

कबिसाह—२ [संज्ञा] दे० 'काबिस'।

कमरकस—२६९ [संज्ञा] एक डोरी जिससे स्त्रियाँ धोती को कमर के पास बाँधती हैं (फा० कमरकश)।

कमरबल्ला—२२२ [संज्ञा] मकान के छाजन में लगने वाली एक लकडी।

कमरा—३२२ [संज्ञा] कम्मल (सं० कंबल)।

कमाई—७ [संज्ञा] खेत कमाने का कार्य।

कमाब—७ [क्रि०] सपन्न करना (प्रा० कम्म, सं० कर्म नामधातु); मुहा० **खेत कमाब**—खेत मे खाद-पास डाल कर उसे तैयार करना; २७४ **गाँव कमाब**—गाँव का डाँगर ढोना।

कमायल—३,७ [वि०] कमाई हुई। यथा, कमायल मिट्टी।

कमोरा—२३३ [संज्ञा] मिट्टी का एक बर्तन।

कमोरी—१९० [संज्ञा] कमोरा का स्त्री०।

करइल—२ [संज्ञा] काली मिट्टी (हिं० करैल सं० काल-)।

करकन्हा—१६४ [वि०] काले कंधे वाला बैल (सं० काल+स्कंध)।

करगह—२१२ [संज्ञा] करघा (फ़ा० कारगाह वा सं० कारु=शिल्पी)।

करछहूँ—१, ८७ [वि०] कुछ काला (काल+छाया-)।

करधन–३६९ [संज्ञा] बच्चो की कमर मे पहनाने के लिए सूत की एक डोरी।

करधनि–३६० [संज्ञा] स्त्रियो का कमर मे पहनने का एक आभूषण (स० कटि+धानी)।

करपब–११२ [क्रि०] प्रफुल्लित होना (सं० क्लृप्–)।

करमोउब–२६१, ३५९ [क्रि०] पानी लगा कर गीला करना।

करसी–२४१ [संज्ञा] गोहरा के छोटे-छोटे टुकड़े (सं० करीष)।

करा–२७४, २७७ [संज्ञा] सन का लच्छा जो काता जाता है; २८० बेकहल के रेशों का लच्छा (सं० कटक)।

कराइन–५२, १२०, १४०,२३८, ३३२ [संज्ञा] ईख की पुरानी पत्ती।

कराई–४०५ [संज्ञा] अरहर के दाल का छिलका।

कराही–१९१ [संज्ञा] कराह का अल्प० (सं० कटाह–)।

करिअई–१५५ [वि०] दे० 'करियई'।

करियई–८७ [वि०] काला (सं० कालक)।

करिया–१७४ [वि०] काला।

करिल–२२२ [सज्ञा] बॉस का नया कल्ला (सं० करीर)।

करी–२२४ [संज्ञा] दे० 'कड़ी'।

करुवार–१४,२५२ [संज्ञा] कोलहे चूल्हे के आकार का एक कीला जो दो लकड़ियों के जोड को दृढ़ करने के लिए जडा जाता है (सं० कटकाकार)।

करुवारी–१४ [संज्ञा] करुवार का अल्प०।

करेजा–२६२ [संज्ञा] हृदय।

करेर–१२७,१२८ [वि०] कड़ा (कठोर +एर)।

करैली–२५९ [संज्ञा] एक प्रकार की मुद्रिका जो स्त्रियॉ पहनती हैं (कर–)।

करौंछी–१५५ [वि०] काली (काल +छाया)।

करोना–१८९,१९१ [संज्ञा] दूध का करोवन (हि० करोना)।

कल–२६९ [संज्ञा] यन्त्र (फ़ा० कल)।

कलक्टरहिया–११९ [वि०] कलक्टर साहब से सम्बंधित। यथा, कलक्टरहिया ईख (अॅ० कलेक्टर)।

कलछुल–२२४ [संज्ञा] लोहे का एक पात्र (स० कडच्छु)।

कलम–३४६ [संज्ञा] सोनारो का नक्काशी करने का औजार (फा०क़लम), ३७३ [संज्ञा] कान के बगल के बाल को काटने का एक ढंग। मुहा० कलम काटब–कान के बगल के बाल काटना। कलम छाँटब–वही।

कलूटी–१५५ [वि०] काली (काल–)।

कलेटरिया–११६ [वि०] दे० 'कलक्टरहिया'।

कलोर–१५८ [संज्ञा] जवान बछिया जो गर्भ धारण के योग्य हो। (कल्या प्रा० कल्होडी)।

कल्ला–६२ [संज्ञा]शाखा (सं०करीर?)

कल्ले-कल्ले–४०६ [अ०] धीरे-धीरे।

कवही–२०८ [संज्ञा] बॉस का कैंचा जो छान टेकने के लिए होता है।

कहुआ–२५७ [संज्ञा] बैलगाड़ी के फड़ पर लगे हुए खूँटे जिनका ऊपरी

वाला ।

किआरा–८ [संज्ञा] जडहन के खेतों का समूह ।

कियारी–८, १११ [संज्ञा] जडहन का खेत; ४४ [संज्ञा] सिंचाई के लिये ईख के खेत में बनाए गए छोटे-छोटे घेरे (सं० केदारिका); ४४ मुहा० **कियारी गढ़ब**–कियारी बनाना; १२७ **कियारी गिराइब**–ईख के खेत की सिंचाई के बाद की गोडाई जिस में कियारी बिगाड दी जाती है; ४४,१२६ **कियारी देब**–कियारी भरना; ४४ **कियारी बराइब**–कियारी में पानी पहुँचाना; ११२ **कियारी बैठाइब**–कियारी में बेहन लगाना; ४४ **कियारी भरब**–कियारी द्वारा सिंचाई करना; १२६ कहा० **तीन कियारी तेरह गोंड़, तब ताका हौदा की ओर।**

कियारीदार–२८४ [वि०] कियारी युक्त। यथा, कियारी दार बुनावट ।

किरखुन–४०५ [संज्ञा] दाल की चूनी के बारीक टुकड़े (सं० कीट+क्षुण्ण) ।

किल–४०२ [संज्ञा] लकडी की खूँटी (सं० कील) ।

किल्ला–४०२, ४०४ [संज्ञा] दे० 'किल' ।

किलहटी–४९ [संज्ञा] एक पक्षी-विशेष ।

किवाड़ा–२५१ [संज्ञा] दरवाजा (सं० कपाट) ।

किस्बत–२७२ [संज्ञा] एक थैला जिस में नाई अपने औजार रखता है (अर० किसबत) ।

किस्बस–२७२ [संज्ञा] वही ।

किस्मत–२६५ [संज्ञा] वही ।

कुँचहरब–७० [क्रि०] कूँचा से बटोरना (सं० कूर्च-) ।

कुंजब–१४८ [क्रि०] मरचा का एक रोग जिसमें पत्तियाँ ऐंठ जाती हैं (सं० कुंचन = सिकुडना) ।

कुंदा–२४२ [संज्ञा] लकड़ी का बिना चीरा या फाड़ा हुआ बड़ा टुकडा।

कुंसिला–२२० [संज्ञा] एक लकडी जिसका प्रयोग मकान की छाजन में, जहाँ कोन होता है, किया जाता है (कोन+ सिरा) ।

कुआँ–१९२ [संज्ञा] पानी का विशेष स्थान (सं० कूप); २०१ मुहा० **कुआँ ओगारब**–कुआँ की मिट्टी आदि निकाल कर सफाई करना; **कुआँ बैठब**–कुआँ दबकर बैठ जाना; **कुआँ भसब**–वही ।

कुइयाँ–१९२ [संज्ञा] कुआँ का अल्पा० ।

कुकुर–२१६ [संज्ञा] कुत्ता (सं० कुकुर) ।

कुचकुचवा–५० [संज्ञा] उल्लू (अनु०)।

कुड़उववा–२७२ [वि०] दे० 'कुडउवा' ।

कुड़उवा–२७२ [वि०] कुण्डवत्, यथा कुडउवा कडाह ।

कुत्ता–२१६ [संज्ञा] टोडा की सहायता के लिए लगाई हुई छाजन में छोटी-छोटी लकड़ियाँ ।

कुदार–६० [संज्ञा] खेती का एक औजार (हिं० कुदाल सं० कुद्दालिका)।

कुदुराब–१८१ [क्रि०] बच्चो का उछलना-कूदना (सं० स्कुन्दन प्रा० कुन्दन = कूदना) ।

कुपटब-९७ [क्रि०] नोचना या थोडा सा तोडना (हिं० काटना) ।

कोइनी–२२६ [संज्ञा] महुआ के फल का बीज।

कोइराड़–८ [संज्ञा] जहां कोइरी साग-पात उत्पन्न करता है (हिं० कोरी + आर या कोयर-)।

कोइलर–२२४ [संज्ञा] धरन पर बड़ेर का बोझ संभालने वाली एक लकडी।

कोट–५ [संज्ञा] पुरानी राजधानी का स्थान (सं० कोट)।

कोटिया–५ [संज्ञा] दे० 'कोट'।

कोठा–२२४ [संज्ञा] मकान की दूसरी मंजिल (सं० कोष्ठक)।

कोठिला–२९५ [संज्ञा] अनाज रखने का एक मिट्टी का पात्र (सं० कोष्ठक –)।

कोठी–१९२ [सज्ञा] कुएँ की दीवार की रक्षा के लिए बॉस के फल्ठों से बनाया हुआ एक घेरा (सं० कोष्ठिका); २३१ [संज्ञा] बॉस के पेड़ों का समूह।

कोन–२३ [संज्ञा] खेत का कोना (कोण); २३ मुहा० **कोन करव**–खेत को तिरछे जोतना। **कोन घींचव**—कुदार से कोनों को गोड़ना। **कोन काटव**–कोन को छोड़ कर जोतना।

कोनिया–२२१ [संज्ञा] ऑगन की ओर की छाजन मे कोन वाला भाग।

कोन्छी–२३ [संज्ञा] हल को घुमाते समय जो कोना छूट जाता है।

कोन्सिला–२२० [संज्ञा] दे० 'कुंसिला'। मुहा० **कोन्सिला बॉधव**–कोन्सिला पर की छवाई करना।

कोयर–१७९ [संज्ञा] पशुओं के लिए हरा चारा।

कोरई–२१५ [संज्ञा] छाजन में बॉस के फल्ठे जो कडी के रूप मे काम आते हैं, दे० 'कोरो'।

कोरावत १५८ [वि०] गर्भ धारण की हुई गाय या भैंस (सं० कोरक–)।

कोरो–२०५, ३३४ [संज्ञा] वह लकडी या बांस जो छाजन में बडेर से ओरौती तक लगाई जाती है (सं० कोण ?)।

कोरा–१७९ [संज्ञा] पशुओं का सूखा भोजन (हि० कोरा– सं० केवल ?)।

कोलई-कोलवा–६ [संज्ञा] छोटा खेत जिस का आकार साधारणतः पतला और लम्बा हो—कोलई कोलवा का छोटा रूप है (सं० कोल = रास्ता)।

कोल्हाड़–२०२, २६९, २७५ [सज्ञा] वह स्थान जहाँ गुड पकाया जाता है। २७५ मुहा० **कोल्हाड़ बइठव**–कोल्हाड़ बन्द होना।

कोल्हू–२६९, ३२३ [सज्ञा] ईख या तेलहन पेरने का यन्त्र। २७५ मुहा० **कोल्हू गाड़ना**–कोल्हू को जमीन में स्थिर करना।

कोसा–२३२ [संज्ञा] मिट्टी का एक पात्र जो छोटे कटोरे की भांति होता है (सं० कोश = प्याला)।

कोसी–२३२ [संज्ञा] कोसा का अल्पा०।

कोहरा–२८३ [संज्ञा] गुलउर के अगले कडाह का गरम रस (सं० क्रोध–)। मुहा० **कोहरा करव**–अगले कडाह के गरम रस को पिछले कड़ाह मे डालना; ४०६ अनाज को अंगारे से कडरना।

कोहा–२२०,२२२ [संज्ञा] मिट्टी का कटोरे के आकार का एक पात्र (सं० कोश)।

कौवा–७६ [संज्ञा] एक पक्षी (सं० काक > प्रा० काओ; मुहा० **कौवा ढुकान**–ऐसी फसल जिसमें कौआ छिप जाय । यथा, कौआ ढुकान फसल ।

ख

खँड़हुला–६९ [संज्ञा] दवाँई के बाद डांठ के छोटे-छोटे टुकडे (सं० खण्ड–)।

खइलर–१९० [संज्ञा] मथानी (सं० क्ष्वेडा–?)।

खखरा–१९२ [संज्ञा] कुआं का गड्ढा; २४२ दौरा की बाहरी बुनावट ।

खटलुस–१९१ [वि०) कुछ खट्टा (हि० खट्टा ∠ सं० कटु?)।

खटाई–३४९ [संज्ञा] खट्टापन ।

खटिया–२४९-२६२ [संज्ञा] चारपाई (सं० खट्वा–)।

खड़हुला–४०५ [संज्ञा] अरहर की दाल के छोटे टुकडे (सं० खण्ड–)।

खड़िया–२३ [संज्ञा] खेत को खड़े-खड जोतना (हि० खड़ा)।

खड़े-खड़–२३ [वि०] लंबे-लंबे, लम्बाई की ओर से खेत जोतना ।

खड़े-खड़े–१२५,१४२ दे० 'खडे-खड'।

खड़ियाइब–२२५ [क्रि०] खडा करना ।

खत–३७३ [संज्ञा] कान के बगल के बाल का कटाव (फा० ख़त)।

खतियाइब–२९८ [क्रि०] चीनी के खाते को गोड़ना(सं० खात = गड्ढा)।

खनब–११ [क्रि०] दे० 'खोदब'।

खपड़ा–२१७, २३५ [संज्ञा]थपुआ (सं० खर्पर प्रा० खप्पर); २७४ मिट्टी का हौदी के आकार का एक बरतन जिस से कोल्हाड़ में सीरा उदहते हैं। २१७ मुहा० **खपड़ा पियाइब**–छाजन में एक खपड़े के ऊपर दूसरा खपडा इस प्रकार रखना कि छाजन अच्छी हो ।

खपड़ी–४०६ [संज्ञा] हॉड़ी का निचला आधा भाग जिस में लोग दाना भूजते हैं (सं० खर्पर)।

खपड़ैल–२१० [संज्ञा] खपड़ैल की छाजन ।

खपड़ोही–२६२ [संज्ञा] सर ।

खपरी–४०६ [संज्ञा] दे० 'खपडी'।

खपरैल–२१० [संज्ञा] दे०'खपड़ैल'।

खपसव–२११ [क्रि०] पैर से मिट्टी कॉडना; २२९ सानना ।

खपीच–३४२ [संज्ञा] बॉस के पतले-पतले नोकदार टुकड़े (हि० खपच्ची खर + पच्ची, तुर० कमची)।

खवसब–२११, २२९ [क्रि०] दे० 'खपसब'।

खवोर–१५७ [वि०] अधिक खाने वाली। यथा, खवोर गाय (सं०खाद्-)।

खम्हा–२२२ [संज्ञा] खंभा (सं० स्कम्भ– प्रा० खंभ)।

खम्हिया–२२२ [संज्ञा] दे० 'खम्हा'

खर–६८ [वि०] अत्यन्त पका; १६६ ४०६ तीक्ष्ण; १९१ अशुभ · २७९· २८४ कडा ।

खर कतवार–[संज्ञा] २९० कूड़ा-करकट (खर +)।

खरका–१८० [संज्ञा] चारागाह।

खरकौट–२११ [संज्ञा] करगह में प्रयोग आने वाली एक लकड़ी जो पाई को खर (ऊँचा) रखती है।

खरमास–३८४ [संज्ञा] चैत और पूस के महीने जो शुभ कार्य के लिए वर्जित हैं।

खरवा–१६१ [संज्ञा] खाल फटने का रोग (खर-खर से अनु०)।

खरिहान–६८, ९१ [संज्ञा] दे० 'खलिहान'।

खर्रा–१६१ [संज्ञा] थन के चमड़े का फटना दे० 'खरवा'।

खलपट–५ [संज्ञा] नीचा स्थान, यथा, खलपटे का खेत (हिं० खाल < सं० खात ?)।

खलार–५ [संज्ञा] वही।

खलिहान–६८ कटाई के बाद जहाँ अनाज एकत्र किया गया हो (सं० खल + धान्यं, नै० खलियान)।

खली–१७९, ३१९ [संज्ञा] तेलहन की सीठी (सं० खलि॰)।

खसर-खसर–२९४ [संज्ञा] रगड़ने पर खरखरपन का अनुभव (अनु०)।

खाखर–१९२ [संज्ञा] दे० 'खखरा'।

खाँगा–१७८ [संज्ञा] पशुओं के खुर का एक रोग जिस में घाव हो जाता है (हिं० खाँग)।

खाँचा–२८८ [संज्ञा] बड़ा-टोकरा।

खाँची–२८९ [संज्ञा] खाँचा का अल्पा०

खाड़ी–१७ [संज्ञा] गड्ढा (सं० खात)।

खाता–१२२, २११ [संज्ञा] खंदक; २९६ वह गड्ढा जहाँ चीनी जमाई जाती है; १२२ मुहा० **खाता मारना**-खाता बना कर उसमें चीनी या अन्य कोई चीज रखना।

खाद–७ [संज्ञा] उपज बढ़ाने के लिए खेत में दी गई वस्तु (सं० खाद्य) २५० किसी कीमती धातु में निम्न कोटि की धातु का मिश्रण; ७, १२० १५० यौ० खाद-पाँस (सं० खाद्य पांशु)

खारा–१७७ [वि०] नमकीन (सं० क्षार)।

खारी–२६४ [संज्ञा] एक प्रकार का नमक (सं० क्षार)।

खार्ही–१७ दे० 'खाड़ी'।

खाल–२६ [वि०] नीचा (सं० खात)। २६३, २६४ [संज्ञा] बिना पकाया चमड़ा; २६५ भेड़ बकरी का चमड़ा (सं० खाल)।

खालब–२४६ [क्रि०] गढ़ना, बनाना।

खालि–२६ [संज्ञा] दे० 'खाल'।

खिड़की–२६५ [संज्ञा] दरवाजे का छोटा रूप जो प्रकाश के लिए होता है (प्रा० खिडिक्किया)।

खियानत–२९५ [वि०] कमी या हानि (अ० खियानत)।

खियाब–१४ [क्रि०] घिसना (सं० क्षीयू)।

खिरपब–१२५ [क्रि०] गाड़ना।

खीपा–४२ [संज्ञा] लकड़ी का टुकड़ा

जाना। ७ **खेत कमाब**—खेत में खाद-पांस डाल कर उसे उपजाऊ बनाना। २२, २५ **खेत गिरब**—जोताई समाप्त होना। २३ **खेत चिरचिराइब**—खेत को बहुत हलके जोतना। १२७ **खेत बइठब**—खेत की नमी चली जाने पर खेत की मिट्टी का सूख कर दबना। ९७ **खेत बिदहब**—फसल की आरंभिक अवस्था में उसके विकास के लिए खेत को जोतना। १५१ **खेत भरब**—खेत में पानी देना। सींचना।

खेप—२१२ [संज्ञा] जितनी मिट्टी एक बार में ढोई या फेंकी जाती है (सं० क्षेप्य, प्रा० खेप्पो)।

खैंच—३४२ [संज्ञा] बाँस के फलठों के बारीक नोकीले टुकड़े।

खैंचड़ब—२७६ [क्रि०] छाँटना।

खैरा—१७४ [वि०] खैर रङ्ग वाला (सं० खादिर)।

खोंग—४०७ [संज्ञा] किसी नोकीली चीज से फटा हुआ कपडा।

खोंच—४०७ [संज्ञा] किसी नोकीली चीज से लगना (सं० कुच या क्षुद्–)।

खोंचब—११६ [क्रि०] सनई के पौधो को खडे-खड पानी में तेजी से ऊपर नीचे करते हुए धक्का देना ताकि सनई के रेशे ऊपर खिसक जायँ।

खोंटब—१९३ [क्रि०] पौधे के किसी भाग को चुटकी या नाखून की सहायता से नोचना (सं० खुड्)।

खोंप—१२४ [संज्ञा] किनारा या कोना (अनु० खोपना—धँसाना); मुहा० **खोंपा जोर बोइब**—ईख के एक पतांड को दूसरे पतांड से सटा कर बोना ऐसी बोआई को **खोंपा जोर बोआई** कहते हैं।

खोंपी—२७२ [संज्ञा] मस्तक के बालो का छूरे से कटा हुआ वह अर्द्ध चंद्राकार रूप जिसमे दोनो कोने निकले रहे। मुहा० **खोंपी काटब**—खोपी निकालना। **खोंपी काढ़ब**—वही।

खोंसब—४६ [क्रि०] अटकाना।

खोइया—२७०, २७२ [संज्ञा] ईख की खुज्झी जो रस निकल जाने पर बचती है। २७२ मुहा० **खोइया दहाइब**—खोइया में पानी डाल कर उसे पैरों से काँड़ना ताकि उस में का बचा हुआ रस निकल आवे।

खोइहरा—२७२ [संज्ञा] वह स्थान जिस मे खोइया दहाई जाती है।

खोखली—२४२ [वि०] पोली।

खोदब—२११ [क्रि०] किसी चीज से किसी स्थान मे गड्ढा करना; २७२ किसी चीज को छेड़ना या ठेलना (सं० क्षुद्–)।

खोदनी—२७२ [संज्ञा] वह लकड़ी जिससे आग खोदी जाती है।

खोभनी—२०९ [संज्ञा] पाई करने के लिए दोनों ओर के वे कैंचे जिन पर ताना फैलाया जाता है (सं० क्षोभणिका)।

खोर—१८२ [संज्ञा] गाँव से गोरुओ के बाहर जाने का मार्ग (हिं० खुर–)।

खोरि—१८२ [संज्ञा] वही।

खोरिया–४७,३२४ [संज्ञा] कटोरा (फा० खोरह)।
खोल–२४४ [संज्ञा] दौरी की वेनी जो खाखर में बैठाई जाती है (फा० ख़ोल)।
खोलऊ–२५१, ३५६ [वि०] खोखला (खुल)।
खोलरा–८९ [संज्ञा] मटर के दाने का छिलका।

ग

गंगा-जमुनी करब–२० मुहा० नाधा को महदेउवा के दोनों ओर समतोल रखना।
गंजी–६० [संज्ञा] कन्द, शकरकन्द।
गँड़हिया–१३३ [वि०] गंडा वाली दे० 'गंडा'।
गंडा–१३३ [संज्ञा] ज्वार के बाल जिस में दाने बराबर से न हों (सं० गंड) १७८ [संज्ञा] गाय बैल की पूँछ में गाँठ पड़ जाना।
गँड़पतिया–१४६ [संज्ञा] प्याज का एक रोग।
गँड़सा–७८,१२२,२६८ [संज्ञा] कोयर काटने का औजार (सं० गंडाशक = गांठ काटने वाला)।
गँड़ास–११६, १२२, १७६ [संज्ञा] दे० 'गँड़सा'।
गँभीर–४४ [वि०] भली प्रकार भरी हुई कियारी (सं० गम्भीर)।
गउँखा–२१३ [संज्ञा] झरोखा (सं० गवाक्ष)।
गवँखा–२१३ [संज्ञा] वही।
गहँकी–३४९ [संज्ञा] क्रय करने वाला (सं० ग्राहक)।
गइर-गइरा–२१२ [संज्ञा] वह गड्ढा जहाँ से दीवार के लिए मिट्टी खोद कर निकाली जाती है। (सं० गर्ता–)। मुहा० गइरा तोरब–गइर से मिट्टी निकालना।
गउँजब–९० [क्रि०] फैलना (गुंज)।
गउसारि–१६२ [संज्ञा] गाय बैल बांधने का स्थान (सं० गोशाला–)
गगरी–२३३ [संज्ञा] मिट्टी का घड़ा (सं० गर्गरी)
गगलाब–९० [क्रि०] मटर की लतर का अत्यधिक विस्तार करना।
गछुआ–२६१ [वि०] गाँछ कर बनाया हुआ।
गजाब–९०,२९३ [क्रि०] गाज (फेन) छूटना।
गडढा–२६,२४० [संज्ञा] गड्हा (सं० गड–)।
गड़उवा–४०७ [वि०] जो गाड़ी जा सके (हिं० गाड़ना)।
गड़हा–४१ [संज्ञा] दे० 'गड्ढा'।
गड़ारी–३४ [संज्ञा] पुरवट में वह यन्त्र जिस पर नार आता-जाता है।
गड़ेरिया–५६,३१४ [संज्ञा] एक जाति विशेष जो भेड़-बकरी पालती है (सं० गड्डारिका, प्रा० गड्डुरिया)।
गड़ेना-गड़ेन्ना–२६९ [संज्ञा] गेंड़ी या गड़ेरी रखने का स्थान विशेष।
गढ़–२९५ [संज्ञा] समूह, किसी चीज का ढेर (सं० गड्ड)।
गढ़नी–२२७ [वि०] गढ़ी जाने वाली, वह मिट्टी जो बरतन गढ़ने के काम में आती है।

गढ़ब–२२७,२३४,२४५ [क्रि०] गढ़ना, बर्तन बनाना (सं० घट्–)।

गतार–२७६ [संज्ञा] बोझ बाँधने वाली रस्सी (सं० गन्त्री)।

गदरा–८९, ४०६ [वि०] अध पका।

गदराब–७८ [क्रि०] बाल या फली में गूदा या दाने का पुष्ट होना (अनु० गद-गद)।

गदहिला–१४४ [संज्ञा] आलू में लगने वाला एक कीड़ा (सं० गर्दभी प्रा० गद्दही)।

गन्हि–५६ [संज्ञा] गंध (सं० गंध)।

गन्होरी–१०९ [संज्ञा] एक मक्खी जो धान की फसल के लिए हानिप्रद है।

गफ–३२० [वि०] घना (फा० ग़फ़्स)।

गमला–२३३ [संज्ञा] मिट्टी का एक पात्र जिसमें पौधे लगाते हैं।

गमहा–१६६ [वि०] गमखोर या परिश्रम से न घबड़ाने वाला। यथा, गमहा बैल (फा० ग़म–)।

गम्हीर–२४० [वि०] भली प्रकार सिंचाई की हुई कियारी (सं० गम्भीर)।

गरदा–११७ दे० 'गर्दा'।

गरम–१९२ [वि०] तपाया हुआ (फ़ा० गर्म)

गरवध—४२ [संज्ञा] गला (सं० गल-) मुहा० **गरवध बाँधब**–एक नाली का मुँह बन्द करके पानी का बहाव दूसरी नाली में करना।

गराँव–१७१, ३८२ [संज्ञा] दे० 'गेराँव'।

गरियार–१६६ [वि०] न चलने वाला बैल, अड़ियल (सं० गलि–)।

गरी–७२ [संज्ञा] ओसाते समय गिरी हुई गाँठो द्वारा बनाया हुआ वह घेरा जिसके अन्दर अनाज गिरता है। मुहा० **गरी काटब**–गरी बनाना।

गर्दा–३१५ [संज्ञा] कूड़ा, कचड़ा, धूल (फ़ा० गर्द)।

गलारा–४२ [संज्ञा] मतबरहा का वह मुँह या मुँहकड़ा जहाँ से बरहा निकलता है।

गलिया–११२, २९० ३९२ [संज्ञा] अँगूठा और तर्जनी के बीच का स्थान अथवा उनके घेरे में जितना सामान आ सके।

गहना–२३३,२३४ [संज्ञा] मिट्टी का एक छोटा सा डंडा जिसके सहारे कुम्हार बरतन बनाता है (सं० ग्रह्–)।

गहब–४४ [क्रि०] पकड़ना (सं० ग्रहण); २३३ गहना द्वारा बरतन ठीक करना। ४४ मुहा० **गहि के कियारी देब**–भली-भाँति कियारी भरना।

गहुआ–३४६ [संज्ञा] सोनारो का पकड़ने का एक औजार (सं० ग्रहण–)।

गाँछब–३०५ [क्रि०] गूँथना।

गाँज–६८ [संज्ञा] दाने के लिए एकत्र अन्न की राशि (फ़ा० गंज) मुहा० **गाँज फोरब**–गाँज फैलाना।

गाँठ–७२ [संज्ञा] जौ या गेहूँ के डंठल की गाँठे (सं० ग्रंथि); २४३ लकड़ी की गाँठ। २७७ मुहा० **गाँठ फोरनेकी साइत करब**–ईख का नवा होना; **गाँठ मारब**–जौ-गेहूँकी गांठ अलग करना।

गाज–२२६ [संज्ञा] फेन (अनु० गज-गज)

गाड़–२०० [संज्ञा] कुएँ की जोड़ाई के लिए एक प्रकार की अर्द्ध वृत्ताकार ईंटे (सं० गड); ३४६ सोनार की दरी (एक औजार) में बने गड्ढे।

गाड़न–३४३ [संज्ञा] दौरे की पेंदी की एक विशेष प्रकार की बुनावट।

गाड़ा–२५४ [संज्ञा] एक छोटी बैलगाडी जो खाद आदि ढोने के काम में आती है (प्रा० गड्डिका)।

गाड़ी–२५४ [संज्ञा] बैल गाडी; मुहा० **गाड़ी जोतना**–गाडी में बैल को जोतना। २६१ **गाड़ी तुलाइब** या **गाड़ी तेलियाइब**–पहिया क धुरी में तेल आदि लगा कर पहिया को पुनः ठीक-ठीक चढ़ाना।

गाढ़ा—२३८ [वि०] घना (सं० गाढ–)।

गात–३४३ [संज्ञा] दौरे के मेडरे मे बांस के फल्ठे की जो चौडी पत्तियां लगाई जाती हैं (सं० गात्र)।

गादा–७८ [संज्ञा] गदराई हुई जौ की बाल का सत्तू।

गाभ–१५८ [संज्ञा] गर्भ।

गारा–२४१ [संज्ञा] वह गीली मिट्टी जिससे आवां बन्द करने के लिए लीपा जाता है (हि गारना सं० गालन)।

गावा–३४३ [संज्ञा] दौरे की बिनावट में एक साथ उठाई जाने वाली पत्तियां।

गाही–१२१,३८६ [संज्ञा] पांच का समूह (सं० ग्राहिका)।

गिरदा–१२२ [संज्ञा] जोन्हरी का एक भेद।

गिरदानक–३१३ [संज्ञा] करघे की वह लकड़ी जो लपेटन की सूराख में उसे घुमाने के लिए लगी रहती है (फ़ा० गिर्द)।

गिलमिट २४२ [संज्ञा] लकड़ी मे सूराख करने का एक औजार।

गिलई–११२ [संज्ञा] गीलापन (फ़ा० गिल वा सं० गरण = तरहोना)।

गीदड़–४८ [संज्ञा] सियार (फ़ा० गीदी = डरपोक)।

गुण्डी–१५६ [संज्ञा] छोटी-छोटी सींगो वाली गाय।

गुइँठ–११० [संज्ञा] पुआल का बोझ (सं० ग्रन्थि)।

गुजहिली–२५२ [संज्ञा] लकड़ी की कील।

गुठला–३७० [वि०] कुण्ठित।

गुठली–३७१ [संज्ञा] आम का बीज (सं० गुटिका)।

गुड़–२८६ [संज्ञा] राब (सं० गुड)। मुहा० **गुड़ डोलाइब**–हौदे की राब को डंडे से मथना; **गुड़ मारब**–वही; २८७ **गुड़ करब**–गुड़ को कोल्हाड़ से घर में ला कर रखना।

गुदरायल–८९ [वि०] गुदराया हुआ दे० 'गदगब'।

गुदरी–८९ [संज्ञा] मटर के हरे दाने दे० 'गादा'।

गुद्दी–२०० [संज्ञा] गूदा।

गुमटियाब–३९९ [क्रि०] एक में लिपट जाना, गुमटियाना।

गुरची–४०० [संज्ञा] गाँठ (सं० गुल्म?)।

गुर्रा–२३, २६ [संज्ञा] चरखी या

गड़ारी के बीच की लकड़ी।

गुरिहआइब–२७६ [क्रि०] गूरही लपेटना दे० गूरही।

गुलउर–२०२ [संज्ञा] गुड पकाने का स्थान (सं० गुड पुट–); २७१ गुड पकाने का भट्ठा।

गुलाबा–२५२ [संज्ञा] एक प्रकार का बडा खीला जो दरवाजो मे जडा जाता है (फा० कुल्लाबः)।

गुलेबंद–३५६ [संज्ञा] स्त्रियो के गले का एक आभूषण (फा० गुलूबंद)।

गुल्ला–२६, २९ [संज्ञा] लकडी का छोटा टुकडा (गोल–, गुडिका)। २७७ ईख का वह टुकड़ा जो एकबार में चूसने के लिये दाँत से काटा जाता है।

गुल्ली–१६, [संज्ञा] एक छोटी लकडी।

गूँज–६४, ६५ [संज्ञा] खुरपा या हँसुआ का वह नोकीला भाग जो बेंट के अन्दर रहता है (सं० गुज)।

गूँजा–३५६, ३५७ [संज्ञा] हँसुली के दोनो किनारो के अतिम भाग मे बनी छोटी हुँडी; ३६४ नथिया का वह किनारा जो कोंढ़ मे डाला जाता है।

गूजर–११६ [संज्ञा] सनई के पौधे के सिरे का भाग जो पशुओं को खिलाया जाता है।

गूदा–३२९ [संज्ञा] फल का गुज्झा।

गूदी–३९० [संज्ञा] गूदा का स्त्री०।

गूरी–११६ [संज्ञा] सनई का वह ऊपरी छिलका जो सनई सडने पर फेंक दिया जाता है; ४०६ [संज्ञा] जौ का भूसी रहित दाना।

गूरहन–२७६ [संज्ञा] गूरही द्वारा जो बंधन बनता है।

गूरही–२८, २९,२७६ [संज्ञा] बिना बटी हुई रस्सी।

गूलब–४०७ [क्रि०] गूँथना, सिलना।

गेंठी–३४२ [संज्ञा] बाँस के फल्ठोका गाँठ वाला भाग (सं० ग्रंथि)।

गेड़सा–१२२, ४०६ [संज्ञा] दे० 'गँडसा'।

गेंड़ा–११९, १७९, २७६, २८१, २८२ [संज्ञा] ईख के माथ पर की पत्तियाँ (सं० गंड)।

गेड़ास–१२२ [संज्ञा] दे० 'गँडसा'।

गेंड़ियाइब–२४३ [क्रि०] छोटे-छोटे गेंडी सदृश टुकडे काटना।

गेंड़ी–२६९ [संज्ञा] ईख के छोटे-छोटे टुकड़े (सं० काण्ड)।

गेहूँ–७५ [संज्ञा] एक अनाज (सं० गोधूम)।

गेजार–१६० [संज्ञा] मुँह का गाज जो पशुओं के मुँह से फेन की तरह निकलता है।

गेठुआ–२१० [संज्ञा] जुलाहे करगह से पहिला थान उतारते समय बय के पास थोड़ा सा कपडा छोड कर तब थान काटते हैं इसी छूटे हुये भाग को गेठुआ कहते हैं, दूसरा थान चढ़ाते समय इसी मे उसकी पाई जोड देते हैं। ऐसा करने से पुनः बय नहीं भरना पडता (सं० ग्रथ्, ग्रन्थि)।

गेराँव–६९, ३८२ [संज्ञा] पशुओं के गले में उन्हें बांधने के लिए जो

गोल–९९ [संज्ञा] नीचक: मुहा० गोला गलाइब–नीचक को कुएँ में बैठाना।

गोलोचन–२६२ [संज्ञा] एक वस्तु जो औषध के काम में आती है; यह गाय की कनपटी के समीप भीतर पाई जाती है।

गोहरा, गोहरी–२४० [संज्ञा] उपला (गो+इल्ल प्रा० गोइल्ल)।

गोहुँअन–१६४ [वि०] गेहूँ सदृश रंगवाला।

घ

घघरा–२२४ [संज्ञा] कोल्हू में वह घेरा जिसे कातर स्पर्श करता है। (हिं० घेरा सं० ग्रहण? तु० घांघरा)।

घघाव–९० [क्रि०] विस्तार करना, यथा, 'मटर घेघाल बा'।

घटिया–१७३, २९८ [वि०] जो अच्छा न हो।

घट्ठा–४१ [संज्ञा] हाथ में रगड़ से घट्ठा पड़ना (सं० घृष्ट)।

घड़रोज–४८ [संज्ञा] एक जंगली पशु-नीलगाय।

घर–२७ [संज्ञा] गड्ढा या स्थान।

घरिया–२२३, ३२८ [संज्ञा] मिट्टी का एक छोटा पात्र (सं० घटिका या घटक; ३४५ चांदी गलाने के लिए मिट्टी का बनाया गया विशेष पात्र।

घरी–१४५ [संज्ञा] प्याज की बेहन बैठाने के लिए कुदार द्वारा बनाई गई पतली नाली।

घर्रा–२६,२९,१९६ [संज्ञा] सींचने का एक साधन। यह पुरवट की तरह चलाया जाता है अन्तर यह है कि पुरवट बैलों द्वारा चलाया जाता है और घर्रा आदमियों द्वारा (अनु० घरर घरर)।

घसनहरि–६४ [संज्ञा] घास काटने वाली स्त्री।

घसियारा–६४ [संज्ञा] घास काटने वाला पुरुष।

घाँटी–२६२ [संज्ञा] गले की नली (सं० घंटिका)।

घात–३६८ [संज्ञा] निशान, गड्ढा (सं० घात)।

घानी–२२६ [संज्ञा] तेल पेरने के लिए जितनी सामग्री एक बार में कोल्हू में डाली जाती है (सं० ग्रहणिका)। मुहा० घानी जमब–घानी का दबना। घानी बैठब–घानी का पिसकर थोड़ा हो जाना। घानी लगाइब–कोल्हू में घानी डालना।

घास-पात–१०४ [संज्ञा] घास आदि।

घिरउँच–२२५ [संज्ञा] घड़ा रखने का एक ऊँचा स्थान(*घटोच्चिका)।

घिसनब–१८० [क्रि०] जमीन छूकर चलना (घसीटना सं० घर्षण)।

घुंघुरू–२६१ [संज्ञा] चाँदी का एक पोलदार सामान जिसमें ध्वनि के लिए कुछ डाला रहता है।

घुंडी–२०७, २६१, २६९ [संज्ञा] गोले आकार की एक गाँठ (सं० ग्रंथि ?)।

घुर्री–२२१ [संज्ञा] कुम्हार के चाक पर का छोटा गड्ढा जिस में डंडा डालकर चलाया जाता है।

घुट्ठा—१८२ [संज्ञा] चरने वाले पशु जहाँ एकत्र होते हैं (सं० गोष्ठ—)।
घुड़का—१७८ [संज्ञा] दे० 'घुरका'।
घुन—२४३ [संज्ञा] एक प्रकार का कीड़ा जो लकड़ी में लगता है (सं० घुण)।
घुनघुना—२१० [संज्ञा] बच्चों का एक खिलौना जो घुन-घुन बजता है (अनु०)।
घुरई—३८ [संज्ञा] मोट के मुँह पर लगाई जाने वाली लकड़ियाँ।
घुरका—१७८ [संज्ञा] चौपायों की स्वास की बीमारी (अनु० घुर घुर)।
घुसब—२०९ [क्रि०] ठेलकर डालना।
घुरी—२८,३३,३६ [संज्ञा] धुरी।
घुरीदार—३३ [वि०] धुरी युक्त।
घुरसी—२३१ [संज्ञा] कुम्हार के चाक में चलाने के लिए जो सूराख होता है, तु० घुच्ची।
घुलारी—४२ [संज्ञा] सिंचाई के लिए बनाई गई पतली नाली।
घुल्ला—२८,२९ [संज्ञा] एक छोटी लकड़ी दे० 'गुल्ला'।
घूमजाब—२९३ [क्रि०] पुरानी अवस्था में हो जाना, लौट जाना, यथा, शक्कर घूम गई (हिं० घूमना)।
घूर—७३ [संज्ञा] खाद के लिए एकत्र गोबर का ढेर।
घेंघा—१७८ [संज्ञा] गले का वह स्थान जो बाहर निकला रहता है, गला सूजने का एक रोग (हिं० घेंघा)।
घोंघियाब—९३ [क्रि०] चने में एक प्रकार का कीड़ा लगना (हिं० घोंघी)।
घोंघिलाब—९३ [क्रि०] वही।
घोंघी—२३२ [संज्ञा] वर्षा से बचने के लिए कम्बल का एक प्रकार का बनाया हुआ पहनावा।
घोंचिया—२२८ [संज्ञा] तेल नापने का एक बहुत छोटा मिट्टी का पात्र।
घोंची—१५६ [संज्ञा] वह गाय या बैल जिसकी सींगें आगे की ओर झुकी हों।
घोंठिल—६१,२४२ [वि०] जिसकी धार तेज न हो।

च

चंगुल—१३३ [संज्ञा] ज्वार की जड़ जो चंगुल के सदृश होती है (फा० चंगुल); मुहा० चंगुल फेंकब—जड़ फेंकना।
चँटगा—२९६ [संज्ञा] चटाई।
चँटब—२९६ [क्रि०] फैलाना।
चँड़वाही—१९६ [संज्ञा] कुआँ खोदने के बाद उसकी मिट्टी निकालना।
चंदक—३५५ [संज्ञा] एक चंद्राकार आभूषण जो स्त्रियाँ माँग पर पहनती हैं (सं० चन्द्रक)।
चंदर—१९७ [संज्ञा] कुएँ की खोदाई के समय जिस सोते से अधिक पानी निकलता है; मुहा० चन्दर खुल जाब—कुएँ के किसी सोते द्वारा विशेष पानी निकलना।
चंदवा—३५५ [संज्ञा] दे० 'चंदक'।
चंबलपारी—१५६ [संज्ञा] चंबल नदी के पास वाली गाय—चंबल नदी विंध्य पर्वत से निकल कर इटावे के समीप यमुना में मिलती है (सं० चर्मण्वती—)।
चँवरी—१५६ [संज्ञा] चँवर सदृश पूँछ वाली गाय (सं० चामर)।
चकडंडा—२३१ [संज्ञा] कुम्हार का डंडा जिस से वह चाक चलाता है (सं० चक्र + दण्ड)।

चकउँड़ि–२३१ [संज्ञा] दे० 'चकउढ़'।

चकउढ़–२३१ [संज्ञा] कुम्हार का कटोरे के आकार का एक पात्र विशेष जिसे चाक के पास पानी भर कर रखते हैं (सं० चक्र भाण्ड)।

चकती–३८ [संज्ञा] कपड़े या चमड़े आदि में जोड़ के रूप में लगाया हुआ टुकड़ा (सं० चक्र पत्र)।

चकरा–२७३ [संज्ञा] भेली बनाने का एक गोलाकार विशेष स्थान (सं० चक्र)।

चकरी–४०४ [संज्ञा] दाल आदि दरने के लिए चक्की सदृश यंत्र सं० चक्री)।

चकली–१२३ [वि०] चौड़ी (चक्र)।

चकवढ़ि–२३१ [संज्ञा] दे० 'चकउढ़'।

चक्कस–२६८ [संज्ञा] पटहार का एक औजार (फा० चकस=चक्का)।

चक्का–१ [संज्ञा] मिट्टी का बड़ा टुकड़ा (सं० चक्र–); २५६ पहिये का चक्का।

चटाई–२६० [संज्ञा] खजूर की बनी हुई बिछाने योग्य एक चीज।

चढ़ब–१६२ [क्रि०] ऊपर या आगे बढ़ना। मुहा० चढ़िके बियाब–अधिक दिन पर गर्भ धारण करना।

चढ़ान–४६ [संज्ञा] पानी के चढ़ाव के समय की सिंचाई।

चनबागर–२ [संज्ञा] ऐसी मिट्टी जहाँ पानी शीघ्र सूख जाय; ६ [संज्ञा] ऐसा खेत जिसमें चनबागर मिट्टी हो।

चनहटा–९ [संज्ञा] जिस खेत से चना कटा हो।

चनेरुआ–२६३ [संज्ञा] कलेजा (चन्द्र-रूप–)।

चन्न होब–२ [क्रि०] पानी का सूखकर लुप्त हो जाना।

चन्नुल–१७५ [संज्ञा] जिस भैंस की चाँद पर बाल न हो।

चपनी–२११ [संज्ञा] कपड़े को मांज करते समय एक लकड़ी-विशेष जिसे जुलाहे व्यवहार में लाते हैं; ३२० [संज्ञा] कम्मल बुनने का लकड़ी का एक औजार (सं० चपन=कुचलना)।

चबायल–७९ [वि०] चबाया हुआ, सूखा हुआ।

चबाब–९० [क्रि०] सूखना।

चबैना–४०६ [संज्ञा] भुना हुआ अन्न (सं० चर्व्य+अन्न)।

चमड़ा पकाइब–२८४ मुहा० चमड़ा पकाने के लिए उसे बड़े के रस में रखना।

चभोरब–४४ [क्रि०] डुबोना। यथा, चभोर के कियारी देब (भली भांति कियारी में पानी देना)।

चमरख–३१७, ३८०, ४०१ [संज्ञा] चमड़े या मूँज का एक सामान जो चरखे में तकुआ के पास लगा रहता है और जिस में तकुआ घूमता है (चर्म+रक्षा)।

चमोटा–२७१ [संज्ञा] नाई का एक चमड़े का टुकड़ा जिस पर वह छूरा पहँटता है (चर्म+पुट–)।

चमोटी–२६७, २७१ [संज्ञा] दे० 'चमोटा'।

चमौधा–२६५ [वि०] चमड़े का बना हुआ जूता (सं० चर्म–)

चम्बर्ली–१५४ [संज्ञा] दे० 'चंगलपानी'।

चम्मली–१६२ [संज्ञा वही]।

[संज्ञा] खटिया (चतुर्+पाद वा चत्वारि+पादिका)।
चारा-१७९ [संज्ञा] पशुओं के खाने की वस्तु (फ़ा० चरान)।
चारागाह-१८० [संज्ञा] चरने का स्थान (फ़ा० चरागाह)।
चाल-२८४ [संज्ञा] चलने का भाव; मुहा० चाल आइब-शीरे में उठान आना (सं० चल्)।
चालब-२६५ [क्रि०] चलनी या झन्ने से किसी चीज को चालना; २८४ एक कड़ाह से दूसरे कड़ाह में रस डालना।
चिंगुरब-२०८, ४०७ [क्रि०] सिकुड़ना।
चिउँटा-१७८ [संज्ञा] एक जीव विशेष (हिं० चींटा)।
चिउरी-७८ [संज्ञा] अधपके जौ का भुनाया हुआ दाना (सं० चिपिट वा चिपिटक)।
चिकनाउब-३९३ [क्रि०] चिकना करना।
चिक्नी-३,२२७ [वि०] चिक्ना का स्त्री०। यथा, चिक्नी माटी।
चिक्कन-४ [वि०] चिक्ना (चिक्कण)।
चिचिड़ा-२२८ [संज्ञा] एक जंगली क्षुप (सं० चिचिण्ड)।
चिचुकब-१२९ [क्रि०] सूख कर सिकुड़ जाना।
चिटचिट-१९१ [संज्ञा] चिटकने की ध्वनि (अनु०)।
चितकबरी-१५५ [वि०] कई रंग की मिली हुई (सं० चित्र+कर्बुरक-)।
चित्रा-७४ [संज्ञा] एक नक्षत्र। कहा० चित्रा गेहूँ सवाती जवा, गेरुई टाहा की है दवा।
चित्रा के बरसले तीन का नास, साली सक्कर मास।
चिपरी-२४० [संज्ञा] छोटी उपली।
चिप्पा-६२ [संज्ञा] मिट्टी के छोटे और पतले टुकड़े (सं० चिपिट)।
चिप्पी-६२ [संज्ञा] चिप्पा का अल्पा०।
चिमचा-२४५ [संज्ञा] आग उठाने का औजार (सं० चिपिट वा फ़ा० चमचा)।
चिमटी-२४६, २७१ [संज्ञा] बारीक चीज पकड़ने का औजार (सं० चिपिट)।
चिरई-४१ [संज्ञा] पक्षी (सं० चटक तु०, हिं० चिड़िया)।
चिरचिराब-२१२, २२४ [क्रि०] फटना; पतले-पतले दरार पड़ना (अनु० चिर चिर)।
चिरुआँ, चिरुवाँ-२४२ [संज्ञा] एक प्रकार का आरा (सं० चीर्)।
चिहराब-२५४ [क्रि०] फटना, दरार पड़ना।
चींसी-२४२ [संज्ञा] दे० 'चींहर'।
चींहर-२४२ [संज्ञा] बांस के फल्ठे के उस ओर का भाग जिधर गांठ नहीं रहती।
चीकट-२२७ [संज्ञा] तेल की काटि या मैल।
चीर-४०७ [संज्ञा] फटा या चीरा हुआ कपड़ा (सं० चीर); ४१० मूँज का चीर कर बनाया हुआ पतला-पतला भाग।

चीरब–२४६ [क्रि०] फाड़ना । यथा, लकड़ी चीरना (हिं० चीरना) ।

चुँइयाँ–४०५ [संज्ञा] चूनी का छोटा बारीक रूप ।

चुअना–२२३ [संज्ञा] छाजन में जहाँ से पानी चूता है (सं० च्यवन) ।

चुअब–४१ [क्रि०] चूना, रिसना ।

चुकचुकाना–३ [क्रि०] चूना, पसीजना (अनु०) ।

चुक्कड़–२२३ [संज्ञा] ताडी पीने के लिये प्रयोग मे आने वाला एक छोटा मिट्टी का पात्र (तु० कुच्चड़, कुज्जड़ कुल्हड) ।

चुटकियाइब–१५० [क्रि०] चुटकी से पोस्त के पौधो को उखाड़ना ।

चुटकी–११२ [संज्ञा] एक चुटकी मे धान के जितने पौधे बोने के लिये पकडे जा सकते हैं ।

चुट्टी–१६१ [क्रि०] दे० 'चोरकटि' ।

चुपड़ब–२६१ [क्रि०] किसी गीली चीज को किसी सामान पर अच्छी तरह लगाना ।

चुपरब–१६० [क्रि०] चुपड़ना, लेप लगाना ।

चुल्ला–१७२ [संज्ञा] लोहे का गोल छल्ला (सं० चूडा) ।

चुहब–२७७ [क्रि०] चूसना (सं० चूषण) ।

चुहल–५२ [संज्ञा] मनोरजन, चहल-पहल ।

चूड़ी–२७० [सज्ञा] बालटू कसने के लिए चूडी सदृश जो पेरोई की जाती है (स० चूडा) ।

चूतर–३२५ [संज्ञा] शरीर का एक विशेष स्थान जो मलाशय से संबंधित होता है सं० चूति + तल) ।

चूनी–२४२, ४०५ [संज्ञा] दाल के छोटे छोटे बारीक टुकड़े (सं० चूर्णिक) ।

चूर–२१२ [संज्ञा] पुराने ढंग के दरवाजे मे नीचे एक कोने में कुछ निकला हुआ भाग जिसके सहारे दरवाजा घुमाया जाता है (हि० चूल) ; २५६ बैलगाडी की पुट्ठियो को आपस मे बैठाने के लिए लकडी का एक निकला हुआ भाग; ३२४ [संज्ञा] जाठ का ऊपरी नोकीला भाग ।

चूरा–२५६ [संज्ञा] दे० 'चूर' ।

चूरी–७८ [संज्ञा] दे० 'चिउरा' । ३४३ [संज्ञा] दौरे में पाँजर से मेडरा तक का भाग ।

चूल्हा–३९३ [संज्ञा] किसी चीज को पकाने के लिये आग जलाने का वह साधन जिसमे एक बरतन रखने का स्थान रहता है (सं० चुल्लि) ।

चूल्हि–३९३ [संज्ञा] चूल्हा से बड़ा जिस पर दो बरतन रक्खे जा सकते हैं ।

चेका–४९ [सज्ञा] मिट्टी या ईंटा का छोटा टुकड़ा ।

चेनुली–१५६ [संज्ञा] जिस गाय की चाँदी या मस्तक पर कोई चिह्न हो (सं० चन्द्र –)

चेफ–२७७ [संज्ञा] ईख चूसने पर बची हुई सीठी ।

चेहराब–२९५ [क्रि०] दे० 'चिहराब

चैतउआ–९६ [वि०] चैत वाली । यथा, चैतउवा अरहर (सं० चैत्र-) ।

चैती–११,९६ [संज्ञा] चैत वाली फसल।

चैला–२४२ [संज्ञा] लकड़ी का चीरा हुआ टुकड़ा।

चैली–१४;२४२[संज्ञा] चैला का अल्पा०

चोंगा–२४४–[संज्ञा] बास का एक टुकड़ा जिसके एक ओर चम्मच की भांति कटा रहता है, विवाह के अवसर पर इससे लावा डालते हैं (फा० चोग़ह)।

चोकटी–४०३ [संज्ञा] चोकर में जब कुछ गूदा लगा रह जाता है तो उसे चोकटी कहते हैं।

चोकर–४०३ [संज्ञा] गेहूँ का छिलका जो आटा चालने पर निकलता है; मुहा० **चोकर निहारब**–जात का आटा पूरा निकल जाय इस उद्देश्य में जाँत में थोड़ा चोकर डाल कर पुनः पीसना।

चोकरब–१५८ [क्रि०] गाय का बरदाने के लिये चिल्लाना।

चोख, चोखार–२८७[वि०] नोकीला (सं० चोक्ष)।

चोखियाइब–२४२ [क्रि०] नोकीला बनाना।

चोटा–२१ [संज्ञा] पुआल या सरपत की चोटी की तरह गुही हुई चटाई जो कुएँ की तिलारी पर रखी जाती है, इससे कूँड़ में चोट नहीं लगती; २७३ ईख की खोइया के रस का शीरा; २९५,२०२ चीनी से चुआ हुआ शीरा।

चोट्टी–१६१ [संज्ञा] जो गाय पूरा दूध नहीं देती थन में चुरा रखती है।

चोत–२२५ [संज्ञा] गोबर का चोत।

चोरकटि–१६१ [संज्ञा] दे० 'चोट्टी'।

चोसा–२६७ [संज्ञा] सँड़सी की भांति एक औजार।

चौढ़ा–२६,२१,४० [संज्ञा] वह स्थान जहाँ कुएँ से मोट निकाल कर गिराते हैं।

चौक–२८९,४०९ [संज्ञा] चौक के आकार की बुनावट (सं० चतुष्क प्रा० चउक्क)।

चौकली–२८४ [संज्ञा] चारपाई की एक प्रकार की बुनावट (सं० चतुः कलिका)।

चौकी–२५६ [संज्ञा] एक चौकोर आभूषण (चतुष्की)।

चौखट–२१२ [संज्ञा] दरवाजा की वह लकडी जो नीचे की ओर रहती है (चतुर्+काष्ठ)।

चौखटा–२४२ [संज्ञा] आरे को खींचने के लिए उसके चारों ओर लगी लकडी।

चौपहल–१४,२१२ [वि०] चार पहल वाला (चौ+पहल)।

चौमासा–७,७४,१५० [संज्ञा] चारमास अर्थात् वर्षा भर जोत कर तैयार किए जाने वाले खेत (सं० चातुर्मास्य)।

छ

छँटनी–१२,१०४ [संज्ञा] वर्षा में घास-पात निकालने का कार्य (हि० छाँटना); १२ मुहा० **छँटनी मारब**–छँटनी करना।

छकली–२८४ [संज्ञा] छ सोक की बुनावट (सं० पट्कलिका)।

छक्का–२६४ [संज्ञा] सोने के छोटे-छोटे पत्तर के टुकड़े (सं० पट्कं प्रा० छक्को)।

के लिए एक प्रकार का रस्सी का फन्दा।

छिकुला–२०४ [संज्ञा] रहठा की पतली-पतली कंछियाँ।

छिटउववा वा छिटउवा–२७२ [वि०] छिछला कड़ाह यथा, छिटउवा कड़ाह।

छिटऊ–११४,२७६ [वि०] छीटी हुई यथा, छिटऊ पतई या छिटऊ पुआरा (सं० क्षिप्त)।

छिटकाइब–२०९ [क्रि०] छिटकना का स०, अलग-अलग करना, उधेरब (सं० क्षिप्)।

छिड़काव–१२२ [संज्ञा] छिड़कने का कार्य (सं० क्षिप्)।

छिटिकब–७३ [क्रि०] छिटकना (सं० क्षिप्)।

छिनुआ हल–१२३ [संज्ञा] ईख की बोआई में वह हल जो कूँड़ बनाता है (सं० छिन्न–)।

छिबरी–१५५ [संज्ञा] कई रंग वाली गाय।

छिबुनहिया, छिबुनही–१५७ [संज्ञा] जो गाय केवल अच्छी-अच्छी चीजें खाना चाहती है।

छिमउट–९१,९८,१०१ [संज्ञा] मटर, अरहर, सरसों आदि की वह छीमी जिसका दाना दँवाई से न निकला हो (सं० शिम्बी+पुट)।

छिरकी–१७२ [संज्ञा] बैल के दोनों ओर की दोगाही।

छींटा–१९६ [संज्ञा] वह झउआ जिस से कुएँ की चँडवाही के समय मिट्टी निकालते हैं; २८९ सरकंडा की एक प्रकार की चटाई जिस पर रस छाना जाता है।

छीनब–१२३ [क्रि०] काटना।

छीना–२३३ [संज्ञा] मिट्टी का एक छिछला पात्र जिसमें कुम्हार राख रखता है (सं० क्षीण–)।

छीनी–२६७ [संज्ञा] दे० 'छेनी'।

छीबुनि–१५७ [वि०] दे० 'छिबुनही'।

छीमी–८९,९१,९८ [संज्ञा] फली (सं० शिम्बी); २० रहँट के चाक के किनारे सिघाड़ेदार कटे हुये होते हैं जिन्हे छीमी कहते हैं।

छीरा–२०५ [संज्ञा] सूत के बने हुये गोले में सूत के थोड़े-थोड़े समूह (हि० छोर=किनारा सं० छोरण ?)।

छीलन–२४२ [संज्ञा] बाँस आदि का छिलका जो छीलने पर निकलता है (सं० छल्ल)।

छीवन–२३१ [संज्ञा] दे० 'छेवन'।

छुआइब–१६१ [क्रि०] स्पर्श कराना हिं० छुआना (छुअब का प्रे०, सं० छुप्)।

छुच्छ–२५ [वि०] दे० 'छूँछ'।

छुछूी–१९३ [संज्ञा] बैल का मूत्र स्थान (तुच्छ या अनु० छू छू)।

छुलवइया–२७६ [संज्ञा] दे० 'छोलवैया'।

छूँछ–२५ [संज्ञा] खाली (सं० तुच्छ)।

छूरा–२७१ [संज्ञा] बाल बनाने का औजार (सं० क्षुरक)।

छूरी–२६८ [संज्ञा] काटने का एक औजार (सं० क्षुरिका)।

छूही–२५,२०१ [संज्ञा] कुएँ पर का पावा।
छेव–१० [संज्ञा] फरसा से एक बार मे जितनी मिट्टी उठाई जाती है।
छेवन–२३१ [संज्ञा] एक डोरा जिससे कुम्हार चाक पर से बर्तन उतारता है। (सं० छेदन)।
छेही–१० [संज्ञा] वही।
छोंड़–२२६ [संज्ञा] मिट्टी का एक बड़ा बर्तन (सं० द्रोणि)
छोटका–१२४ [वि०] छोटे आकार का।
छोटकी–८७,११७ [वि०] छोटी, छोटका का स्त्री०।
छोत–२२५ [संज्ञा] दे० 'चोत'।
छोपन–२४१ [संज्ञा] आँवाँ पर किया गया लेप।
छोर–२०,२८२ [संज्ञा] बरहा के किनारे पर बँधी हुई छोटी रस्सी।
छोरई–१५० [संज्ञा] पोस्त का अंकुर।
छोलवैया–२७६ [संज्ञा] ईख की पत्ती छोलने वाला।✓

ज

जँगला–२५३ [संज्ञा] छड़दार खिड़की या दरवाजा।
जंघा लगब–३८ मुहा० थाम्ह से सटकर ढेंकुर का चलना।
जतरी–२४६ [संज्ञा] सोनारों का एक औजार जिससे सूत (तार) खींचते है (सं० यन्त्रिका)।
जगत–२०१ [संज्ञा] कुएँ के ऊपर चारो ओर बना हुआ चबूतरा जिस पर खड़े होकर पानी भरते हैं।
जजमान–२७४ [संज्ञा] चमार जिसकी सौरी-त्रियौरी कमाता है वह चमार का जजमान कहलाता है (सं० यजमान)।
जजमानी–२७४,३६७ [संज्ञा] यजमान का भाववाचक।
जटहा बैल–१६५ [संज्ञा] जटा वाला बैल।
जड़हन–८,५९,१०३ [संज्ञा] एक धान जिसके पौधे एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह बैठाये जाते हैं—इसे अगहनी धान भी कहते हैं (जटा + धान्य)।
जबर–३,७,१८३ [वि०] दृढ़ (फ़ा० जब्र)।
जमुनी–२७४ [संज्ञा] एक छोटा सा मिट्टी का पात्र जिसमें लगभग आधा सेर ईख का रस आता है।
जयतुआ–३६९ [संज्ञा] दे० 'जिउत'।
जर–८ [संज्ञा] जड़ (सं० जटा)।
जरई–११२ [संज्ञा] धान का नया पौधा जो रोपने के लिए तैयार किया जाता है (जटा–); **जरई बैठाइब**–११२ मुहा० जरई को उखाड़ कर दूसरी जगह बैठाना; **जरई रोपब**–वही।
जरखर–१२२ [संज्ञा] ईख के जड़ के भाग।
जरबन–३६९ [संज्ञा] एक डोरी जिससे स्त्रियाँ धोती को कमर के पास बाँधती हैं (फा० ज़ेरबंद–घोड़े के तंग को कसने के लिये पेटी)।
जरी–८ [संज्ञा] जिस खेत से जो खरीफ फसल कटती है उस खेत को उस चीज की जरी कहते हैं। यथा, जोन्हरी की जरी।
जरेठी–१८९ [संज्ञा] दूध को मेटी में

झ

उलझे रूप को झकटा कहते हैं।

झगाड़ा–९० [संज्ञा] दे० 'झकटा'।

झनक–१७८ [संज्ञा] झुनझुनी–एक प्रकार का वायु रोग (अनु० झन-झन)।

झन्नहोब–३, १९७ [क्रि०] लुप्त होना दे० 'झँजाब'।

झन्ना–२६५ [संज्ञा] आटा चालने का चमड़े का एक यंत्र (सं० क्षरण=छनना)।

झरोखा–२१३ [संज्ञा] झँझरी, छोटी खिड़की।

झाँखर–११२ [संज्ञा] झाड़-झंखाड़।

झाँझ–३६१ [संज्ञा] पैर का पोलदार कड़ा।

झाऊ–३८६ [संज्ञा] एक प्रकार का पेड़ (झाउक)।

झाड़ब–२६५ [क्रि०] झन्ने से अनाज झाड़ना।

झारब–१२,१२३ [क्रि०] किसी स्थान को काट-छाँट कर मिट्टी निकालना। यथा, आरि झारना, गोल झारना।

झिरझिराब–१९१ [क्रि०] पानी का धीरे धीरे निकलना।

झींक, झींका–४०३,४०४ [संज्ञा] जितना अन्न पीसने के लिए एक बार चक्की में डालते हैं।

झीली–३४२ [संज्ञा] बांस छीलने से जो पतला-पतला छीलन निकलता है।

झुकउवा–२७२ [संज्ञा] दे० 'झुकवा'।

झुकनी–२७२ [संज्ञा] झोंकने वाली लकड़ी।

झुकवइया–२७२ [संज्ञा] झोंकने वाला।

झुकवा–२७२ [संज्ञा] गुलउर का मुँह–कड़ा जिधर से पत्ती, आदि झोंकी जाती है।

झुमका–३६५ [संज्ञा] कान का एक आभूषण (हि० झूम)।

झुराव–२६५ [क्रि०] सूखना।

झुलनी–३६४ [संज्ञा] नथिया के साथ पहने जाने वाला एक आभूषण।

झुलसब–९३ [क्रि०] झुलसना, आंच लग जाना।

झूक–२७२ [संज्ञा] खर-पात जो गुल-उर में झोंका जाता है।

झैंजाब–१२७ [क्रि०] झन्न हो जाना, लुप्त हो जाना (सं० ध्मात्=फूंकना, पा० झा=जलना)।

झोकवा–२७२ [संज्ञा] दे० 'झुकवा'।

झोरब–२८६ [क्रि०] कड़ाह के शीरे को तामी से उठाकर धीरे-धीरे गिराना, इसे ओसाना भी कहते हैं (प्रा० झोरण)।

झोला–२६१ [संज्ञा] थैला।

झौआ–२८५ [संज्ञा] रहठा की बड़ी टोकरी।

झौली–२८५ [संज्ञा] झौआ का छोटा रूप।

ट

टटरा–२५३ [संज्ञा] बाँस का दरवाजा।

टड़िया–३५७ [संज्ञा] चाँदी का एक आभूषण।

टड्डा–३५७ [संज्ञा] बाजू का एक आभूषण (सं० ताड़)।

टाँका–३५२ [संज्ञा] जोड़, गहने के बनाने में जो जोड़ लगता है (सं० टंक)।

टाँगा–२४२ [संज्ञा] लकड़ी काटने या चीरने-फाड़ने का औजार (सं० टंग)।

ठढ़ियाइब–२३५ [क्रि०] खड़ा किया जाना (प्रा० ठड्ड–) ।
ठनकब–१२७ [क्रि०] सूख जाना ।
ठनकी माटी–३ [संज्ञा] सूखी माटी ।
ठप्पा–३४६ [संज्ञा] एक प्रकार का साँचा (सं० स्थापन हि० थापन,थाप) ।
ठहरब–१५८ [क्रि०] ठहरना (सं० स्थविर) ।
ठाँठ–१६२ [वि०] गाय या भैंस जो दूध न देती हो ।
ठाट–२०५ [संज्ञा] खपरैल छाने के पूर्व बनाया गया ढाँचा या ठाट (सं० स्था=खड़ा होना) ।
ठिकरा–७ [संज्ञा] खपड़े का टुकड़ा ।
ठिकरहवा–७ [वि०] ठिकरावाला । यथा ठिकरहवा खेत ।
ठिकरही–३ [वि०]ठिकरहवा का स्त्री० ।
ठिकवइया–२१२ [संज्ञा] दीवाल बनाने वाला ।
ठिकुरहिया–१५७ [संज्ञा] दे० 'ठिकुरही'
ठिकुरही–१५७ [संज्ञा] जिस गाय के गले में ठीकुर पड़ी हो । दे० 'ठीकुर' ।
ठीकब–२७१ [क्रि०] किसी चीज को किसी स्थान पर स्थायी रूप से रखना । यथा, कड़ाह को भट्ठे पर ठीक करना (सं० स्थित्) ।
ठीकुर–१५७ ,१८० [संज्ञा] लकड़ी का टुकड़ा जो गाय के गले में डाला जाता है (सं० स्तोक=टुकड़ा) ।
ठीहा–२४७ [संज्ञा] जिस लकड़ी पर लकड़ी को रखकर गढ़ते हैं उसे ठीहा कहते हैं; २४६ वह लकड़ी जिसमें सोनार निहाई गाड़कर रखता है (सं० स्थिति) ।
ठुर्री–२०२ [संज्ञा] चीनी के बड़े टुकड़े जो चालने पर निकलते हैं; ४०६ वह भुना हुआ दाना जो खिला न हो ।
ठेउँका–२६ [संज्ञा] बेड़ी चलाते समय पानी के लिए बनाया गया छोटा गड्ढा ।
ठेउँकी–२६ [संज्ञा] ठेउँका का अल्पा०
ठेंठी–२८९ [संज्ञा] सूराख मूँदने की एक लकड़ी ।
ठेहरी–२३ [संज्ञा] जमीन जोतने के समय जो हिस्सा छूट जाता है; २५१ दरवाजे के चूर के लिए लकड़ी या ईंट का आश्रय; ६१,६४ मुहा० ठेहरी पड़ब-किसी औजार की धार गोठिल होना ।
ठोपारी–३०१ [संज्ञा] शीरे की बूँद ।
ठोर्री–४०६ [संज्ञा] दे० 'ठुर्री' ।

ड

डंठल–६८ [संज्ञा] डाँठ (स० दंष्ट्रा) ।
डंड़ा–२३,४३ [संज्ञा] चरखी की धुर्री, धुरी या धुरा (स० दण्ड) ।
डंडादार–२३ [वि०] धुर्रादार ।
डँड़वत–१२८ [संज्ञा] ईख की कड़ी पोय (दण्ड+पत्र) ।
डँड़हरी–२५३ [संज्ञा] जंगले में बेड़े-बेड़ लगने वाली लकड़ी ।
डग मारब–२४४ मुहा० हिलना, चलना
डभका–९१ [संज्ञा] पानी से भीग कर फूली हुई मटर ।
डलरी–४१० [संज्ञा] दे० 'डलिया' ।
डलिया–४१० [संज्ञा] बाँस आदि की टोकरी (सं० डलक –) ।
डाँगर–२६२ [संज्ञा] जानवर, पशु (विशेप

कर क्षीण, या मरा हुआ)।

डॉठ—६८,१०१ [संज्ञा] डंठल।

डॉंठी—३८६ [संज्ञा] रहठा की पतली टहनी—सार, त्राती।

डॉड़—५ [संज्ञा] दर। यथा, डॉड़े का खेत (दण्ड)। ५,४८,१८२ [संज्ञा] खेत की मेड़। यथा, डॉड़ मेड़ या मेड़-डॉड; १०४ मुहा० डाँड़मेड़ करब—वर्षा का पानी रोकने के लिये मेंड बांधना; १८२ डांड़ देब—खेत में पशुओं को जाने से रोकना; २४३ [संज्ञा] दौरी की बेनी की एक प्रकार की बुनावट।

डॉड़ी—४७ [संज्ञा] हाथा का पकड़ा जाने वाला ऊपरी भाग (दण्ड); ६५ हँसुआ मे लोहे को धार के अतिरिक्त शेष भाग; ३२० गड़रियो के कम्बल बुनने में दण्डवत् एक हथियार ; ३२८ परी की डॉडी; ३६२ जोट (एक आभूषण) के नीचे लगा पतला छड; ३६४ तेराजू की वह लकडी जिसमे जोती बांधी जाती है।

डाढ़ी—२७३ [संज्ञा] शरीर का एक अग (सं० दष्ट्रा); २७३ मुहा० डाढ़ी मूड़ब—डाढ़ी बनाना।

डाभी—१४५ [संज्ञा] प्याज का अंकुर (सं० दर्भ) तु० डीभी।

डारा—२८२ [संज्ञा] कपड़ा डालने के लिये बॉधी गई रस्सी (सं० दण्ड हि० डॉड़ा)।

डाल—२४४ [संज्ञा] बॉस की बनी हुई एक प्रकार की तश्तरी जो विवाह के अवसर पर ताग-पाट रखने के लिये धरकार बनाता है (सं० डलक)।

डाली—७१ [संज्ञा] ओसाने के लिए दौरी में रक्खा हुआ अनाज (सं० डलक=डलिया) मुहा० डाली देब—दौरी से अनाज ओसाना।

डिल्ल—२५४ [संज्ञा] बैल के कंधे पर उठा हुआ कूबड़ दे० 'डील'।

डिहवा—५ [संज्ञा] डीह।

डीभी—७५ [संज्ञा] अँखुआ की विकसित अवस्था।

डील—१६८ [संज्ञा] बैल के गर्दन का ऊपरी भाग (सं० अष्ठीला=उभड़ा भाग)।

डुकिया—२२२ [संज्ञा] मिट्टी का छोटा बर्तन या कटोरा।

डुगडुगइया—१५६ [संज्ञा] जिस गाग की सीग हिलती हो।

डुगडुगहा—१६५ [संज्ञा] जिस बैल की सीग हिलती हो।

डुग्गुर—१६५ [संज्ञा] दे० 'डुगडुगहा'।

डुड़ुहा—१४२ [संज्ञा] मूर्हि के दोनो ओर की मेड।

डुड़ुही—४४,१२६ [संज्ञा] ईख के खेत की कियारी की मेड; १४२,१४९ आलू की मूर्हि पर जब मिट्टी चढ़ा दी जाती है।

डूँड़ी—१५६ [वि०] जिस गाय की पूँछ कटी हो (सं० त्रुटि-)।

डेबरी—२७० [संज्ञा] कसे जाने वाले पेंच के दूसरे सिरे पर लगाया जाने वाला छल्ला (हि० ढिबरी)।

डेहरी—१६२ [संज्ञा] बैलों की लेंहड़ी या गिरोह; ३९५ [संज्ञा] दरवाजे के नीचे की उठी हुई जमीन (सं० देहली)।

डोकिया–४०० [संज्ञा] काठ का छोटा कटोरा तु० 'डुकिया'।
डोकी–२३२ [संज्ञा] दे० 'डुकिया'।
डोम–२४० [संज्ञा] एक जाति विशेष।
डोरा–६२ [संज्ञा] एक घास (सं० दोरक)।
डोरी–३२० [संज्ञा] रस्सी।
डोल–२३२ [संज्ञा] मिट्टी का बड़ा पात्र; २६१ लोहे की एक प्रकार की गोली बाल्टी।
डोला–४१० [संज्ञा] मूँज की डोली, पालकी (सं० दोलक)।
डोलाइब–४०९[क्रि०] चलाना, हाँकना। यथा, बेना डोलाना।

ढ

ढकना–४९ [संज्ञा] पंखा, डैना।
ढकनी–२३२ [संज्ञा] परई के आकार का मिट्टी का पात्र।
ढगढोलन–३०६ [वि०]नारा जब बराबर से भरा नही रहता तब उसे ढगढोलन कहते है (अनु०)।
ढरकउआ–१५८ [संज्ञा] हाथ का एक गहना।
ढरका–१७८ [संज्ञा] जानवरो को दवा पिलाने के लिये बाँस का चोगा।
ढरकी–३१२ [संज्ञा] जोलाहो का एक औजार जिससे बाना फेंका जाता है।
ढरवा–२४३ [संज्ञा] दौरा से बड़ा बाँस का एक बर्तन।
ढरियाइब–७२ [क्रि०] ढहराना—राशि को एक बार ओसाने के बाद पुनः ओसाना।
ढरुआ–२६१ [वि०] ढाल कर बनाया हुआ।
ढाँचा–२५७ [संज्ञा] बैलगाड़ी का वह भाग जिस पर सामान लादा जाता है।
ढाँसब–१६९ [क्रि०] ढाँसना या खाँसना।
ढाँसा–१७८ [संज्ञा] पशुओ के ढाँसने की बीमारी (अनु०)।
ढार–३६५ [संज्ञा] कान का एक गहना।
ढारब–३४७ [क्रि०] किसी धातु को गला कर डालना (हि० ढालना)।
ढाल–२२३ [संज्ञा] छाजन का लरकाव।
ढाहा–७४,८०,८६,१४६ [संज्ञा] जो गेहूँ और प्याज का एक रोग जिसमे पत्तियाँ पीली पड़कर गिर जाती हैं।
ढूँढ़ा–२३८ [संज्ञा] बर्तन रंगने के लिये काबिस मिट्टी को सानकर बनाया हुआ एक गोला।
ढूहा–२२६ [संज्ञा] बरतन बनाने के लिये कुम्हार की मिट्टी का ढेर; २३६ हौदा आदि बनाने के लिए मिट्टी का ठोस ढाँचा।
ढेंकची–३२ [संज्ञा] ढेंकुर का एक प्रकार से छोटा रूप। दे० 'ढेंकुर'।
ढेंकुर–८६,३२४ [संज्ञा] सिंचाई का एक साधन (सं० ढेक—पानी की एक चिड़िया जिसकी गर्दन लम्बी होती है; २७,१८ [संज्ञा] ढेंकुर मे लगने-वाला बल्ला।
ढेंका–३२४ [संज्ञा] जाठ के ऊपरी भाग को कातर से सम्बन्धित करने वाली लकड़ी।
ढेंढ़ी–१०२ [संज्ञा] तीसी का फली। तु०

तरायल–२९८ [संज्ञा] चीनी के खाते की अन्तिम पञ्जनी।
तरी–१३८ [संज्ञा] गीलापन (फा० तर)।
तरे–१४,१९ [संज्ञा] नीचे (सं० तल)।
तरेला, तरेली–१९[संज्ञा] दे० 'तरल्ला'।
तरेहटा–१९ [संज्ञा] वही।
तवक–३५६ [संज्ञा] हँसुली के आकार का गले में पहनने का एक आभूषण (अर० तौक)।
तरै-तापर–१४२ [संज्ञा] ऑतरे-दुसरे।
तरौटा–४०२,४०४ [संज्ञा] चक्की के नीचे वाला पाट (तल+पाट)।
तसगरा–३११ [संज्ञा] जुलाहे के तानों में लगने वाली सरई।
तह–३६७ [संज्ञा] पर्त (फा० तह)
ताँत–३१६ [संज्ञा] चमडे की बनी हुई एक पतली रस्सी (सं० तंतु)
ताँता–२०५,२१५ [संज्ञा] बेंडे-बेंड लगने वाला छाजन में बाँस जो मंझा और मंगर के बीच में रहता है।
ताकब-१२६ [संज्ञा] ताकना, देखना।
ताख–२१३ [संज्ञा] गड्खा (अर०ताक)
ताग–११२ [संज्ञा] धान की बेहन का एक पौधा।
ताग-पाट–२४४,२६७ [संज्ञा] विवाह के अवसर एक शुभ वस्तु (सं० तार्कव हिं० तागा+पाट)।
ताड़ीकस–२३३ [संज्ञा] ताड़ी चुआने वाले (हिं० ताड़ी+कश)।
ताना–३४२ [संज्ञा] कपडा बुनने की एक प्रक्रिया (सं० तान=विस्तार)।
तामी–२७४ [संज्ञा] एक बड़ी कलछुल (सं० ताम्र –)।
तारु–१२६ [संज्ञा] खेत का भीतरी भाग (सं० तालु –)।
तारू–१७८ [संज्ञा] तालु।
ताल–३,२६ [संज्ञा] एक बड़ा प्राकृतिक जलाशय (सं० तल्ल)
तावन–४२ [संज्ञा] जोड; मुहा० **तावन लगाइब या तावन फेरब**–पानी की कटी हुई नारी को जोड लगाकर ठीक करना।
तावा–३,११ [संज्ञा] मिट्टी की भीतरी कडी सतह। यथा, तावा मारी; ११ मुहा० **तावा मारब**–तावा का खेत पर बुरा प्रभाव पडना।
तिकला–२७४ [संज्ञा] तेहरा किया हुआ बाध (त्रिक –)।
तिकिच–२४२ [संज्ञा] दौरी की अंतिम बुनावट।
तिनपखिया–१४१ [वि०] तीन पाख मे तैयार होने वाली। यथा, तिनपखिया आलू।
तिबट–३७९ [वि०] तीन बट वाला, तेहरा।
तिवहल–२३ [वि०] तीन बाह जोता हुआ खेत।
तिरकोन्ना–२३ [संज्ञा] तिकोना (सं० त्रिकोण –)।
तिरकोन्नी–२८४ [संज्ञा] वही।
तिरछा–२३,२५ [वि०] तिकोना, (सं० तिरश्चीन)।
तिरछी–४०६ [संज्ञा] अरहर का कमजोर चुचका व टेढ़ा-मेढ़ा दाना दे० 'तिरछा'।
तिरवन्दी, तिरवन्नी–२ ४,२१५ [संज्ञा]

थान–१२८ [संज्ञा] ईख का समूह (स्थान)।

थाम–२७ [संज्ञा] खंभा (सं० स्तंभ)।

थाम्ह–२०८,२१४ [संज्ञा] वही।

थाम्हब–२०८ [क्रि०] थम्हब का प्रे० दे० 'थम्हब'।

थाला–४७ [संज्ञा] हाथों द्वारा सिंचाई के लिये पानी का छोटा गड्ढा (सं० स्थल)।

थिराब–१७७ [क्रि०] थिराना–भैंस का भैंसाने के लिए इच्छुक होना (सं० स्थिर –)।

थिरायल–१७७ [वि०] भैंसाने के लिए इच्छुक भैंस। यथा, थिरायल भैंस।

थूनही–२०३ [संज्ञा] किसी छोटे लट्ठे या बाँस का सहारा (स्थूण)।

थोब–२५९ [संज्ञा] बैल गाड़ी में पीछे की ओर लगी हुई एक लकड़ी जो गाड़ी को उलटने से बचाती है।

द

दँतारा–६५,११५ [संज्ञा] दाँत युक्त। यथा, दँतारा हँसुआ।

दँवरी–६९,३८२ [संज्ञा] वह रस्सी जिसमें दँवरी के समय बैल बाँधे जाते हैं (सं० दामन); मुहा० दँवरी नाधब वा हाँकब–दँवरी चलाना।

दँवाई–६९ [संज्ञा] बैलों द्वारा पइरि कुचलने का काम।

ददरिहा–१६६ [संज्ञा] ददरी (बलिया में एक स्थान) के बैल।

ददरी–५८ [संज्ञा] जौ की अधपकी बाल।

दधिबँड़, दधिहँड़–१८९ [संज्ञा] दही की हाँडी (सं० दधि + भांड –)।

दनदानेदार–४० [वि०] सिधाड़े की भाँति कटा हुआ रहँट की चाक का किनारा।

दबलिअहवा–१० [वि०] दे० 'तबलिअहवा'।

दबिहरा, दबेहरा–१५ [संज्ञा] एक प्रकार का हल जिसमें हल और हरिस एक ही लकड़ी में होते हैं।

दरब–३२९ [क्रि०] दरना (सं० दरण)।

दरबर–४२२ [वि०] मोटा–जो बारीक न हो। यथा, दरबर आटा।

दरवाजा–२५१ [संज्ञा] मकान के अन्दर जाने का प्रवेशद्वार; प्रवेशद्वार पर लगने वाला फाटक वा केवड़ा।

दराना–४०५ [संज्ञा] जहाँ दाल दरने का काम होता है।

दरिया–४०३ [संज्ञा] जौ का आटा चालने पर जो मोटा अंश निकलता है (हिं० दलिया सं० दलित–)।

दरी–१४६ [संज्ञा] सोनार का एक औजार जिसमें घुंडी ऐसी गोली चीज गढ़ी जाती है (सं० दरी–)।

दर्पन, दर्पनी–२७१ [संज्ञा] शीशा (सं० दर्पण)।

दर्रब–१३१ [क्रि०] दर्रना—रगड़ कर बाल से दाना अलग करना (सं० दरण); १७८ रगड़ना।

दर्रा–१ [संज्ञा] दरार।

दलभन्ना–४०५ [संज्ञा] दाल भाँजने का भन्ना।

दलबादर–११९ [संज्ञा] एक प्रकार की ईख।

दलान–२२२ [संज्ञा] बैठका ।
दवन, दवनि–२६,२८२ [संज्ञा] बैंड़ी चलाने की रस्सी (सं० दामनिका) ।
दहला–२२ [संज्ञा] चौड़ा बरहा ।
दहारी–८८ [संज्ञा] अधिक वर्षा ।
दहिना–२१, ६९ [वि०] दे० 'दाहिना'
दहिया–९४ [संज्ञा] कटी हुई फसल पर दही की भाँति एक प्रकार की भुकुड़ी ।
दहियाब–९४ [क्रि०] दहिया लगना ।
दाँइब–६८,९५,१०१ [क्रि०] दँवाई करना ।
दाँत–२४२ [संज्ञा] आरा का वह भाग जो दाँत की भाँति लकड़ी चीरने के लिये रहता है ।
दाँतब–१६७ [क्रि०] दाँत निकलना ।
दाँव–२२ [संज्ञा] बागी या गरी (दामन् –) ।
दाउदी–८२ [संज्ञा] एक प्रकार का गेहूँ (अर० दाऊद) ।
दागब–१६५ [क्रि०] दागना (फा० दाग) ।
दाबू–१५७ [वि०] ऐसी बैलगाड़ी जो आगे को दबी हो (दाब सं० दर्प) ।
दावन–२०० [संज्ञा] शीरा की लची तोड़ने के लिए रेंड़ी की गूदी पीस कर डालते हैं जिसे दावन कहते हैं (सं० दमन = नाश) ।
दासा–२२२ [संज्ञा] ओसार में खंभो के ऊपर कड़ियों के नीचे इस लकड़ी को रखते हैं ।
दाहिन–२१ [वि०] दाहिना (दक्षिण) ।
दिउली–२४२,४१० [संज्ञा] फल्ठा अथवा मूंज को चीर कर बनाई गई छिलके सहित पतली-पतली पत्तियाँ (द्वि –) ।
दियली–२२२ [संज्ञा] दीया का छोटा रूप (सं० दीपक) ।
दिया–२२२ संज्ञा दे० 'दीया' ।
दिस्ता–२४२ [संज्ञा] गँड़सा, रुखान आदि औजार का वह अंग जो हाथ से पकड़ा जाता है इसमें औजार का गूँज ठोंका रहता है ।
दिहला–२६६ [संज्ञा] चर्मकारों का एक लोहे का औजार जिससे चमड़ा पीटते हैं (सं० देहली –) ।
दीया–२८ [संज्ञा] मोट में लगने वाली चमड़े की चकती जो दीये की आकार की होती है; २२२ चिराग जलाने का मिट्टी का पात्र (सं० दीपक) ।
दीवार–२११ [क्रि०] दीवार (फा०); मुहा० दीवार बैठब–दीवार का दबना ।
दुआरि–२९४ [संज्ञा] चूल्हे का मुँहकड़ा (सं० द्वार); २५१ [संज्ञा] घर के भीतर जाने-आने का मार्ग ।
दुइमट–१,४ [संज्ञा] दोमट मिट्टी ।
दुइरसा–१,४ [संज्ञा] दोमट ।
दुइफर्दा–८ [संज्ञा] वह खेत जिसमें दो फसलें होती हैं ।
दुइबैलिया–२४,२५९ [वि०] दो बैल वाली । यथा, दुइबैलिया गाड़ी ।
दुद्धा–१२२ [वि०] दूध युक्त । यथा, दुद्धा बाल (ज्वार की मुलायम बाल); १०८ मुहा० दुद्धा घोंटब या दुद्धा लेब–धान की पूर्वावस्था में उसके भीतर दूध भरा रहता है. इसी

अवस्था को दुद्धा घोंटब या लेब कहते हैं। दे० 'फूल घोटब'।

दुधवानी–२९९ [संज्ञा] दूध और पानी का मिश्रण जो शीरे को मैल काटने के लिए प्रयुक्त होता है।

दुधहँड़ी–१८८ [संज्ञा] दूध की हाँडी।

दुधार–१७४ [वि०] अधिक दूध देने वाला पशु।

दुपहर–१८० [संज्ञा] मध्याह्न (हिं० दोपहर)।

दुबहल–२३ [संज्ञा] दोबार जोता हुआ खेत।

दुब्बर–१८० [वि०] कमजोर (दुर्बल)।

दुबिहन–३३७ [सज्ञा] एक प्रकार का बाँस।

दुरवन–२१२ [संज्ञा] दरवाजे के ऊपर रक्खी हुई लकड़ी या पत्थर (द्वार–)।

दुलहिनियाँ–११६ [सज्ञा] एक प्रकार की ईख (दुर्लभ प्रा० दुल्लह)।

दुलारमती–११९ [संज्ञा] एक प्रकार की ईख (दुलारना–सं० दुर्लालन)।

दुल्ला–२८२ [संज्ञा] एक जंगली पौधा जो शीरा साफ करने के लिए डाला जाता है।

दूध–१६२ [सज्ञा] दुग्ध (स० दुग्ध); मुहा० दूध तोरब–गाय का दूध कम कर देना; १८८ दूध बैठाइब–उपलों की आग पर पकने के लिये मेटी में दूध रखना।

दूब–६३ [संज्ञा] एक घास (सं० दूर्वा)।

दूबर–७ [वि०] पतला, कमजोर (सं० दुर्बल)।

दूँवका–१२८ [संज्ञा] एक प्रकार का कीड़ा (फा० दीमक)।

देवहटिया–१६२ देवहा नदी के आस-पास पाये जाने वाले बैल। दे० 'देवहा'।

देवहा–१६२ [संज्ञा] घाघरा नदी (सं० देववहा वा देविका-)।

देवाल–२१२ [संज्ञा] दे० 'दीवार' मुहा० देवाल ठीकब–कच्ची दीवाल को काट-छाँट कर सुडौल बनाना। दे० 'भीत ठीकब'।

देसावरी–८३, १२६ [वि०] परदेशी, जो स्थानीय न हो।

देसी–१०,११७,१२६ [वि०] अपने देश या स्थान में पाई जाने वाली (हि० देशी, सं० देशीय)।

दोकला–३७४ [वि०] दोहरा किया हुआ। यथा, दोकला बाध।

दोख–२८४ [संज्ञा] अशुभ, वर्ज्य (सं० दोष)।

दोखड़ा–२३ [संज्ञा] दूसरी बार की जोताई।

दोखी–१६५ [वि०] दोष युक्त।

दोगाही–१७३,२५४ [संज्ञा] एक रस्सी जिसका सम्बन्ध बैल के नाथा से होता है। इससे बैल काबू मे रहते हैं।

दोबट–२१६,२७९ [वि०] दोहरा।

दोवब–१८२ [क्रि०] दोबना–पशुओं को रोकने को दोवना कहते हैं (स० दम् , दमू)।

दोमट–१,४ [संज्ञा] दोरसी मिट्टी।

दोमा–२०३ [वि०] दूसरा (फा० दोयम)।

दोमा चीनी–२०३ [संज्ञा] यह चीनी जो चुए हुए चोटे से बनती है।

दोमा चोटा–२०३ [संज्ञा] वह चोटा

जो दोमा चीनी का होता है।

दोरसा–१,४ [संज्ञा] दोमट।

दोवावनि–३४३ [संज्ञा] दौरी बुनते समय दो-दो पत्तियों को साथ बुनने को दोवावनि कहते हैं।

दोहरा–३१८,३७७ [वि०] दोबट।

दोहरौनी–७५ [संज्ञा] दूसरी बार की हुई सिंचाई।

दौरा-दौरी–३३४, ३४२, ३४७ [संज्ञा] बाँस का एक पात्र।

ध

धँवर चांदी–१५५, १६४ [वि०] श्वेत गाय या बैल (सं० धवल चन्द्र)।

धँवरा, धँवरी–१६४ [वि०] उज्ज्वल यथा, धँवरा बैल, धँवरी गाय।

धनखर–९,११० [संज्ञा] वह धान का खेत जिससे फसल कट गई हो।

धनहा–९,११० [संज्ञा] धान कटा हुआ खेत।

धनुही–५० [संज्ञा] बाँस का एक हथियार जिसमें डोरी लगी रहती है और जिसके द्वारा निशाना लगाया जाता है; २४२ बरमा चलाने के लिए धनुष का छोटा रूप, ३९८ रूई धुनने के लिए बनाया गया छोटा धनुष (सं० धनुष)।

धरन–२१४ [संज्ञा] छाजन की वह लकड़ी जिस पर बडेर टिकी रहती है (सं० धरण)।

धरब–१०५ [क्रि०] धरना, पकड़ना।

धरिकार–२६, ३४० [संज्ञा] एक जाति जो बाँस का काम करती है।

धाँध–७ [संज्ञा] गर्मी (हि० दँदक)।

धान–१०३,१०८ [संज्ञा] एक अनाज (सं० धान्य); मुहा० धान फूटब- धान की बाल निकलना।

धार–१०, ६१ ६४, ६५ [संज्ञा] किसी औजार या हथियार के किनारे का पतला और तेज भाग। यथा फरसा, खुरपा, हँसुआ या कुदार की धार (सं० धारा)।

धावा–१९७ [संज्ञा] आक्रमण (धाव्–)। मुहा० धावा मारब–कुआँ खोदते समय पानी के साथ बालू का तेजी से निकलना।

धिकउब– २६७ [क्रि०] धिकाना–गरम करना।

धुँकनी–५० [संज्ञा] खेत मे फसल को चूहों से रक्षा करने के लिए बिल पर धुआँ करते हैं इस विधि को धुँकनी कहते हैं।

धुनकी–३१६ [संज्ञा] रूई धुनने का यंत्र।

धुनब–३१६ [क्रि०] रूई धुनना (धून्)।

धुरई–३६,३३४ [संज्ञा] पुरवट का एक अंग जिस पर गड़ारी रखी जाती है (सं० धुर्)।

धुरा–२५६, २५८ [संज्ञा] पहिये का धुरा (सं० धुर्)।

धुरियाइब–१२५, १२७ [क्रि०] धुरियाना—ईख के खेत की पहली गोंड़ाई के बाद की गोड़ाई जिसमें खेत की मिट्टी भुरभुरी पड़ जाती है।

धुरी–४०१ [संज्ञा] चरखे की मूड़ी के मध्य में लोहे का छड़ जिसके सहारे मूड़ी घूमती है।

धूल–४७ [संज्ञा] गर्द या मिट्टी (सं०

धूलि); मुहा० धूल बुताइब—हाथा द्वारा ऐसी सिंचाई करना जिससे खेत की धूल मर जाय अर्थात् बहुत हल्की सिंचाई।

धेनु—१६२,१७७ [संज्ञा] बियाने के ५ या ६ मास तक गाय-भैंस को धेनु कहते हैं।

धोआ—११६ [संज्ञा] सनई के धोने पर जो धोया हुआ रेशा तैयार होता है, इसे सुतली भी कहते हैं।

धोइया—४०५ [संज्ञा] धोई हुई दाल (सं० धावन)।

धोख—४८ [संज्ञा] पशु-पक्षियों को धोखा देने के लिये मनुष्य का रूप बना कर खेत में खड़ा कर देना।

धोनारी—२८८ [संज्ञा] कड़ाह के शीरे का गरम-गरम धोवन (सं० धावन)।

धौका—१२६ [संज्ञा] गरम हवा (धौकना, सं० धम्)।

धौरी—१५५ [वि०] उज्ज्वल। यथा, धौरी गाय (सं० धवल)।

न

नइकी—११७ [वि०] नई। यथा नइकी ईख—वह ईख जिसका हाल ही में प्रचार हुआ हो (नव)।

नउ—२१ [क्रि०] बैलों को दायें-बाँये चलने के लिये एक आदेश (सं० नम्-)।

नउकी—११७ [वि०] दे० 'नइकी'।

नकड़ा—१७८ [संज्ञा] नाक की एक बीमारी।

नक्काशी—२५१ [संज्ञा] गहना नकाशने का काम (अर० नक़्क़ाशी)।

नथिया—२६४ [संज्ञा] नाक का एक आभूषण (सं० नाथ=नाक की रस्सी)।

नथुना—१७१ [संज्ञा] नाक का अगला भाग जिसमे दोनों ओर छेद होते हैं (सं० नस्त)।

नथुनी—२६४ [संज्ञा] दे० 'नथिया'।

नन्हिया धान—१०३ [संज्ञा] एक प्रकार का धान।

नपना—२४७ [संज्ञा] लकड़ी नापने के लिए कोई माप दण्ड; २२८ तेल नापने का पात्र (सं० मापन)।

नयनू—१९० [संज्ञा] दही से निकाला हुआ कच्चा घी (सं० नवनीत)।

नरई—७९, ४०९ [संज्ञा] जौ-गेहूँ के पौधे का पोला डंठल (सं० नाल-); १७८, एक प्रकार की पानी की घास जिसका डंठल पोला होता है।

नरचा—९० [संज्ञा] मटर की डाँठ।

नरमा—११९ [संज्ञा] एक प्रकार की ईख (फा० नर्म)।

नरा—२१२ [संज्ञा] सटल में चलने वाली वह लकड़ी जिस पर सूत भरा जाता है।

नरिया—२१७, २३२ [संज्ञा] छाजन के लिए थपुआ के साथ इसका प्रयोग होता है।

नरियान—१६८ [क्रि०] अड्डू बैलों का गाय को देखकर चिल्लाना तथा उनका वीर्यपात होना (सं० नद् प्रा० नडइ)।

नरिहर—२४१ [संज्ञा] आवाँ में लगी हुई वे हाँडियाँ जिनकी पेंदी में सूराख रहता है और जिनके द्वारा आँवाँ में आग पहुँचाई जाती है।

निकार–५ [संज्ञा] गाँव का गोयड़ जहाँ शौच जाते हैं; १७८ किसी बीमारी के निकालने के लिए किया गया टोटका।

निकारब–८ [क्रि०] बेचना।

निकियाइब–२९७ [क्रि०] रूई के रेशों को एक सीध में करना, तूमना (निष्कृत)।

निकोलब–८९ [क्रि०] छीलना (हि० निकोलना)।

निखरब–२९७ [क्रि०] साफ होना (हिं० निखरना सं० निक्षाल्–)।

निघारब–४०२ [क्रि०] गेहूँ की पिसाई की अंतिम अवस्था में जाँत में कुछ मोटे अनाज को डालकर बचे हुये अंश को पीस कर निकालना, तु० 'निहारब' (प्रा० णिहालण = निरीक्षण ?)

निथरब–२९३ [क्रि०] किसी द्रव पदार्थ का भलीभाँति चू जाना (सं० निस्तरति)।

निथरी–२२६ [वि०] ऐसी घानी जिससे तेल चू गया हो। दे० 'निथरब'।

निपुनहिया, निपुनही–१५७ [वि०] ऐसी गाय जो अच्छी-अच्छी चीज खाती है और घटिया सामान से घृणा करती है (सं० निपुण–)।

निमकौड़ी–३२९ [संज्ञा] नीम का फल (सं० निम्ब + कपर्दिका)।

निमना–१९८ [वि०] नोमन माटी, दृढ़ मिट्टी (सं० निम्न)।

निम्मन–३,३८९,४०८ [वि०] दे० 'निमना'।

निरधू–४०६ [वि०] धुआँ से रहित आग (निर्धूम)।

निरवही–१०७ [संज्ञा] खेत की निराई।

निरवाही–९३,१३० [संज्ञा] वही।

निराई–९३,१०७ [संज्ञा] वही।

निहाई–३४६ [संज्ञा] सोनारों का एक औजार जिस पर किसी धातु को रख कर हथौड़े से पीटते हैं (सं० निघातिका)।

निहारब–४०२ [क्रि०] दे० 'निघारब'।

निहाव–२६७ [संज्ञा] लोहार इसी पर लोहा रखकर पीटते हैं। यह लोहे का होता है। दे० 'निहाई'।

नीचक–१९८ [संज्ञा] कुएँ के धरातल में बुनियाद के लिए डाली गई गोली लकडी (सं० नीच–), तु० 'नेवार'।

नीपुनि–१५७ [वि०] दे० 'निपुनही'।

नीमन–३,१९८,४०८ [वि०] दे० 'निमना'।

नींव–२१० [संज्ञा] मकान की नींव, बुनियाद (नेमि–)।

नेग–१९८ [संज्ञा] परजा को दिया गया एक प्रकार का पुरस्कार (फा० नेग)।

नेरुआ–३२४ [संज्ञा] कोल्हू के नीचे के भाग मे बनी हुई नाली जिससे तेल गिरता है (सं० नल–)।

नेवरवा–१४९ [संज्ञा] दे० 'नेवार'।

नेवार–१४९ [संज्ञा] एक प्रकार की मूली; १९८ पहिये के आकार का लकडी का वह गोल चक्कर जो कुएँ की नींव मे बैठाया जाता है और जिसके ऊपर कुएँ की दीवार की जोड़ाई होती है (सं० नेमि) तु० 'नीचक'।

नेसुहा–१७९ [संज्ञा] गँडसे से चरी चालने के लिए जो लकडी गाडी जाती है।

नोनहीं–१ [संज्ञा] एक प्रकार की मिट्टी

जिसमें क्षार पदार्थ मिला रहता है (सं० लवण)।

नौतोरवा–७ [संज्ञा] परती जमीन तोड़कर बनाया हुआ खेत।

नौदरि–१६७ [संज्ञा] नौ दाँतो वाला बैल। कहा० 'नौदरि कहै नवो दिशि-खाँव। ले बढ़नी उपरेहितहिं खाँव।'

नौहरा–१५ [संज्ञा] एक प्रकार का हल जिसके फार लम्बे होते हैं, यह अन्य हलो से अच्छा होता है; यह नया हल ा है।

प

ा–३१२, [संज्ञा] करगह के दोनो ल की लकडियाँ जिनके सहारे करगह कता है; ३३४,३४४ [संज्ञा] हाँकने पंखा (पंख, सं० पक्ष, प्रा० पक्ख)।

ला करब–३४३ [क्रि०] दौरा के ाो भाग में बाँस की पतली पत्तियो बेनी बना कर बैठाते हैं, इस बेनी किनारे के भाग को पत्तियों से भरने पंखिला करना कहते हैं।

–४० [संज्ञा] रहँट की सीढ़ी समें पानी के लिये बालटियाँ लगी ी हैं; ३४३ [संज्ञा] दे० 'पंखा'।

स–६९ [संज्ञा] दँवाई के फलस्वरूप रि के छोटे-छोटे टुकड़े हो जाते हैं टुकड़ों को पँड़उस कहते हैं (सं० ः+कुश?)।

ा–१७७ [संज्ञा] भैंस का नर वा। दे० 'पाँडा'।

या–१७७ [संज्ञा] भैंस का मादा वा। दे० 'पाँड़ी'।

याँ–११६ [संज्ञा] पाँचवे दिन (सं० पंचम)।

पइन–२६ [संज्ञा] एक बेड़ी द्वारा की गई एक दिन की सिंचाई को एक पइन कहते हैं; पानी जाने वाला रास्ता (प्रयाणिका ?)। तु० अ० मा० पइणि-यय (प्रतिनियत)।

पइया–१०९,११० [संज्ञा] वह धान जिसमें चावल न पड़ा हो; १०९ **पइया फांफर**–यह भी इसी अर्थ मे प्रयुक्त होता है।

पइरि–६९,८५ [संज्ञा] दँवाई के लिये अनाज का जो समूह फैलाया जाता है (सं० प्रकर वा सं० प्रदर (प्रद=टुकड़े टुकड़े करना) तु० म० पेर।)

पइलगहा–१६५ [वि०] दोषयुक्त।

पइली–२१ [अ०] हरवाहो की एक बोली जिसको वे बैलो को खेत तक ले जाने के लिये बोलते हैं।

पउदर–३४ [संज्ञा] सिंचाई वाले कुओ में वह ढालू भाग जिस पर बैल चलते है (पाद-दलित–)।

पउदरि–३२५ [संज्ञा] वही।

पउली–३६३ [संज्ञा] तलवा का विपरीत अंश (पाद–)।

पकठब–९०,१४४ [क्रि०] पकठना—पकना (प्रकृष्ट–)।

पकब–११ [क्रि०] बोआई के योग्य खेत तैयार होना।

पक्का करब–३०५ [वि०] पानी में सूत भिगोकर उसे दृढ़ करना। ऐसे सूत को पक्का सूत कहते हैं (सं० पक्व)।

पखियारी–३५६ [संज्ञा] गले का एक आभूषण।

पगहा–१७१,२८२ [संज्ञा] पशुओं के बाँधने की रस्सी (सं० प्रग्रह प्रा० पग्गह)।

पगही–२५४ [संज्ञा] पगहा का अल्पा०।

पचखा–३८४ [संज्ञा] धनिष्ठा आदि पाँच नक्षत्र जिनमे किसी नये कार्य का करना निषिद्ध है (हिं० पाचख सं० पंचक)।

पचरवाइब–२२४ [क्रि०] पचरवाना—कोल्हू आदि मे पच्चर लगाना।

पचार–१९ [संज्ञा] जुआ के उपल्ला और तरल्ला को सम्बन्धित करने वाली लकडियाँ (हि० पच्चर सं० पच्यते–?)।

पचीसा–६६ [संज्ञा] पचीस (पंचविंशति)।

पचौखा–२७८ [संज्ञा] पुरोहित के लिए निकाली हुई पाँच ईख (पच + हि० ईख)।

पछनी–२९८ [संज्ञा] दे० 'परछनी'।

पछाड़ देब–१६८ [क्रि०] पछाड देना, गिरा देना (सं० पश्च–)।

पछुआँ–१६८ [वि०] पश्चिम से आने वाली। यथा, पछुआँ हवा।

पछुमहा–१६३ [वि०] पश्चिम वाला। यथा, पछुमहा बैल।

पछुवाँ–६८,१२६,२३० [वि०] दे० 'पछुआँ'।

पछेला–२५८ [संज्ञा] हाथ का एक गहना।

पछोरब–३२९,४०६ [क्रि०] सूप से अनाज साफ करना।

पटकन–२१ [संज्ञा] बैल हाँकने का डंडा जिसके एक सिरे पर बैलों को मारने के लिए चमड़े का तीन-चार तार बँधा रहता है।

पटनई–२१३ [संज्ञा] दीवार में बाँस या लकडी गाड कर उस पर मिट्टी छोपकर सामान रखने के लिए एक चौडी जगह बनाते हैं (सं० पाट)।

पटनहियाँ–१४१ [वि०] पटना से आने वाली। यथा, पटनहियाँ आलू।

पटनी–२१३ [संज्ञा] दे० 'पटनई'।

पटरी–३६१ [संज्ञा] पटरी सदृश पैर का एक आभूषण।

पटहार–२५७,३६७ [संज्ञा] गहना गुहने वाली एक जाति (सं० पट्टकार ?) हि० पटवा (पाट + वाह ?)।

पटिया–६ [संज्ञा] ऐसा खेत जो चौड़ाई की अपेक्षा अधिक लम्बा हो (सं० पट्टिका); ३२१ दे० 'पट्टी'।

पटुका–२१५ [संज्ञा] बडेर से ओरौती तक मकान की चौडाई मे जो लकडियाँ लगती हैं (सं० पट्टिका)।

पटौधन–२१२ [संज्ञा] दरवाजे के ऊपर रखी हुई लकडी या पत्थर।

पट्टा–८९ [संज्ञा] मटर की फली में जब छोटे-छोटे दाने पडने लगते हैं तब उसे पट्टा कहते हैं, तु० 'पांपटा'; ३५८ कलाई मे पहने जाने वाला गहना; ३७३ सर के बालो को पीछे की ओर फेरकर रखना (सं० पट्ट)।

पट्टी–३२० [संज्ञा] टाट की पटिया (सं० पट्टिका)।

पठौनी–१८७ [संज्ञा] चरवाहो के बच्चे दोपहर को जो बारी-बारी से खाना खाने घर जाते हैं (सं० प्रस्थाप्–)।

पड़ब–११७ [क्रि०] माल तैयार होना।

यथा, मोटी ईख में गुड अधिक पड़ता है।

पड़ोह–२२५ [संज्ञा] घर की नाली।

पतई–१२२ [संज्ञा] ईख की पत्ती (सं० पत्र); २७६ मुहा० **पतई बैठाइब**–ऑटा बाँधने के लिए पत्ती समकियाना।

पताँड़–५९,१२२,१२४ [संज्ञा] ईख के टुकड़े जो बोने के लिए काटे जाते हैं तु० गॉड़; २९५ कोठिला के लिए बनाया हुआ गोला छल्ला; १२५ मुहा० **पताँड़ बैठाइब**–ईख की पहली गोड़ाई जिसमें उखड़े हुए पताँड़ फिर से बैठाये जाते हैं; १२२ **पताँड़ मारब**–पताँड़ बाल कर टुकड़े-टुकड़े करना।

पतेला–९१ [संज्ञा] मटर की पत्ती का भूसा; ९८ अरहर की सूखी पत्ती।

पत्तर–१० [संज्ञा] फरसे में पासा के सामने का चद्दर का चौड़ा भाग; २५१,३६१ किसी धातु को पीट कर बनाया हुआ पतला रूप (सं० पत्र)।

पतुकी–२२२ [संज्ञा] हॉडी (सं० पात्री–)।

पथरब–६४ [क्रि०] औजारों को पत्थर पर रगड़ कर तेज करना।

पथरिया कोल्हू–२६९,३२१ [संज्ञा] ईख पेरने का पुराना पत्थर का कोल्हू (प्रस्तर–)।

पदरौंकब–१५७,१८१ [क्रि०] पशुओं का भागना।

पदरौंकनही–१५७ [वि०] भागने वाली। यथा, पदरौंकनही गाय।

पनवॉ–२४६ [संज्ञा] हुमेल आदि में लगी हुई बीच वाली चौकी जो पान के आकार की होती है (सं० पर्ण–)।

पनवाड़ी–२२२ [संज्ञा] पान की खेती का स्थान तु० भीटा।

पनहाँ–२२२ [संज्ञा] ओगती के नीचे के स्थान को पनहाँ कहते हैं।

पनिआब–१९७ [क्रि०] कुएँ में खोदाई के समय पानी दिखाई पड़ना।

पनिक–२१० [संज्ञा] जोलाहों का एक औजार जिससे बय में सूत पहनाते हैं।

पनिगत–१६६ [वि०] पानी वाला अर्थात् मजबूत। यथा, पनिगत बैल।

पनियउवा–२७७ [वि०] पानी मिला हुआ। यथा, पनियउवा रस।

पनिवट–४२ [संज्ञा] जिस रास्ते से सिचाई होती है (सं० पानीय वंड, तु० म० पाणि एड़ा ?)।

पपरी–२५ [संज्ञा] माटी की पतली परत (सं० पर्पटिका ?)।

पयॅड़–३८१ [संज्ञा] रस्से का दस हाथ लम्बा टुकड़ा दे० 'पैंड़'।

परई–२२३,२७४,३२५ [संज्ञा] दिये से बड़ा मिट्टी का बरतन (हिं० पार)।

परकार–२४२ [संज्ञा] वृत्त बनाने का एक औजार (फा० परकार)।

परगहनी–३४६ [संज्ञा] नली के आकार का सोनार का एक औजार जिसमें चाँदी-सोना ढालते हैं।

परचा–१४२ [संज्ञा] खेत में बरहो के बीच वाली जमीन (फा० पार्चह–)।

परछथी–२७६ [संज्ञा] छान की मरम्मत के लिए उसके ऊपर एक छोटी छान बनाकर रख देते हैं इसे ही परछथी कहते है (परि + छत)।

परछनी–२९८ [संज्ञा] खाते में सेवार रखने के कारण जितनी चीनी में सफेदी आ जाती है तु० 'पछनी'।

परजा–३६७ [संज्ञा] नाई-धोबी आदि जो सेवा कार्य्य करने वाली जातियाँ है परजा कहलाती हैं (सं० प्रजा)।

परत–२४१ [संज्ञा] तह (सं० पत्र?)।

परतिया–७ [वि०] वह खेत जो परती जमीन तोड कर बनाया गया हो। यथा, परतिया खेत; तु० 'परुइयाँ'।

परभू–२०५ [संज्ञा] मकान की छाजन में बडेर से ओरौती तक लगने वाली कड़ियो को कोरो कहते है, और कोरो के छोटे पड़ने पर उनमे जो जोड़ लगाते है उन्हे परभू कहते हैं।

परमल–४०६ [संज्ञा] ज्वार या गेहूँ का एक प्रकार का भुना हुआ दाना (स० परिमल=सुगंध) तु० म० परमल=दुर्गंध।

परानी–२२६ [सज्ञा] परिवार का कोई व्यक्ति (सं० प्राणिन्); दोनो परानी–दम्पति के लिए प्रयुक्त होता है।

परिहथ परिहथी–१४, १६ [संज्ञा] हल का वह अंग जिसका ऊपरी भाग हाथ मे रहता और निचला भाग हल से सम्बन्धित होता है।

परी–३२८ [संज्ञा] तेल या घी देने के लिए लोहे का एक छोटा पात्र जिसमे लगभग आधी छटाक सामान आता है।

परुआ–१६६ [संज्ञा] वह बैल जो चलाने पर बैठ-बैठ जाये। यथा, परुआ बैल।

परुइयाँ–७ [संज्ञा] वह खेत जो परती जमीन तोड़ कर बनाया गया हो। यथा, परुइयाँ खेत, तु० परतिया।

परेउ लगब–२६९ [क्रि०] पथरिया कोल्हू चलने के समय आधी रात को ईख पेरने वालो की पारी बदलना।

परेता–३१७ [संज्ञा] ऊन कात कर उसे लपेटने का एक यंत्र।

परेथी, परेहथी–१६ [संज्ञा] दे० 'परिहथ'।

पलंग–२४९ [सज्ञा] अच्छी चारपाई जिसके पावे खरादे हो (सं० पल्यंक)।

पलई–५,१४२ [संज्ञा] दूर। यथा, पलई का खेत (तु० हिं० पल्ले – दूर) ११५ सनई के पौधे का शीर्ष भाग (स० पल्लव)।

पलटा–२५ [संज्ञा] एक बार में हेंगा से जितनी जमीन हेगाई जाती है, (सं० परि+अट् प्रा० पल्लटइ) दे० पहँटा।

पलथाखाब–२५९ [क्रि०] पलट जाना (पर्यस्तिका, प्रा० पल्लत्थिआ)।

पलथा खिलाइब, पलथियाइब–२४५ [क्रि०] पलट देना।

पलरा–३३४,३४४ [संज्ञा] रहठा या बाँस का सामान ढोने का एक पात्र (सं० पटल)।

पलरी–३३४ [सज्ञा] पलरा का अल्पा०।

पलहा–२५४ [संज्ञा] तीन बैलिया गाडी में बीड के पीछे के दोनो बैलों को अलग-अलग पलहा कहा जाता है। दे० 'पल्ला'।

मध्य का उठा हुआ भाग (सं० पंजर)।

पाँड़ा–१७७ [संज्ञा] भैंस का नर बच्चा (प्रा० पड्डुय म० पाडा = बाछा)।

पाँड़ी–१७७ [संज्ञा] भैंस का मादा बच्चा (प्रा० पड्डिया = छोटी भैंस, छोटी गाय) ।

पाँव ऑतर–१२४ [संज्ञा] पैर के तलवे के बराबर अन्तर (सं० पाद + अंतर)।

पाँस–७ [संज्ञा] राख-गोबर आदि खाद जो खेत मे डाले जाते हैं, यह शब्द खाद के साथ प्रयुक्त होता है। यथा, खाद-पाँस (सं० पांशु)।

पाई–१२१ [संज्ञा] सौ हाथ के बराबर एक पैमाना; ३०९ [संज्ञा] कपड़ा बुनने के पहले जुलाहे ताने के सूत को माँजने के लिये फैलाते है जिसे पाई कहते हैं।

पाख–१४१ [संज्ञा] पखवारा; २०८, २१४ मकान का वह भाग जिस पर बड़ेर रखी जाती है (सं० पक्ष)।

पाखड़ी–२६० [संज्ञा] गाड़ी मे सामान गिरने से रोकने के लिए टाट का परदा।

पाग–२७२–[संज्ञा] कड़ाह मे बोझा हुआ ईख का रस (स० पाक)

पाचर–४३, ३२४ [संज्ञा] लकड़ी का टुकड़ा जो कील रूप मे ठोंक दिया जाता है, कोल्हू मे जोड के रूप मे लगाई जाने वाली लकड़ी (फा०-पार्चह = कपडे का टुकडा) तु० म० पाचर।

पाटन–२२४ [संज्ञा] दोमंजिले मकान में पहले मंजिल का पटाव।

पाटा–१४ [संज्ञा] हरिस और हर के जोड़ को कसने वाली लकड़ी (पट्ट); ३४२ बाँस की चौड़ी पत्ती जो बुनने के काम मे आती है; २९३ चूल्हा बनाने के लिए मिट्टी की अर्द्धवृत्ताकार डेढ़ हाथ लंबी एक बित्ता चौडी पट्टी; २९४ मुहा० **पाटा डालब या मारब**–शक्कर को फैला कर चमक ले आने के लिए पैर से रौदना; २९८ **पाटा कसब**-कच्ची चीनी की पछुनी को उसमे सफेदी तथा चमक ले आने के लिए उसे धूप मे डालकर पैरो से रगडना।

पाटी–२४९,२८३ [संज्ञा] चारपाई की दोनों बगल की लकडियाँ (सं० पाट); २४९ मुहा० **पाटी सालब**–पावे मे पाटी बैठाना; २५३ [संज्ञा] टटरे के बाजू वाले बाँस।

पाठा–१७८ [संज्ञा] एक रोग जिस मे शरीर के किसी स्थान से रक्त बहता है।

पातर–७ [वि०] कमजोर। यथा, पातर खेत (सं० पत्रल प्रा० पत्तल)।

पाती–१४ [संज्ञा] हरिस और हर के पास एक पतली लकडी जो उसे कसने के काम में आती है; २०७,२२५ ईख आदि की पत्ती (स० पत्री), ३४२ फल्ठे की चौड़ी पत्ती जो पंखा बुनने के काम आती है।

पाथी–२५० [संज्ञा] बढ़ई को साल भर मे मिलने वाला अनाज; ३४३ दौरा (पाथा, सं० प्रस्थ)।

पान–२२४ [संज्ञा] एक लता का पत्ता (स० पर्ण); १२९ मुहा० **पान उतारब**–

पौधे से पान तोड़ना ; १२९ पान मोरब–पान को सरहरी पर चढ़ाना।

पानी–१४२ [संज्ञा] जल (सं० पानीय) १४२ मुहा० पानी कटाइब–बरहा या नाली में पानी काटना; ११ पानी खाब–मिट्टी का पानी प्राप्त करना; १४२ पानी चटाइब–मामूली सिंचाई करना; २४२,२६७ पानी चढ़ाइब–लोहे को गरम कर के ठण्डे पानी में बुझाना; ४१ पानी चलाइब–ढेंकुर या चरखी चलाना; पानी जोरब–सिंचाई आरंभ करना, २७२ पानी देब–औजार गरम करके उसे पानी में बुझाना; १४२ पानी दौड़ाइब–सिंचाई करना; ४१ पानी नाथब–ढेंकुर या चरखी आरंभ करना; १९२ पानी पूँछब–किसी जानकार से यह पता चलाना कि अमुक स्थान पर कुआँ खोदने से पानी निकलेगा, दे० 'जानकार'। ४४,१४२ पानी बराइब–एक बरहा से दूसरे बरहा या नारी में पानी ले जाना; ४७ पानी बुदकारब–हाथा द्वारा बहुत मामूली सिंचाई करना; १४२ पानी रंगाइब–साधारण सिंचाई करना; पानी लगब–खेत में पानी एकट्ठा होना।

पायजेब–२६१ [संज्ञा] दे० 'पैजेब'।

पायल–२६१ [संज्ञा] पैर का एक आभूषण विशेष (प्रा० पायजाल ?)।

पार बहब–१५८ मुहा० गाय के ऊपर साँड़ का चढ़ना (सं० परम् = दूसरी ओर का किनारा + वह् = गर्भ धारण करना; तु०. प्रा० पार = करने में समर्थ होना)।

पारी–२७२ [संज्ञा] दे० 'पारही'; २७५ बारी।

पारही–२३२ [संज्ञा] खपड़े का छीना जिसमें कुम्हार राखी रखता है; २६३ रीढ़ के दोनों ओर की नस; २७२ कड़ाह के पास बैठने के लिये ऊँचा स्थान (सं० पार्श्व)।

पाल–१९५ [संज्ञा] खोखला स्थान (सं० पोल); २६० गाडी के ऊपर वर्षा से बचत के लिए लगाया गया परदा; १५८ मुहा० पाल खाब–जोड़ा खाना, बरदाना (सं० प्राल पा० पालि = अंत; तु० म० पाल = टोंक) तु० पाल बहब। १९५ पाल मारब–कुएँ की खोखर में बलुही मिट्टी के कारण पोल रह जाना।

पावड़ी–२१२ [संज्ञा] बुनाई से सम्बन्धित वे लकड़ियाँ जो ताना ऊपर नीचे करने के लिए पैर से दबाई जाती हैं।

पावदान–२६६ [संज्ञा] लोहे का एक औजार जिस पर मोची जूता रखकर कीलें आदि ठोंकता है (फ़ा० पायदान); २१२ [संज्ञा] दे० 'पावड़ी'।

पावसार–२१२ [संज्ञा] दे० 'पवसार'।

पावा–२५,२०१ [संज्ञा] कुएँ पर गड़ारी आदि रखने के लिये बने हुए दोनों ओर के पावे (सं० पाद–)।

पास–१९७ [संज्ञा] कुएँ की नीचे की बलुही मिट्टी (सं० पांशु); मुहा० पास आइब–कुएँ की खोदाई में अगल-बगल की मिट्टी का पानी के साथ निकलना। १९७ मुहा० पास फेंकब या ढकेलब–वही।

पासा–१०,६१ [संज्ञा] फरसा तथा कुदाल का पिछला गोला भाग जिसमें बेंट डाला जाता है (सं० प्रास–)।

पाहा–४५ [संज्ञा] चना के खेत की बड़ी-बड़ी कियारी; १३७ पान की खेती में दो आँतरों के बीच का स्थान; दे० 'पह'। ४५ मुहा० **पाहा रेंगाइब**–पाहा में पानी भरना।

पाही–५,५२ [संज्ञा] दूर में रहने का अस्थायी स्थान; दूर के खेत को **पाही का खेत** कहते हैं (सं० पाथेयी–); १४२ बरहों के बीच का स्थान (तु० पाणद्धी=दो खेतो के बीच का मार्ग) दे० 'परचा'।

पिछवा–२७२ [संज्ञा] गुलउर के पीछे धुआँ निकलने का स्थान (सं० पश्च–)।

पिटना–२३३ [संज्ञा] कुम्हार का लकड़ी का बना पीटने का एक औजार।

पिंड़िया–२८५ [संज्ञा] छोटी भेली (सं० पिंडक)।

पिढ़ई–९८,३२९ [संज्ञा] लकड़ी का छोटा पीढ़ा (सं० पीठिका)।

पिंड–२१० [संज्ञा] मकान की लम्बाई-चौडाई (सं० पिंड=मकान का एक भाग) मुहा० **पिंड उतारब**–ज्योतिषी से पूछ कर मकान की लंबाई-चौडाई निश्चित करना, जिसके नाम से पिंड उतारा जाता है वही नीव देता है।

पियरकी–१००,११९,१३२ [वि०] पीली (सं० पीत–)।

पियाइब–२९५ [क्रि०] चीनी के गढ़ को एक हौदे से दूसरे हौदे में डालना। २१७ मुहा० **खपड़ा पियाइब**–छाजन मे एक के ऊपर एक खपड़ा बैठाकर रखना; **खपड़ा पिया-पिया कर रक्खब**–वही।

पियरवा–१९५ [वि०] पीली। यथा, पियरवा माटी।

पियाज–१४५ [संज्ञा] प्याज (फ़ा० पियाज) १४६ कहा० **बाइस पानी पियाज नाहीं तो भइल छियाज**।

पिरोउब–४०७ [क्रि०] सूई में डोरा डालना (प्रा० पोइअ)।

पिसनहरि–४०३ [संज्ञा] पिसान पीसने वाली (सं० पिष्–)।

पिसाई–४०३ [संज्ञा] पीसने का कार्य; पीसने की मजदूरी।

पिसान–४०३ [संज्ञा] पीसा हुआ अन्न—आटा।

पिसौनी–४०३ [संज्ञा] पीसने के बदले मे दी गई मजदूरी।

पिहान–५०,२९५ [संज्ञा] ढक्कन (सं० पिधान)।

पिहिका–१२९ [संज्ञा] ईख का एक रोग (सं० प्लीहा–?)।

पींड़–२३३ [संज्ञा] कुम्हार का मुठिया के आकार का एक औजार जिससे वह बरतन पीटता है।

पीकर–२१२ [संज्ञा] करगह में वह चीज जिसके द्वारा ढरकी को धक्का दिया जाता है।

पीठी सानब–२९२ [क्रि०] उलदा शक्कर को गरम पानी से सानना। **पीठी सानी शक्कर**–गरम पानी से सानी हुई उलदा शक्कर (सं० पिष्टक=पीठी)। दे० 'उलदा'।

पींड़ा–२२२ [संज्ञा] चाक पर का मिट्टी का पिंड (सं० पिंड)।

पुअरा, पोरा वा पोवरा–११०,११४, १७९,२११ [संज्ञा] धान के पौधे का डंठल (सं० पलाल)।

पुट्टा–२२५ [संज्ञा] चूतड़ का ऊपरी उठा हुआ भाग (सं० पुष्ट)।

पुट्ठी–१९८ [संज्ञा] कुँए में पड़ने वाला नीचक जो पहिये कि भाँति होता है; २५६ बैल गाड़ी के पहिये के घेरे का एक भाग–कई पुट्ठियों को जोड़ कर पहिया बनती है।

पुनुई–१२२ [संज्ञा] पौधे का ऊपरी सिरा (हिं० फुनगी)।

पुर–२६ [संज्ञा] सिंचाई का एक साधन (सं० पूर – चमड़े का बहुत बड़ा डोल)।

पुरइन–१५९ [संज्ञा] (सं० पुटकिनी प्रा० पुडइणी); मुहा० पुरइन आइब – बच्चा होते समय गर्भाशय का बाहर निकलना। दे० 'फूल आइब'।

पुरबहिया–९९ [वि०] पूर्वी यथा, पुरबहिया (सं० पूर्वी) तु० पुरवा।

पुरबिहा १६३ [वि०] पूर्व का।

पुरवट–२६ [संज्ञा] सिंचाई का एक साधन।

पुरवा–१०१,१२६,२३० [संज्ञा] पूर्व दिशा से बहने वाली वायु (सं० पूर्व-) तु० पुरबहिया।

पुरसा–२०० [संज्ञा] दे० 'पोरसा'।

पुरानी–११७ [वि०] अधिक दिनों से प्रचलित (सं० पुराना सं० पुराण)।

पुरसा, पुरसी वा पोरसी–११०, २१२, २१२ [संज्ञा] पुआल का छोटा-छोटा टुकड़ा।

पुश्तवान–२५२ [संज्ञा] वह आड़ी लकड़ी जो केवाड़ के पीछे पल्ले की मजबूती के लिये लगाई जाती है (फा० पुश्त + वान)।

पुसौटब–७७ [क्रि०] जौ के पौधे का गर्भ धारण योग्य होना।

पुसौंटल–७७ [वि०] जौ का पुष्ट पौवा जो गर्भ धारण के योग्य हो।

पूई–१२२ [संज्ञा] ज्वार की बाल में बाल की तरह जो रेशे होते हैं।

पूँजा–१०८, ११२ [संज्ञा] पौधे का समूह (सं० पुंज)।

पूता–२९४ [संज्ञा] चूल्हे के दो अइलों को जोड़ने के लिये मिट्टी का जो जोड़ होता है। द्र० 'अइला'।

पूनी–२१६ [संज्ञा] धुनी हुई रुई की बत्ती जो सूत कातने के लिये तैयार की जाती है (सं० पिंजिका)।

पूरन–२४२ [संज्ञा] दौरी के भीतर की चटाई सदृश वह बुनावट जो दौरी तैयार होने पर अंत में उसमें बैठाई जाती है; पूरन छानब–पूरन की बिनावट आरंभ करना।

पूरी–११६ [संज्ञा] सनई से सन निकालने के लिए जो बोझ बनाया जाता है।

पूहा–१८४ [संज्ञा] पशुओं के बुलाने की सांकेतिक बोली।

पेंदा–२९, २९५ [संज्ञा] किसी पात्र के नीचे का भाग।

पेंदी–५२, २२४ [संज्ञा] बड़ी।

पेवँदा–४०७ [संज्ञा] कपडे के किसी छेद को बद करने के लिए लगाया गया जोड़ (फा० पैबंद)।

पेउस–१६० [संज्ञा] ब्याई हुई गाय या भैंस का दूध सात दिन तक पेउस कहलाता है (सं० पेयूष)।

पेंच–२७० [संज्ञा] कल, पुरजा (फा० पेच)।

पेटकुइयाँ–२०१ [संज्ञा] कुएँ के भीतर एक छोटा कुआँ।

पेटार–२७४ [संज्ञा] बोरे का थैला जिसमें गल्ला भर कर बैलो पर लादते है (सं० पेटक)।

पेटारा, पेटारी–४१० [संज्ञा] बाँस या मूँज का बना हुआ ढक्कनदार एक पात्र (सं० पेटक)।

पेटी–३७३ [संज्ञा] चमड़े की पेटी; २८२ बीड़ वाले बैल के पेट के चारो ओर बँधी हुई रस्सी (सं० पेटिका)।

पेड़हरा–३३३ [संज्ञा] पेड के तने का भाग।

पेड़ा–८ [संज्ञा] ईख का जड वाला भाग जो ईख काट लेने पर दूसरी फसल के लिये खेत मे छोड़ दिया जाता है (सं० पिढ); मुहा० **पेड़ा मारब**–पेडा को खन कर निकालना। **पेड़ा राखब**–पेड़ा को दूसरी फसल के लिए छोड देना।

पेड़ी–८,७४,१२० [संज्ञा] ईख की जड़ वाला भाग; वह खेत जिसमें पेडी रखी गई हो। १३८ पान का पुराना पौधा जो लगाने के लिए सुरक्षित रखा जाता है। १२० मुहा० **पेड़ी राखब**–दे० 'पेडा राखब'। ८ कहा० **पेड़ी निकारे रोगी होइ। बेटी निकारे कोढ़ी होइ॥** तथा **पेड़ी और बेटी न निकारै क**=पेडी और बेटी न बेंचना चाहिए।

पेनी–३४३,४०९ [संज्ञा] पेंदी; मुहा० **पेनी छानब**–पेनी आरम्भ करना।

पेन्हाब–१६० [क्रि०] गाय के स्तन में बच्चे को दूध पिलाने के लिए दूध उतरना (प्रस्नावय्-)।

पेवन–४०७ [संज्ञा] दे० 'पेवँदा'।

पेरना–११८ [क्रि०] कोल्हू द्वारा ईख कुचलकर रस निकालना।

पेराई–३२८ [संज्ञा] पेरने का कार्य (सं० पीड़न)।

पेरुआ रस–२७७ [संज्ञा] ईख का वह रस जो पीने के लिए पेरा जाता है।

पैच–३४२ [संज्ञा] बाँस के पतले-पतले तेज़ टुकडे।

पोतारी–३११ [संज्ञा] वह कपडा जिससे पोता जाता है।

पोपटा–८९ [संज्ञा] मटर की छीमी मे जब दाने पडने लगते हैं तब उसे पोपटा कहते हैं (सं० पर्पट) तु० 'पट्टा'।

पोपरी–२५ [संज्ञा] खेत में थोडी वर्षा से पपडी पड़ जाना (सं० पर्पट)।

पोय–१२५,१२६,१२८ [संज्ञा] ईख के पौधे का आरंभिक नरम कल्ला (सं० पोतक)।

पोर–११८ [संज्ञा] ईख में दो गाँठों के बीच का भाग, तु० अँकउरा; ३४२ बाँस का गाँट वाला भाग (सं० पर्व)।

पोरसा–२०० [संज्ञा] पुरसा—पुरुष

अपना हाथ उठाकर कुएँ, तालाब या पानी की गहराई नापता है; यह माप लगभग पाँच हाथ होता है (सं० पुरुष पा० पुरिसो, तु० न० पुरुत)। मुहा० पोरसा बाँधब–कुएँ में पुरसा की ऊँचाई पर ईंटें गाड़ देना ताकि कुएँ में उतरने में सुविधा हो।

पोरसी–११०,३९३ [संज्ञा] दे० 'पुरसा'।

पोरा–११४ [संज्ञा] दे० 'पुअरा'।

पोला–२०५ [संज्ञा] सूत का लच्छा जो परेती पर से उतारा जाता है (सं० पूलक)।

पोवरा–२९१ [संज्ञा] दे० 'पुअरा'।

पोस्त–१५० [संज्ञा] एक पौधा जिससे अफ़ीम निकलती है (फ़ा० पोस्त)।

पैंड़–१२२ [संज्ञा] ईख के बोने के टुकड़े (पैंड़=खंड—'देशी नाममाला') दे० 'पताँड़'।

पैंतरब–१२७ [क्रि०] पैर से खेत की मिट्टी बराबर करना (सं० पाद–)।

पैंचल–१८०,१८२ [संज्ञा] बदमाश और भागने वाली गाय (पाद+चंचल)।

पैंजनी–२९८ [संज्ञा] गाड़ी के दोनों बगल लगी हुई लकड़ियाँ जिनमें पहिए का धुरा रहता है।

पैंजेब–३६१ [संज्ञा] स्त्रियों के पैर का एक आभूषण (फ़ा० पाजेब)।

पैंताना–२८२ [संज्ञा] पलँग का पैर की ओर का भाग (सं० पादान्त–)।

पैंना–२१ [संज्ञा] हलवाहों की बैल हाँकने की लकड़ी (सं० प्राजन)।

पैंरा–३१,७४,९७ [संज्ञा] छींटकर बोने की क्रिया (सं० प्र+ईर, प्रा० पयर; तु० म० पर=बोना)।

पोंकब–१७८ [क्रि०] बहुत पतली टट्टी होना—पशुओं का एक रोग (सं० पू (पूय); तु० न० पूँ=मल का ढेर)।

पोआ–१६० [संज्ञा] गाय का नव जात बच्चा (सं० पोत–)।

पोखब–३२७ [क्रि०] पोषण करना (सं० पुष्)।

पोखरा–२३ [संज्ञा] तालाब (सं० पुष्कर)।

पोछउवा, पोछवा–२७२ [संज्ञा] गुलउर के पीछे धुआँ निकलने का रास्ता।

पोटियाब–७५ [क्रि०] जौ के पौधे में पत्तियों का विकसित होना।

पोटी–७५ [संज्ञा] जौ के पौधे की आरंभिक अवस्था में निकली हुई नई-नई पत्तियाँ।

पोढ़–९८,२४३,२८७ [वि०] पुष्ट (सं० प्रौढ़)।

पोढ़गर, पोरगर–२४३ [वि०] वही।

पोढ़िया–२६२ [संज्ञा] पैर की अँगुली का एक गहना।

पोतनी माटी–३ [संज्ञा] एक प्रकार की चिकनी पोतने योग्य मिट्टी।

पोस्तेरी–१५३ [संज्ञा] पोस्त के सूखे फलों के टुकड़े।

पोहता–१५० [संज्ञा] दे० 'पोस्त'।

पौंड़ा–१२८ [संज्ञा] एक प्रकार का मोटा गन्ना (सं० पौंड्रक)।

पौआ–३२८ [संज्ञा] सेर का चतुर्थांश (सं० पादक)।

पौढ़ा–२६ [संज्ञा] बेड़ी चलाने के लिए खड़े होने का स्थान।

पौदर–२७० [संज्ञा] वह रास्ता जिस पर पुरवट का बैल चलता है।

पौधव–२२२ [क्रि०] पौधे में अंकुर निकलना।

पौना–२७४,२८१ [संज्ञा] लोहे की एक झन्नी विशेष।

पौला–२८२ [संज्ञा] एक प्रकार की खड़ाऊ जिसमें खूँटी न लगाकर रस्सी लगाई जाती है (सं० पादुका)।

प्यूनी–२९७, २९९ दे० 'पूनी'।

फ

फइँच–३४२ [संज्ञा] दे० 'पैंच'।

फटउद–१६१ [संज्ञा] पेउस आग पर रख देने पर फट जाता है, उस दशा में उसे फटउद कहते हैं (फटा + दूध)।

फटका–२९८ [संज्ञा] धुनकी (अनु०)।

फटनहिया–१९५ [संज्ञा] फट-फट की ध्वनि से तेजी से गिरने वाली कुएँ की मिट्टी (सं० स्फट् –)।

फड़–२५७ [संज्ञा] बैलगाड़ी का वह भाग जिस पर माल लदता है (सं० पट ? फा० फ़र्द वा फा० फड़ = सार्वजनिक व्यापार स्थान, तु० अं० मा० फलग (फलक)।

फतिंगा–४९ [संज्ञा] ईख की पत्ती मे लगने वाला एक कीड़ा (स० पतंग)।

फतुही–२२२ [संज्ञा] एक प्रकार का पहनने का वस्त्र (अर० फतूही)।

फनगी–१२९ [संज्ञा] दे० 'फतिङ्गा'।

फरका–२०५ [संज्ञा] छाजन के दोनों भागों में से एक भाग (सं० फलक)।

फरगुद्दी–४९ [संज्ञा] एक प्रकार की छोटी चिड़िया (फल + गुद् –)।

फरसा–१० [संज्ञा] मिट्टी खनने का एक औजार (सं० परशु)।

फरहर–१०५,१४२ [संज्ञा] नमी कम हो जाने पर मिट्टी का कुछ सूखा हुआ रूप। यथा, फरहर माटी (तु० सं० स्फुट)।

फरियाइब–२९७ [क्रि०] रूई के कचरे को साफ करना।

फरुहा–१०[संज्ञा]फरसा (सं०परशुक·)।

फरुही–४३ [संज्ञा] खेत में नाली बनाने का एक उपकरण।

फलठा, फल्ठा–२३, १४०,१९२,२१६, ३४२ [संज्ञा] बाँस का चीरा हुआ रूप।

फाँक–१२० [संज्ञा] किसी चूर्ण का उतना भाग जितना एक बार में मुँह में डाल कर खाया जा सके (अनु० अथवा अर० फक्क = जबड़ा; तु० म० फका)।

फाँकब–१२१ [क्रि०] टुकड़े-टुकड़े काटना (फाँक –)।

फाट–२८७ [संज्ञा] राब रखने पर कुछ समय बाद उसका शीरा ऊपर आ जाता है, इसी शीरे को फाट कहते हैं (फट् –)।

फानब–२२ [क्रि०] आरम्भ करना। यथा, हराई फानब (सं० स्पन्द्)।

फाना–२८२ [संज्ञा] फंदा (सं० स्पन्द्)।

फार–१४,३२७ [संज्ञा] हल का लोहे का नोकीला भाग जिससे मिट्टी खुदती है (सं० फाल)।

फाहा–३९७ [संज्ञा] साफ की हुई रूई जिसके रेशे-रेशे अलग हो।

फिरकी–४०० [संज्ञा] रुपये के बराबर आकार का तकली का एक भाग (फिर्–)।

फुटकी–३१६,३९७ [संज्ञा] रूई का कचरा (सं० पुटक)।

फुटहरा–४०६ [संज्ञा] मटर या अरहर का भुनाने पर फुटा हुआ रूप (सं० स्फुटन)।

फुनगी–९७ [संज्ञा] पौधे के सिरे का भाग जहाँ पत्तियाँ खिली नहीं रहती (सं० पुंग, स्फुलिंग ?)।

फुनना–४०९ [संज्ञा] फुलरा—कपड़े का छोटा-छोटा फूल जो सजावट के लिए बनाया जाता है (हि० फुँदना)।

फुफकारब–१४२ [क्रि०] पानी छिड़कारना, छींटें देना।

फुरुहरी–३६४ [संज्ञा] नाक का एक आभूषण (हि० फूल)।

फुलनहवाँ आलू–१४१ [संज्ञा] एक प्रकार का आलू जिसके पौधे फूलते हैं।

फुलबाँस–३३९ [संज्ञा] एक प्रकार का बाँस।

फुलही–४१० [वि०] फूलदार। यथा, फुलही मौनी।

फुल्ली–३६९ [संज्ञा] सूत का घुंडी के आकार का बनाया गया एक फूल जो गहना गुहने मे सुन्दरता बढ़ाने के लिए होता है।

फूल–१५९ [संज्ञा] गर्भाशय; मुहा० फूल + आइब = बच्चा होते समय गर्भाशय का निकलना (सं० पुष्प ? तु० म० फूल = गर्भाशय); १०८ मुहा० फूल घोंटब–धान के कोष में गर्भधारण की क्रिया; ३७२ मुहा० फूल झड़ब–किसी औजार की धार का झड़ना। २९८ [संज्ञा] चीनी के खाते के ऊपरी भाग की सब से साफ चीनी।

फूला–२८४ [संज्ञा] शीरे का बुल्ला (फुल्ल); २८४ मुहा० फूला उठब–बुल्ले का आना; फूला लेब–वही।

फूली–१६९ [संज्ञा] आँख का एक रोग।

फेउस–१०७ [संज्ञा] दे० 'पेउस'।

फेकसा–२६३ [संज्ञा] हृदय के पास का मांस।

फेट–२४५ [संज्ञा] लकड़ी की खिल्ली।

फेटकट आरा–२४२ [संज्ञा] एक प्रकार का आरा (सं० पट, तु० हिं० फेटा)।

फेदा–२७०,३२०,३४१ [संज्ञा] बाँस के जड़ की ओर का भाग (हिं० पेंदा)।

फेरफार–२१८ [यौ०] छाजन की मरम्मत में खपड़ों की अदल-बदल।

फेरवा–३५७ [संज्ञा] एक आभूषण।

फेरा–२३ [संज्ञा] एक पूरा चक्कर।

फेरौटी–२१८ [संज्ञा] खपड़ैल की छाजन की मरम्मत (प्रा० फेरण)।

फैकट–१६६ [वि०] बदमाश बैल।

फोंफर–२३ [वि०] पोली। यथा, फोफर माटी।

फोंफी–३४५ [संज्ञा] हवा फूँकने की बाँस की पोली नली; ३७१ पतले बाँस का एक पोला टुकड़ा जिसमें नाई अपनी नहरनी रखता है।

ब

बँकवा–११३ [संज्ञा] धान का एक रोग (सं० वक्र)।

बँगला पान–१२६ [संज्ञा] एक प्रकार का पान।

बंझा–९३,९९ [संज्ञा] न फलने वाले वृक्ष (सं० वंध्या)। १९१ घी पकाने पर कड़ाही में जली हुई करोनी, कहा जाता है कि इसके खाने पर स्त्री बंझा हो जाती है।

बंडा–२६४ [संज्ञा] अरुई की भाँति एक तरकारी।

बंदी–३५५ [संज्ञा] सर का एक आभूषण जो आगे की ओर माथे पर पहना जाता है।

बंधन–३४३ [संज्ञा] दौरी का मेड़रा जिस बाँस से बाँधा जाता है; ३७५ [संज्ञा] बंधन के काम आने वाली रस्सी (सं० बंधन)।

बँसकट–३४० [संज्ञा] बाँस का काम करने वाली एक जाति विशेष।

बँसफूल–२२६ [संज्ञा] दे० 'फुलबाँस'।

बँसफोर–३४० [संज्ञा] दे० 'बँसकट'।

बँसवाड़ी, बँसवारी–२२१ [संज्ञा] बाँस की कोठी।

बंसलोचन–२२३ [संज्ञा] किसी किसी बाँस के भीतरी भाग में प्राप्त होने वाले हल्के नीले रंग के छोटे-छोटे टुकड़े जो ओषधि के प्रयोग मे आते हैं।

बइर–१६४ [संज्ञा] एक फल (सं० बदर)।

बइरिया लाल–१६४ [संज्ञा] बइर की भाँति लाल।

बकेन, बकेना–१६२ [संज्ञा] वह गाय या भैंस जिसे बच्चा दिये हुए कई महीने हो गये हो (सं० वष्कयणी)।

बखरी–२२१ [संज्ञा] घर का भीतरी खुला हुआ भाग—आँगन।

बखिया–४०७ [संज्ञा] एक प्रकार की महीन सिलाई (फा० बख़िया)।

बगबगा शक्कर–२९४ [संज्ञा] बग बग चमकती हुई साफ शक्कर।

बगरी–१०३ [संज्ञा] एक प्रकार का भदईं धान जो छींट कर बोया जाता है (बगरना = छींटना, सं० विकिरण)।

बगल–२७३ [संज्ञा] बाहुमूल के नीचे की ओर का गड्ढा—काँख (फा० बग़ल); मुहा० बगल बनाइब–काँख के बाल बन ना।

बगला–२४६ [संज्ञा] किसी लकड़ी के चीरे जाने पर उसके दोनों भाग (फा० बग़ल)।

बगली–२०० [संज्ञा] बगल का भाग; मुहा० बगली भरब–कुएँ की जोड़ाई के समय कुएँ की दीवार और खोखर के बीच की जगह भरना।

बगहर–१५७ [क्रि०] भागने वाली गाय (सं० बल–+)।

बगुली गाय–१५५ [संज्ञा] बकुला के सदृश श्वेत गाय।

बघमुहाँ–२५८ [वि०] बाघ के मुँह सदृश। यथा, बघमुहाँ हुंडी।

बछवा–१६७ [संज्ञा] गाय का नर बच्चा (सं० वत्स, प्रा० वच्छ)।

बजरा–१७९ [संज्ञा] दे० 'बाजड़ा'।

बजड़हा–९ [विले०] बजड़ा वाला। यथा, बजड़हा खेत।

बजड़हिया–११८ [वि०] वही।

बझब–१२५ [क्रि०] फँसना (बद्ध,

प्रा० वज्झ)।

वझाइव–२६८ 'वझव' का सं०।

वड़का–१३४ [वि०] बड़े आकार का।

वड़ेर–२०५ [संज्ञा] छाजन के दोनों पल्लों के मध्य में लगने वाली लकड़ी। (सं० वंड् = विभाजित करना)

वड़ेरा–४२ [संज्ञा] खेत में सिंचाई के लिये तिरछे-तिरछे मध्य में जो नाली बनती है, दे० 'वड़ेर'; २१९ मुहा० वड़ेरा बाँधब–वड़ेरा की छवाई करना।

वड़ेरी–२२३ [संज्ञा] वड़ेर के ऊपर की छाजन।

वड़ौखा–११८ [संज्ञा] एक प्रकार की पुरानी ईख जो मोटी होती है।

वढ़ई–२४२ [संज्ञा] लकड़ी का काम करने वाला कारीगर (सं० वर्द्धकि प्रा० वड्ढइ)।

वतास–१७८ [संज्ञा] वात का रोग (सं० वात)।

वतासा–३६२ [संज्ञा] वतासा के आकार का पैर की अँगुलियों में पहने जाने वाला एक आभूषण।

वद-वद–२८४ [संज्ञा] शीरा पकते समय वद-वद की आवाज (अनु०, सं० वद्)।

वदमास–१६१ [वि०] शरारती (फ़ा० वद + अर० मआश = जीवन)।

वदरी–१९१ [संज्ञा] वादल (सं० वारिद)।

वद्धी–१६८,२५४ [संज्ञा] वधिया वैल (वध्रि); १६९ मुहा० वद्धी मानव–वद्धी का कार्य सफल हो जाना; २६५ चमड़े की पतली डोरी जो मृदंग-तबला आदि में मढ़ी जाती है (सं० वध्र)।

वधिया–१६८ [संज्ञा] जो वैल नपुंसक कर दिया गया हो, दे० 'वद्धी'।

वनिका–३०६,३०९ [संज्ञा] सूत के छोरे और कपड़े की पाई में लगाया गया सूत का बंधन।

वन्द–२४२ [संज्ञा] विलायती कपड़े की गाँठो में लगकर आई हुई पक्के लोहे की पत्ती (फ़ा० वन्द)।

वन्न, वन्नि–२४२ [संज्ञा] आरे की चद्दर को वन्न कहते हैं, दे० 'वंद'।

वन्हुई–२९७ [संज्ञा] शक्कर वनाने के लिए राव को लोथों में भर कर दवाते हैं, इस के फलस्वरूप जो शीरा चूता है उसे वन्हुई कहते हैं (सं० वन्ध्)।

वफियाव–२८० [क्रि०] कड़ाह के रस में वाफ वनना (सं० वाष्प प्रा० वप्फ)।

वय–३१०,३११,३१२ [संज्ञा] जुलाहों के करघे का एक अंग जिसमें सूत पहना कर बुनाई की जाती है (सं० वाय)।

वयसर–३१२ [संज्ञा] वह लकड़ी जिसमें वय पहनाई जाती है, दे० 'वय'।

वयार–१६८ [संज्ञा] हवा।

वयाला–२१२ [संज्ञा] दीवार में वह सूराख जिसके द्वारा बाहर की चीजें देखी जा सकें (सं० वात–)।

वरइठा–१२७ [संज्ञा] पान के लिए वरई जो भीटा तैयार करते हैं दे० 'भीटा'।

वरई–२८० [संज्ञा] पान की खेती करने वाली जाति (क० वर = पत्र ?)।

वरकल–१२७ [वि०] ऐसी मिट्टी जो न गीली हो और न सूखी हो। यथा, वरकल माटी।

बरद, बरदा–१६७ [संज्ञा] बैल (सं० बलीवर्द प्रा० बलद्द)।
बरदाब–१५८ [क्रि०] गाय का साँड से संयोग होना, तु० 'पार बहब' तथा 'पाल खाब'।
बरदौर–१७९,२५२ [संज्ञा] बैलों के बाँधने का स्थान।
बरध, बरधा–१६७ [संज्ञा] दे० 'बरद'।
बरब–२४२ [क्रि०] कच्ची लकड़ी का सूखने पर टेढ़ी हो जाना, उलझना; २७१ बटना (वट्—वर्तयति)।
बरमा–२४२,२४९ [संज्ञा] लकड़ी में छेद करने के लिये एक औजार (तु० सं० भ्रम)।
बरमी–२४२,२४९ [संज्ञा] बरमा का अल्पा०।
बरवैया–४४ [संज्ञा] खेत में सिंचाई के समय एक नाली से दूसरी नाली में पानी जाने की व्यवस्था करने वाला आदमी (सं० वारय्–)।
बरहा–२२,३०,४२ [संज्ञा] सिंचाई के लिए बनाई गई नाली (सं० वारि–); २७ [संज्ञा] वह रस्सी जिसमें कूँड़ बाँधी जाती है। १५१ मुहा० बरहा पनिया-इब–बरहा में पानी पहुँचाना।
बरही–२४,१२३,३८२ [संज्ञा] हेंगा को जुआठ से संबंधित करने वाली रस्सी; ४६ खेत में दो बरहों के बीच की जमीन; १६० बच्चा होनेके बाद बारहवाँ दिन।
बरियार–७ [वि०] मजबूत, जबर। यथा, बरिआर खेत (बलिन्–)।
बरिसायन दाँतब–१६७ [क्रि०] बछड़े को प्रति वर्ष दाँत निकलना (सं० वर्ष–)।
बरी–२७८ [संज्ञा] बटी हुई रस्सी।
बरुआ–४१० [संज्ञा] मूँज के छिलके का बना हुआ बल्ला जिससे मौनी-भौंकी आदि बनाई जाती है, तु० 'बल्ला'।
बरुई–२७८ [वि०] बटी हुई रस्सी। यथा, बरुई रसरी (सं० वट–)।
बलहम करब–२१५ [क्रि०] मकान की छाजन में धरन-चड़ेर-पट्टुका-तांता आदि को यथा स्थान लगाकर छाजन का ढाँचा तैयार करना (सं० बहल = दृढ़, तु० अ० मा० बहलिय = दृढ़ता; तु० फा० बराहम करना)।
बलिहन–१०८ [संज्ञा] ऐसे धान जिनमें बालें बाहर निकल आती हैं।
बलुआह–१,४ [संज्ञा] बलुही मिट्टी।
बलुरी–८५ [संज्ञा] गेहूँ की बाल में जब दँवाई के बाद भी दाना लगा रह जाता है तब उस बाल को बलुरी कहते हैं।
बलुहा बलुही–४ [वि०] बालू युक्त।
बलुही दोमट–१ [संज्ञा] बालू युक्त दोमट जमीन।
बलोथर–१९७ [संज्ञा] बलुहा स्थान।
बल्ला–२७,२८,३४,३३४ [संज्ञा] ढेंकुर का बाँस या बल्ला; २१ मुहा० बल्ला तोरब–ढेंकुर का बल्ला कूँड़ सहित ऊपर आने पर बल्ले को झुकाकर पानी गिराने को बल्ला तोरना कहते हैं। ४१० मूँज के छिलके को चीर कर मौनी-भौंकी बुनने के लिये जो बरुआ बनाते हैं तु० 'बरुआ'।

जगह बैठाते हैं उसके समूह को बान्ह कहते हैं।

बाबू मिश्री–११९ [संज्ञा] एक प्रकार की नई ईख।

बार–१२३ [संज्ञा] बेन्हरी की बाल में निकले हुए बाल की तरह रेशे (सं० बाल; तु० पूंछ); ६४ मुहा० बार छूटब–खुरपी या लोहे का कोई औजार पत्थर पर पथरने से उसमें धार का बिलकुल पतला भाग निकलने लगता है इसी को बार छूटना कहते हैं।

बारी–२६,३१,२२५,२२६,२४७ [संज्ञा] किनारा; २६५ कान का एक आभूषण (सं० वलय); ४१० मौनी या मौंकी का प्रत्येक मंडलाकार फेरा।

बाल–१२१,१२२ [संज्ञा] पौधे में वह भाग जिसमें अनाज रहता है।

बालन–१७९ [संज्ञा] पशुओं के लिए गँड़ास से बाल कर तैयार किया हुआ चारा।

बालब–७८,१७९ [क्रि०] गँडास से चारा काटना।

बालटू–२७० [संज्ञा] एक चूड़ीदार बड़ा खीला (अँ० बोल्ट)।

बाली–२६५ [संज्ञा] कान में पहनने का एक आभूषण (सं० बालिका)।

बाह–२२ [संज्ञा] एक बार की जुताई (प्रा० वह बैल का कंधा?) दे० 'वह'।

बिचखड़–१२२ [संज्ञा] ईख के बीच का भाग।

बिचुकब–१६२ [क्रि०] पशुओं का दूध तोड़ना।

बिछिया–२६२ [संज्ञा] पैर की अँगुली का एक आभूषण (सं० वृश्चिकः)।

बिजायठ–२५७ [संज्ञा] बाजू का एक आभूषण; तु० बाजू–हिं० बजना।

बिजुली–२६५ [संज्ञा] कान का एक आभूषण (विद्युत्–)।

बिड़र–बिड़र–१३२ [संज्ञा] अलग-अलग, दूर-दूर।

बिड़िहा–२५४,२८२ [संज्ञा] तिन-बैलिया गाड़ी में सब से अगला बैल जिस पर बीड़ रहती है।

बितना–१९६ [संज्ञा] लकड़ी की गुल्ली जिसके द्वारा कुएँ की चँड़वाही में मौआ की रस्सी का सम्बन्ध नार से करते हैं (सं० वितस्ति=बित्ता)।

बिथरब–७९ [क्रि०] जौ की बाल पक जाने पर उसके दाने अलग-अलग छितरा जाते हैं उसी को बिथरना कहते हैं (विस्तीर्यते)।

बिथरी–२०८ [संज्ञा] कपड़े में ताने के पश्चात् की अवस्था।

बिदहब–२२,९७,१३०,१२४ [क्रि०] फसल जम आने पर खेत को हेंगाना; १०६ कुआरी धान के जम आने पर खेत को पुनः जोतना-हेंगाना।

बिदहनी–१०६ [संज्ञा] बिदहने का कार्य

बिनुली–२८ [संज्ञा] एक सिंड़ई जो ढेंकुर में लगी जाती है और जिसमें सूराख करके धुर्रा लगाते हैं।

बिन्सा–२२३ [संज्ञा] किसी बर्तन के मुँहकड़ा के पास गर्दन वाला भाग।

बियाना–१६२,१७७ [संज्ञा] पशुओं के जनने का कार्य (सं० विजन्)।

बियाब–१६२ (क्रि०) बच्चा जनना,

समय बाध ऊपर नीचे हो जाने से पड़ी हुई ऐंठन (प्रा० विउंज ?)।

बेकहल–३८० [संज्ञा] पलास की जड़ जिससे रस्सी बनाते हैं।

बेड़ा–११६ [संज्ञा] सनई की पूरियो का वह बोझ जिसे पानी मे सडने के लिए छोडते हैं (सं० वेडः)।

बेंड़िया–२३,२५ [वि०] बेंडे-बेंड अर्थात् जो आँखो के समानान्तर बाईं ओर से दाहिनी या दाहिनी ओर से बाईं ओर हो। यथा, बेंड़िया जोताई।

बेड़े-बेड़े–२३,१४२ [वि०] वही।

बेढ़ईं–२५४ [संज्ञा] गलाए हुए सोने मे पडी हुई परतें।

बेदी–३४५ [संज्ञा] वह स्थान जहाँ सोनार अपनी अँगीठी रखता है।

बेना–४०६ [संज्ञा] पंखा (व्यजन)।

बेनिया–२५३ [संज्ञा] दे० 'बेनी'।

बेनी–३४३ [संज्ञा] दौरे के भीतरी भाग में चटाई के सदृश जो चीज बुनकर बैठाई जाती है (वेणिका); २५३ दरवाजे के पल्ले के किनारे पर ऊपर से लगी हुई चौड़ी पटरी।

बेरा–११६ [संज्ञा] दे० 'बेड़ा'।

बेराइब–१६३.३८९ [क्रि०] छाँटना (वृ–)।

बेलनदार–२३ [वि०] बेलन सदृश घूमने वाली। यथा, बेलनदार चरखी।

बेलनी–२७० [संज्ञा] ईख पेरने के कोल्हू मे एक छोटा बेलन (सं० वेलन); २९९ [संज्ञा] धुनकी चलाने लिए एक हथियार जो बेलन के आकार का होता है, इसके दोनो किनारे उठे हुए रहते हैं।

बेलौन्हब–८५ [क्रि०] गेहूँ की बाल का पक कर बेल के रंग सदृश हो जाना।

बेसर–२६४ [संज्ञा] नाक का एक आभूषण।

बेहन–८,५९,१४८ [संज्ञा] बीज डाल कर पौधो को इस योग्य तैयार करना कि वे उखाड कर खेत में लगाये जा सकें (स० बीज+धन)। ५९ मुहा० बेहन डालब–बेहन के लिए खेत मे बीज डालना ; बेहन बैठाइब–बेहन को उखाडकर अन्यत्र लगाना; ५६,११२ बेहन रोपब–वही।

बेहनउर–११२ [संज्ञा] दे० 'बेहनौर'।

बेहनौर–८,५९,११२ [संज्ञा] वह स्थान जहाँ जडहन धान की बेहन तैयार की जाती है।

बै–३२० [संज्ञा] कम्मल बुनने की बय दे० 'बय'।

बैठक–११,२७५ [संज्ञा] ठाले का समय, बेकारी का समय।

बैठका–२०२ [संज्ञा] मकान से संबंधित बैठने-उठने के लिये विशेष स्थान (उप+विष्ट–)।

बैठब–६० [क्रि०] किसी चीज का दब जाना। यथा, मिट्टी बैठब; १५६ किसी उभडी चीज का पूर्ववत् सम हो जाना। यथा, पुरहन बैठब।

बैठाइब–२८,४३,४०४ [क्रि०] जड़ देना, स्थिर कर देना; ६७ बराबर से रखना; १८८ मुहा० दूधबैठाइब–किसी मिट्टी के पात्र में कंडी की आग

पर दूध को पकने के लिए रखना।
बैठानी—१८६,२४० [संज्ञा] चरने के बाद जहाँ गोरू बैठते हैं।
बैंभरनी—२२० [संज्ञा] करवे के बय को भरने का औजार।
बैंरखी—३५७ [संज्ञा] स्त्रियों का बाजू का एक आभूषण (बाहु–रक्षिका ?)।
बैल छटकाइब—२० मुहा० बैलों को हल से अलग करना; १७१ बैल नाथब—बैल के नथुने में रस्सी पहनाना; १७० बैल निकारब—नए बैल को हल में चलने का अभ्यास कराना।
बोआई—५७ [संज्ञा] बोने का कार्य (सं० वपन)।
बोउनहरि—५७ [संज्ञा] बोने वाली स्त्री।
बोउनी—५७,७५ [संज्ञा] बोने का कार्य।
बोग—१११ [संज्ञा] धान को छींटकर बोना, इस ढंग की बोआई में बेहन की आवश्यकता नहीं पड़ती।
बोदर—२६ [संज्ञा] बेंड़ी के पानी के लिए बनाया गया गड्ढा (प्रा० बोदर= विशाल)।
बोनी—५७,७४,९२ [संज्ञा] बोने का कार्य।
बोर—४१ [संज्ञा] कुएँ मे इतना जल होना कि पात्र डूब सके; ४१ मुहा० बोर पर आइब—कुएँ का पानी जब इतना हो जाय कि उसमें कूँड़ या मोट डूब सके।
बोरब—२६,३२ [क्रि०] पानी में डुबोना (प्रा० बुड्—)।
बोरसी—१८८,२४५,२९६ [संज्ञा] मिट्टी की अँगीठी (वार+उष्पिता)।
बोरो—१११ [संज्ञा] एक प्रकार का धान।
बोवैया—५७ [संज्ञा] बोने वाला।
बोहब—१२२ [क्रि०] डुबोना (प्रा० बोहित्थ=नौका ?); तु० म० पोहव (अप+वह्)=तैरना।
बोहवाली—१२२ [वि०] पानी मे भिगोई हुई। यथा, बोहवाली बिया।
बौंखा—२६९ [संज्ञा] हवा का तेज झोंका (वायु—पक्ष ?)।
बौंरा मारब—७१ [क्रि०] ओसाने के लिए किसी कम्मल आदि से हवा करना (सं० वायु)।
ब्यौंड़ा—२५२ [संज्ञा] दे० 'बेंड़ा'।

भ

भँजब—२४२ [क्रि०] मुड़ना (सं० भंज्—पा० भंजति)।
भँजनी—२११ [संज्ञा] एक लकड़ी जिसका प्रयोग पाई की भाँज करते समय होता है।
भँड़छी—२४२ [संज्ञा] ऐसी लकड़ी जो भीतर सड़ गई हो।
भँवरिहा—१६५ [वि०] जिस बैल के भौं के बीच में भँवर हो (सं० भ्रमरी–)।
भगमानी—१५६ [वि०] भाग्यशाली (सं० भाग्यवान्–)।
भगाड़—२०१ [संज्ञा] कुएँ की दीवार में फटकर जगह हो जाना (भग्न–)।
भठुआ हल—१२२ [संज्ञा] जिस हल से बोई हुई ईख की मूहिं भठती (बंद होती) है (सं० भ्रष्ट–?)।
भडरौ का दिन—२७८ [संज्ञा] गुलउर के चलने का प्रथम दिन, दे० 'गुलउर'
भड़कनहिया—१५७ [संज्ञा] वह गाय जो भड़कती हो।

भड़कदंता, भड़दंता–१६७ [संज्ञा] ऐसे बाछा जिन्हें ६ मास में ही दाँत निकल आते हैं (सं० भटदन्त–)।

भड़भूँज, भड़भूँजा–७८,३८८,४०६ [संज्ञा] भाड़ भूँजने वाला (सं० भ्राष्ट्र + भ्रस्ज्–)।

भड़सड़ा, भड़सरा–२१३ [संज्ञा] अडे की आकृति का बना ताख (सं० भाण्ड + शाला)।

भदई–२०२ [संज्ञा] भादो के महीने मे वाली फसल (सं० भाद्रपद–)।

भदवारा–११,५६ [संज्ञा] भादों की वर्षा।

भरँगा–२६१ [संज्ञा] गाड़ी को तुलवाने के समय फड़ को उठाने लिए एक लकडी (सं० भाराङ्ग) दे० 'गाडी तुलाइब'।

भर–२११,२४१ [संज्ञा] माप। यथा, मुठहथ भर (सं० भार)।

भरतू–३२,२५५ [वि०] ठोस (सं० भृ–)।

भरदंता–१६७ [संज्ञा] 'भड़दंता'।

भरहरी भरब–१५८ [क्रि०] बरदाने के समय योनि से एक प्रकार का स्राव होना।

भलुआ–३२५ [संज्ञा] एक प्रकार का बाँस।

भरुका–२३३,३२५ [संज्ञा] मिट्टी का एक छोटा पात्र; तु०;म० भुरकणें = पानी पीने के समय एक प्रकार की ध्वनि।

भवनिहाँ भैंसा–४८ [संज्ञा] भवानी के नाम पर छोड़ा हुआ भैंसा।

भसब–२०१ [क्रि०] धँसना (सं० भस्क ?)

भाँज–२७५ [संज्ञा] कोल्हू चलाने में जब सब की एक-एक पारी हो जाती है तो उसे भाँज कहते हैं (सं० भाज्य ?), ३११ [संज्ञा] पाई मे बुनाई की सुविधा के लिए कुछ-कुछ दूर पर सरई पहनाना (सं० भज्); १६२ मुहा० भाँज मारब–पहले और दूसरे बियाने मे अधिक समय का अंतर होना (भंजति)।

भाका–१२० [संज्ञा] मेड़ुआ मीज कर फाँकना (सं० भ्रस्ज ?)

भाठब–१४५ [क्रि०] पाटना।

भाठी, भाथी–२६७ [संज्ञा] लोहारो का हवा देने का एक यंत्र (सं० भस्त्री)

भाभा–१२५ [संज्ञा] सावाँ का खोखला दाना।

भारा–१६२ [संज्ञा] गाय का बच्चा मर जाने पर उसको दुहने के लिये उसके सामने जो भोजन रक्खा जाता है (हिं० भाड़ा ∠ सं० भाटं = व्यभिचार द्वारा प्राप्त द्रव्य)।

भिंडी–२८२ [संज्ञा] एक भाजी (सं० भेण्डा)।

भिटवा–५ दे० 'भीटा'।

भिहलाब–२१२ [क्रि०] पसर जाना या फैल जाना। यथा, दीवार भिहलाब।

भीटा–५ [संज्ञा] ऊँचा स्थान; १२७,२८० वह ऊँचा स्थान जहाँ पान लगाया जाता है।

भीत–२१२ [संज्ञा] कच्ची दीवार (सं० भित्ति)। २१२ मुहा० भीत ठीकब– भीत काट-छाँट कर सुडौल बनाना; भीत तोरब–भीत के ऊपरी भाग में

म

अलग-अलग दिखाई पड़ती है। इस प्रकार निराई करके पौधों को अलग-अलग करने को मँगियाना कहते हैं (सं० मार्ग-)।

मँजीरा—२८४ [संज्ञा] शीरे का बुलबुला (सं० मंजीर-); मुहा० मँजीरा लेब—शीरे मे बुलबुले का उठना।

मंझा—२०५ [संज्ञा] छाजन की एक लकड़ी जो ओरवती के पास लगती है (सं० मध्य-)।

मँड़सड़—२४२ [संज्ञा] बाँस के फल्ठे में गाँठ के समीप वाला भाग जिसे नर भी कहते हैं।

मँदरजिया, मँदराजी—१४१ [संज्ञा] एक प्रकार की आलू जो संभवतः मद्रास की ओर से आती है।

मइछना—२८९ [संज्ञा] महिया से चुआ हुआ रस, दे० 'महिया'।

मकई—१३२ [संज्ञा] मक्का, ज्वार (सं० मर्कक:, मर्कटक:)।

मकरा—१,१३० [संज्ञा] एक मोटा अन्न, मेड़ुआ। तु० अ० मा० मंडूस।

मकुनी—४०६ [संज्ञा] मटर का आटा।

मकोला—१७९,२६८ [संज्ञा] थोड़ा पानी मिलाकर चलाई हुई सानी।

मक्का—१२२ [संज्ञा] दे० 'मकई'।

मघउआ, मघऊ—९६,१४७ [वि०] माघ का।

मघौटल खेत—११ [संज्ञा] माघ का खना हुआ खेत।

मचहिल—२२३ [वि०] सेव, वह छाजन जिसमें ढाल कम हो (मंच-)।

मचान—५२ [संज्ञा] खेत रखाने के लिए बनाया हुआ ऊँचा स्थान।

मचिया—४०३ [संज्ञा] एक प्रकार का बैठने का ऊँचा आसन (सं० मंचिका)।

मजगर—११७ [वि०] पुष्ट।

मझोला—२७४ [संज्ञा] मिट्टी का एक बरतन जो कड़ाह में रस डालने के काम आता है (मध्य-)।

मटखना—२२८ [संज्ञा] कुम्हार के मिट्टी खोदने का स्थान।

मटमैल—१,१०३ [वि०] मिट्टी के रंग का कालापन लिए हुए; जो साफ न हो।

मटियरा—४ [संज्ञा] वह खेत जिसमें मटियार मिट्टी अधिक हो।

मटियार—१,२२७ [संज्ञा] वह मिट्टी जिसमें केवल मिट्टी हो बालू न हो; २२९ कुम्हार जहाँ मिट्टी एकत्र करके रखता है।

मटियार दोमट—१ [संज्ञा] वह मटियार मिट्टी जिसमें कुछ बालू का अंश हो।

मट्ठा—१९० [संज्ञा] दही को मथकर मक्खन निकालने के बाद उसका पानी मिला हुआ रूप (सं० मस्तु-)।

मठार—१९१ [वि०] माठा मिला हुआ।

मड़ई—५२,२०३ [संज्ञा] फूस से छाया हुआ स्थान।

मड़वा—१४८ [संज्ञा] मरचा के पौधे में लगने वाला एक कीड़ा।

मड़हा—२०३ [संज्ञा] मडई से बड़ा रहने का स्थान (सं० मंडप)।

मड़ियाब—२८४ [क्रि०] रस का खौल करके तर ऊपर होना (मंड-)।

मतवरहा, मथवरहा—४२[संज्ञा] सिंचाई के लिए खेत के एक सिरे पर बनाई

गई बड़ी नाली।

मथानी—१९० [संज्ञा] दही मथने का एक औजार (मंथनी—)

मद्धिम—२४० [वि०] धीमा, घटिया (सं० मध्यम)।

मनगो—११८ [संज्ञा] एक प्रकार की ईख।

मनराजी—१४१ [संज्ञा] दे०'मँदराजी'।

मनसायन—५२ [संज्ञा] चहल-पहल, सजीवता।

मनाइब—१२८ [क्रि०] मनाना—हो जाना यथा, करेर मनाना=कड़ा पड़ जाना।

मनोहरी—३६६ [संज्ञा] साड़ी में घूँघट के पास गुथा जाने वाला एक आभूषण।

ममसब—१३१ [क्रि०] अनाज का उसकी नमी के कारण बर जाना या बिगड़ जाना।

मरकहा—१६६ [वि०] मारने वाला। यथा, मरकहा बैल।

मरकहिया, मरकही—१५७ [वि०] मारने वाली। यथा, मरकहिया गाय।

मरचा—१४७ [संज्ञा] मिरचा (सं० मिरच)।

मरिखम—३२४ [संज्ञा] कोल्हू में कातर के पिछले भाग मे लगी एक खूँटी।

मरैलवा खेत—७ [संज्ञा] वह खेत जिसमें छाहीं आदि के कारण उपज न होती हो।

मल—३६१ [संज्ञा] स्त्रियों के पैर का एक आभूषण।

मलमास—२८४ [संज्ञा] हर तीसरे वर्ष पड़ने वाला चान्द्रमास जो अधिक मास होता है।

मलाई—१८८ [संज्ञा] दूध के ऊपर जमने वाली साढ़ी (सं० मल—)।

मलिस्त—३४६ [संज्ञा] सूराख करने का सोनारों का एक औजार (तु० सं० मणिछुरा)।

मसक—२६५ [संज्ञा] पानी भरने के लिए चमड़े का थैला (फ़ा० मशक)।

मसकब—१२३ [क्रि०] नष्ट होना। यथा, जीरा मसकब=जीरा नष्ट होना (सं० मस्क् तु० म० मसकणें)।

मसका—१९० [संज्ञा] मक्खन, नैनू (सं० मस्क्=जाना, निकलना)।

मसगंडा—१२८ [संज्ञा] अच्छी मोटी ईख (सं० मांस+क० गंडा=श्रेष्ठ ?)।

मसीन—४०३ [वि०] ओद, नम।

महतवा—३११ [संज्ञा] करघे के काम में आने वाला एक खूँटा (महत्)।

महदेउवा—१९ [संज्ञा] जुआठ के मध्य में उठा हुआ भाग जहाँ नाधा अटकाया जाता है।

महब—१९० [क्रि०] मथना (सं० मंथ्)

महिया—२८० [संज्ञा] शीरे की मैल (सं० मथितं प्रा० महिअ, तु० म० मही=साढ़ी) मुहा० महिया काटब—शीरे की मैल अलग करना। महिया मारब—वही।

महीन—४०२ [वि०] अच्छा, कीमती। यथा. महीन अनाज।

महुआ—३२९ [संज्ञा] एक वृक्ष (सं० मधूक)।

महुलाब—१४३ [क्रि०] सूखना, कठुआना; १४४ कुम्हिलाना।

महुवर–१५५ [संज्ञा] महुआ के रंग वाली गाय।

महोखिया–१५५ [संज्ञा] महोख पक्षी के रंग की गाय (सं० महापक्षी)।

महोबिया–१२६ [संज्ञा] महोबा का पान।

माँकब–१८१ [क्रि०] कूदना-फाँदना (सं० मंकति–चलना)।

माँग–३५५ [संज्ञा] स्त्रियो के सर के बालों के मध्य में बना मार्ग जिसमे सिंदूर डाला जाता है।

माँझा–२०५ [संज्ञा] दे० 'मंझा'।

माँठब–२२४ [क्रि०] तैयार हुए कच्चे बरतन का कुम्हार द्वारा हाथ से धीरे-धीरे ठोंक कर ठीक किया जाना।

माँड़–४९ [संज्ञा] भात का पसाया हुआ पानी (सं० मंड)

माघी–९६ [वि०] माघ मे होने वाली।

माझा–३०९ [संज्ञा] पाई करते समय कैंचा पर जो बाँस रक्खा जाता है (सं० मध्य)।

माटी–१ [संज्ञा] मिट्टी (सं० मृत्तिका प्रा० मित्तिआ ; २११ मुहा० **माटी क़ाँड़ब**–मिट्टी रौंदना। २१२ **माटी तोरब**-मिट्टी तैयार करना।

माठा–१९० [संज्ञा] दे० 'मट्ठा'।

माड़ा–१०२ [संज्ञा] तीसी का एक रोग।

माड़ो–१२७ [संज्ञा] पान के भीटे के लिये बनाया गया छप्पर (सं० (मण्डप)।

माथ–१४ [संज्ञा] हल की मूड़ी; ४२, ११५ सिरे का भाग।

मान–४०४ [संज्ञा] बड़ी चक्की जिसमें अरहर दरी जाती है (स० मानिका)।

मानब–१६८ [क्रि०] किसी चीज का ठीक-ठीक पूरा उतरना, किसी चीज का अनुकूल प्रभाव पड़ना।

मार देब–११५ [क्रि०] किसी वस्तु को हानि पहुँचा देना (सं० मारयति)।

मारा जाब–८६,११५ [क्रि०] किसी वस्तु को हानि पहुँचना।

माल–१५२,२९५ [संज्ञा] किसी सामान का तात्विक अंश (अर० माल)।

माला–१९ [संज्ञा] जुआ के पचार और सइल द्वारा बना घेरा।

माल्ह–४०१ [संज्ञा] चरखे की एक डोरी या रस्सी जिसके सहारे तकुआ घूमता है (सं० माल्य)।

मास–१२८ [संज्ञा] उड़द (सं० माष)।

माहो–१०१,१४९ [संज्ञा] एक रोग जो सरसो व मूली की फसल को हानि पहुँचाता है।

मिढ़ब–४१० [क्रि०] मिंढ़ना, किसी चीज के किनारे पर बुनना (प्रा० मड्डु–)।

मिरचा–१४७ [संज्ञा] एक फली जो अत्यन्त कड़ुई होती है (मरिच ?)।

मिलहर बैल–१६७ [संज्ञा] वह बैल जिसके आठ दाँत पूरे हो गये हों।

मींढ़ी–३८७ [संज्ञा] भौआ की अवँट तु० मेंढ़ी, दे० 'मिढ़ब' व 'अवँट'; मुहा० **मींढ़ी मारब**–मींढ़ी बनाना।

मुँगरी–२२९,३८० [संज्ञा] लकड़ी का एक छोटा पिटना (सं०मुद्गर–); २७०

मोमजामा–२६० [संज्ञा] मोम जमाया हुआ कपडा या टाट।

मोरवट–२४३ [संज्ञा] दौरे के मेंडरे पर ऐंठी हुई बुनावट।

मोरा–४०३ [संज्ञा] बैठने का एक आसन तु० हि० मोढ़ा।

मोर्हवा–१४९ [संज्ञा] एक प्रकार की मूली।

मोहान–३९५ [संज्ञा] डेहरी का मुँह (मुख–)।

मोहाना–३९४ [संज्ञा] चूल्हि का मुँह।

मोहार–२५१ [संज्ञा] दरवाजा (मुख+द्वार)।

मौनी–४१० [सज्ञा] मूँज का कटोरे के आकार का एक पात्र।

र

रंदा–२४२,२४८ [संज्ञा] बढ़ई का एक औजार जिस से वह लकडी की सतह छील कर बराबर करता है (फा०रंदह); मुहा० **रंदा फेरब**—रंदा करना।

रंदियाइब–२४८ [क्रि०] रंदा करना।

रंपा–२६४ [संज्ञा] चमडा साफ करने और काटने का औजार (प्रा० रंप=छीलना)।

रउता–२१६ [संज्ञा] एक प्रकार का ईख सदृश पौधा जो छाजन के काम मे आता है (?+पत्र)।

रक्त-रक्त–३६३ [संज्ञा] रक्त।

रखवारी–५२ [संज्ञा] खेत रखाने का कार्य।

रखौना–१८० [संज्ञा] पशुओ के चरने के लिये छोडी हुई जमीन।

रद्दा–२१२ [संज्ञा] मिट्टी की दीवार बनाते समय जितनी मिट्टी एक बार में दीवार पर रखी जाती है (तु० सं० रद्=खोदना; फा० रदह्–); मुहा० **रद्दा घुमाइब**—दीवार पर रद्दा चढ़ाना।

रन्ना–२४२ [संज्ञा] दे० 'रंदा'।

रबनी–२७९ [संज्ञा] राब से पतला ईख का औटाया हुआ हलका गाढ़ा रस दे० 'राब'।

रमरहरवा, रमरहरा–६६ [संज्ञा] एक प्रकार की अरहर (राम—विशेष के अर्थ में, तु० राम बाँस)।

रवा–३५८, ३६० [संज्ञा] सोने या चाँदी के छोटे-छोटे दाने।

रवाव–७९ [क्रि०] सूखना।

रस–२८० [संज्ञा] ईख का रस (सं० रस); मुहा० **रस कमाब**—रस से, महिया या मैल अलग करना। २८३ **रसफेरब**—एक कढ़ाह से दूसरे में रस डालना। **रस बोझब**—कड़ाह को रस से भरना।

रसगर–११७ [वि०] रस से भरी हुई यथा, रसगर ईख।

रसरी–३७५ [संज्ञा] रस्सी, डोरी (सं० रश्मि –)

रसवत–१०५ [संज्ञा] वर्षा मे खेत जोत कर धान छींट कर बोने को रसवत की बोआई कहते हैं।

रसहा–२७४ [वि०] रस वाला। यथा, रसहा हौदा।

रसियाइब–७२ [क्रि०] ओसाने के बाद अन्न की राशि लगाना (स० राशि)।

रसी–२६४ [संज्ञा] चमडे को सिझाने के लिये उसे थैला सदृश बनाकर उसमें बंडा खून कर पानी के साथ भर देते हैं।

अपने सुखे पानी रँगब- तं ता- पूर्वक पानी का खेत में ब६ ।

रेंड़ब–७७,१०७,१०८ [०] जौ या धान में बाल निकल की पूर्वावस्था (सं० एरंड) ।

रेतब–२६७ [क्रि०] रेती द्वारा रगड़ना (सं० रैतस्) ।

रेती–२४२,२६७,३४६ [संज्ञा] लोहा घिसने या रेतकर काटने का एक औज़ार (सं० रेतस्) ।

रेल मारब–१९७ [क्रि०] जोर से धक्का मारना (प्रा० रेल्लि+; दे० ने० रेल्नु) ।

रेवरवा, रेवरा–११८ [संज्ञा] एक प्रकार की ईख (हिं० रेव-, ०० रेव+वटि) ।

रेसा–२९७ [संज्ञा] रूई के तंतु (फा० रेशा) ।

रेहकट, रेहटा–१ [संज्ञा] रेह प्रधान मिट्टी ।

रोंगटा–२६४ दे० 'रोओं' ।

रोआँ, रोवाँ–१५५ [संज्ञा] छोटे-छोटे बारीक बाल (सं० रोम) ।

रोड़ी बाँस–२१६ [संज्ञा] एक प्रकार का पतला बाँस जो छाजन के काम आता है ।

रोपब–८,५९,११२ [क्रि०] धान की बेहन बैठाना (स० रोपय् प्रा० रुप्प) ।

रोपहँड़–८ [संज्ञा] जिस खेत मे धान रोपा जाता है; ११२ रोपा हुआ धान ।

रोपाई–११२,१४७ [संज्ञा] रोपने का कार्य (सं० रोपण, अ० मा० रुंपण) ।

रोरही–३ [सज्ञा] वह मिट्टी जिसमें कंकड के छोटे-छोटे टुकडों हो (हिं० रोड़ा) ।

रोलब–३४२ [क्रि०] बाँस को बाँका से छीलना या साफ करना (सं० लोलयति) ।

ल

लंगड़ डालब–४०७ [क्रि०] कई परत कपड़ो को साधारण सिलाई द्वारा अँटकाना ।

लकठा–१२३ [क्रि०] दे० 'लट्ठा' ।

लकड़हिया–११९ [वि०] लकडी के समान कडी । यथा, 'लकड़हिया ईख' ।

लकड़ी कमाब–२४७ मुहा० लकड़ी काट-छाँट कर उसे काम के योग्य बनाना ।

लगब–२५ [क्रि०] हेंगा का भलीभाँति काम देना; ११० सीड़न का प्रभाव पड़ कर किसी वस्तु का दागी होना; १६२ गाय का दूध देना ।

लगहर, लगेन–१६२ [संज्ञा] दूध देने वाली गाय ।

लच्छा–२६१ [संज्ञा] सन के रेशेदार लम्बे-लम्बे भाग (लक्षित?); ३६१ एक आभूषण जो चाँदी का तार बट कर बनाया जाता है; २९७ रूई के रेशों को जब एक सीध में कर लिया जाता है ।

लट–३६९ [संज्ञा] सूत या ऊन की चोटी बनाने के लिए जब कई तागे एक में बट दिए जाते हैं तब उनमें से प्रत्येक को लट कहते हैं ।

लटाई–३६८ [संज्ञा] पटहार का एक औजार जिसके द्वारा तार लपेटते हैं (सं० लट् ?) । तु० चरक ।

लट्ठा–१२३ [संज्ञा] ज्वार-बाजरे का

डंठल (सं० यष्टि > लट्ठी); २५७ गाड़ी के फड के दोनों बगल के लट्ठे।

लड़ाय जाब–१५८ [क्रि०] गर्भ गिर जाना।

लत्तर–१२८ [संज्ञा] लता (सं० लतिका–)।

लतरी–२६५ [संज्ञा] चर्मकारों का बनाया हुआ देहाती चप्पल (प्रा० लत्ता = लात)।

लतहिया, लतही–१५७ [संज्ञा] ऐसी गाय जो लात चलाती हो।

लतियाइब–१२७ [क्रि०] खेत की मिट्टी को पैर से बराबर करना; १२५ बाल से दाना अलग करने के लिये उसे लात से रौंदना।

लत्ती मारब–२५ [क्रि०] हेगा पर एक पैर रख कर उसे चलाना।

लद्फद्–१२७ [वि०] गीली मिट्टी जो चिपक जाय (अनु०)।

लदरि जाब–९२ [क्रि०] फल से लद जाना।

लपचा, लपची–[संज्ञा] लम्बी ईख जिसका रस फीका हो।

लपेट–३७४ [संज्ञा] लपेटने का भाव।

लबनी–२३२ [संज्ञा] मिट्टी की एक हाँडी जिसमे ताड़ीकश ताडी इकट्ठा करते हैं।

लब्जी–२७४ [संज्ञा] एक छोटा मिट्टी का बरतन जो शीरा, उबहने के काम आता है, इसमें लगभग आध सेर शीरा आता है। तु० 'मुनुई' व 'जमुनी'।

लभनी–२३२ [संज्ञा] वही।

लमछर–८३, ११७ [वि०] लम्बा (लम्ब + छुटा)।

लमेसा–२६९ [संज्ञा] बाँस का कैंचा जिस पर ईख पेरने के पुराने कोल्हू का जाठ रोका जाता था।

लर–२६३ [संज्ञा] पशु के गर्दन का लटकता हुआ मांसल भाग।

लरकाव–२१५, २२३ [संज्ञा] सं० ढाल हिं० लटकना; तु० सिधार।

लरियाइब–३०५ [क्रि०] माला की भाँति गुहना (हिं० लडी–)

लरुआव–११२ [क्रि०] धान की बेहन का पीली पड़कर कमजोर हो जाना।

ललकी–११९, १३२, १४१, १५५ [वि०] लाल रंग की।

ललछहूँ–१०३ [वि०] कुछ-कुछ लाल रंग की, साधारण लाल।

ललमुँहवा कीड़ा–१४८ [संज्ञा] मिरचा के बेहन में लगने वाला कीड़ा।

ललरी–३६५ [संज्ञा] कान का लटकता हुआ कोमल मांसल भाग।

ललिया–८२ [संज्ञा] एक लाल रंग का गेहूँ।

लवँग–३६५ [संज्ञा] कान में पहनने का लवँग सदृश एक आभूषण।

लवनियाइब–६७ [क्रि०] लवनी का बोझ बाँधना।

लवनी–६७,९५,११० [संज्ञा] अनाज की कटाई के लिये दी गई अनाज के रूप में मजदूरी (लवन = काटना); ६७ मुहा० लवनी बैठाइब–खेत काटने पर मजदूर अपनी मजदूरी के बदले में कटे हुए अनाज में से जो बोझ बाँधता है उसे लवनी कहते है और बोझ के

बाँधने के ढंग को लवनी बैठाना कहते हैं।

लवाही–१२९ [संज्ञा] ईख में लगने वाला एक रोग जिस से ईख लाल पड़ जाती है।

लसदार–२,१९८ [वि०] लासा युक्त (सं० लसिका + फा० दार)।

लसर-लसर–३२७ [संज्ञा] लासापन।

लसरी–३७५ [संज्ञा] दे० 'रसरी'।

लहटी–४१० [संज्ञा] लाह की चूड़ी के टुकड़े (सं० लाक्षा)।

लहब–१० [क्रि०] किसी औजार का ठीक-ठीक काम देना (लभ् –)।

लहसुर–२२९ [संज्ञा] पहँसुल के आकार का कुम्हारों का औजार जिससे वे मिट्टी के परत काट-काट कर अलग करते हैं।

लहाँकू–१० [वि०] भली भाँति काम देने वाला वाला औजार, दे० 'लहब'।

लाई–४०६ [संज्ञा] भुंजिया चावल का भुना हुआ रूप (सं० लाजा)।

लाढ़ा–१६७ [संज्ञा] स्वस्थ बाछा।

लात–२५ [संज्ञा] पैर (प्रा० लत्ता)।

लावा–४०६ [संज्ञा] दाना भूनने पर जो दाने भली भाँति खिल जाते हैं उनको लावा कहते हैं।

लाही–१०० [संज्ञा] एक लाल रंग की सरसों जिसके दाने छोटे होते हैं (सं० लाक्षा); २९२ शक्कर के भरे हुए लोथों पर लाह सदृश शीरे का बुल्ला।

लिझियाब–८० [क्रि०] लीझी सदृश होना (प्रा० लिज्झइ ?)।

लिभरी–४०२ [संज्ञा] जाँता की मेंड़री पर वर्षा में एक प्रकार की भुकुड़ी जम जाती है जिसे लिभरी कहते हैं।

लिलारी–३१, १९६ [संज्ञा] कुएँ का मुँहकड़ा (सं० ललाट)।

लिहा-लिहा–४८ [अ०] कुत्ते को ललकारने का संकेत (ले –)।

लीझी–८० [संज्ञा] अपटन छोड़ाने पर जौ के आकार की जो मैल छूटती है उसे लीझी कहते हैं।

लीपब–२१२ [क्रि०] दीवार को मिट्टी से चिकनाना (स० लिम्प् –)।

लुगरी–४०८ [संज्ञा] जनानी धोती (दे० ने० लुगा ∠ रुग्ण)।

लुँड़ियाइब–२०९, २७७ [क्रि०] लुंडी बनाना।

लुंडी–११६ [संज्ञा] सन की ऐंठी हुई आँटी; २०९, २७७ रस्सी बनाने के लिए सन का ऐंठा हुआ रूप; २७४ कते हुए बाँध की पिंडी।

लुतराह, लुद्काह–५८ [संज्ञा] वह बोआई जो बराबर से न हो।

लुहा-लुहा–४८ [अ०] दे० 'लिहा लिहा'।

लूगा–४०८ [संज्ञा] दे० 'लुगरी'।

लूड़ी–११६ [संज्ञा दे० 'लुंडी'।

लेउ–१०६ [संज्ञा] दे० 'लेव'।

लेट–२३ [संज्ञा] हल में मिट्टी अथवा घास-पात का बझना (सं० लोट्यते); मुहा० **लेट मारब**–लेट छोड़ा देना।

लेढ़ा–८० [संज्ञा] जौ की काली बाल (लेढ़ा = छोटा, बेकार। यथा, लेढ़वा सियार वा लेढ़ा आदमी)।

लेतुर–५६ [संज्ञा] एक लता ।

लेढ़ी–२८ [संज्ञा] ठेकुर के बल्ले के निचले भाग को भारी बनाने के लिए जो मिट्टी छोपी जाती है; १२२ हल की मूठ को चौड़ी करने के लिये हल में जो रस्सी आदि लपेटते हैं (सं० वेष्ट=वेष्टन)।

लेव–२३,१०६ [संज्ञा] धान के खेत में पानी लगाने पर उसे लेव कहते हैं। लेव में धान बोने को लेव की बोआई कहते हैं (सं० लेप, प्रा० लेव=नाभि-प्रमाण जल); १०६ मुहा० लेव बिहड़ब,-मारब,-हेंगाइब—लेव वाले खेत की किहनी, दे० 'बिहड़ब' ।

लेवरब–२०८ [क्रि०] तानी में माड़ी लगाना (सं० लेप)।

लेसब–२२७ [क्रि०] बेरना (सं० श्लेष)।

लेहँड़–१६२ [संज्ञा] बैल का झुंड ।

लेहँड़ा–५६ [संज्ञा] गौ भेड़ों का समूह ।

लेहँड़िहा–१६२ [संज्ञा] लेहँड़ी का बैल ।

लेहँड़ी–१६२ [संज्ञा] दे० 'लेहँड़' । मुहा० लेहँड़ी बेसाहब—लेहँड़ी में बैल चुनना ।

लेहना–६६ [संज्ञा] कटिया के समय खेत में काटे हुये पौधों का समूह; १७९ [संज्ञा] खेत में कटे हुये अनाज का वह भाग जो मजदूरों को मजदूरी के रूप में दिया जाता है (लभ्–)।

लेहनियाइब–६६ [क्रि०] लेहना का ढेर लगाना ।

लोआ–२२५ [संज्ञा] मिट्टी का बना हुआ चाका (लोंद, सं० लोत ?)।

लोट–२३३ [संज्ञा] पानी से भरा मिट्टी का एक पात्र ।

लोढ़ा–१६८,२२९ [संज्ञा] सिल पर पीसने के लिये पत्थर का एक विशेष टुकड़ा (प्रा० लोढ़)।

लोढ़ियायल–१८७ [वि०] लोढ़ा की भाँति पड़ा हुआ—जो पशु बैठ जाने पर आसानी से नहीं उठता। यथा, लोढ़ियायल गोरू।

लोथहिया–२९० [वि०] लोथे वाला। यथा, लोथहिया कपड़ा, दे० 'लोथा'।

लोथा–२९० [संज्ञा] कपड़े का एक विशेष थैला जिसमें शक्कर को साफ करने के लिये भरते हैं (सं० लोष्ट प्रा० लोट्ठ; तु० म० लोथ; दे० ने० लोथ); २९२ मुहा० लोथा काँड़ब—लोथा के ऊपर चढ़ कर उसे रौंदना; लोथा पोंछब—लोथा के ऊपर निकली हुई लाही को पोंछना दे० 'लाही'।

लोनही–१ [संज्ञा] दे० 'नोनही'।

लोहार–२६७,२६८ [संज्ञा] लोहे का काम करने वाला कारीगर (सं० लोहकार)।

लोहिया–१५५ [वि०] लाल रंग की। यथा, लोहिया गाय (सं० लोह)।

लोहे की गाँठ–१६२ कहा० अत्यंत मजबूत, किसी बैल की मजबूती प्रकट करने के लिये उसे लोहे की गाँठ कहते हैं।

लौटब–२९३ [क्रि०] किसी चीज का पूर्व रूप में हो जाना।

लौटान–४६ [संज्ञा] बरहा के एक ओर के खेत की सिंचाई पानी के चढ़ान की सिंचाई और बरहा के दूसरी ओर की सिंचाई पानी के लौटान की सिंचाई कहलाती है क्योंकि दूसरे पक्ष की सिंचाई

उसके अंतिम छोर से आरम्भ होती है, दे० 'चढ़ान'।

व

विलायती–११७ [वि०] बाहर से आई हुई, परदेशी; २४२ कारखाने की बनी हुई (अर० विलायत)।

वैट खाव–११ मुहा० वर्षा से तृप्त (सं० वृष्ट प्रा० विट्ठ) दे० 'ओयट'।

स

सँगहा–२०४,२१०,२७४ [संज्ञा] सामग्री (सं० सग्रह)।

संठा–११६,२०५ [संज्ञा] सनई का डंठल।

सँड़सी–२६७ [संज्ञा] लोहे का एक पकडने का औजार (सं० संदशिका)।

सँपही–१५७ [संज्ञा] साँप की भाँति जीभ निकालने वाली गाय।

सँवखिहा बैल–१६५ [संज्ञा] जिस बैल के भौ के बीच मे भँवर हो (समक्ष–)।

सँवारब–२३१ [क्रि०] बर्तन बनाते समय पानी लगाकर उसे सुडौल बनाना।

सइका–२३३,२७४ [संज्ञा] मिट्टी का एक छोटा बरतन जो गुलउर में शीरे के उदहने के काम आता है।

सइकी–२३३,२७४ [संज्ञा] सइका का छोटा रूप।

सइल–१९ [संज्ञा] जुआ के दोनों किनारों पर जो खूँटियाँ लगती हैं और जिनसे पूरा घेरा बन जाता है (सं० शम्या, शमिला प्रा० समिला, तु० अ० मा० समिला; २० मुहा० सइल छुटकाइब–सइल अलग कर बैलो को जुए से बाहर करना।

सकड़ी–२५३ [संज्ञा] दरवाजा बन्द करने की जंजीर (शृंखला)।

सकरी–२५६ [संज्ञा] चाँदी या सोने की गले में पहनने की जंजीर।

सगंधा–२४४ [संज्ञा] लकडी ढोने की रस्सी।

सगुनी–२५७ [संज्ञा] गाडी के फड को जुए से सम्बन्धित करने वाली सामने की लकडी, गाडी बनाते समय बढई इसी को सबसे पहले बनाता है इसी-लिए यह नाम है।

सजब–१४२ [क्रि०] खाद पाँस छोडने से खेत का उपजाऊ बन जाना (स० सज्ज)।

सजाइब–१५० [क्रि०] सजब का स०।

सजाव–१८९ [संज्ञा] सजाने का भाव—जिसकी सुन्दरता अछूती हो। यथा, सजाव का दही—ऐसा दही जिसकी साढी ज्यों की त्यो हो।

सटल–३१२ [संज्ञा] करगह मे चलने वाली ढरकी।

सतदरि–१६७ [संज्ञा] सात दाँत वाला बैल (सं० सत+रद); कहा० सतदरि कहे मैं आवो जावँ। कुटँब परिवार उपरिहितहि खावँ॥

सतुआ, सतुवा–७८,४०६ [संज्ञा] जौ-मटर का सत्तू (सं० सक्तु)।

सनइहा, सनइहटा–९ [संज्ञा] जिस खेत से सनई कटी हो (सं० शण–)।

सनकब, सनसनाव–२८० [क्रि०] रस

सर्रा–२६ [संज्ञा] गड़ारी की धुरी या धुरा (अनु०) ।

सल्लू–२६५,२६६ [संज्ञा] चमड़े की डोरी जिसे मोची प्रयोग करते हैं (प्रा० सेल्लि) दे० 'सेल्हा' ।

सवाई-सवाया–२५७,२१८ [संज्ञा] बैल गाड़ी में मूड़ी के पास एक लकड़ी (स+पाद) ।

सवाती–७४ [संज्ञा] स्वाति नक्षत्र ।

सहता–२२० [संज्ञा] गडरिया लोगों का कम्मल बुनने का एक औजार ।

सहद–१११ [संज्ञा] शहद ।

सहदेइया–१११ [संज्ञा] एक प्रकार का धान ।

सहन–२२२ [संज्ञा] बैठका ।

सहेंड़ी १३५ [संज्ञा] सावाँ का डंठल ।

साँचा–२३६ [संज्ञा] वह उपकरण जिसके द्वारा बर्तन बनाते हैं, आदर्श । तु० गोंट ।

साँची पान–१३६ [संज्ञा] एक प्रकार का पान ।

साँटा–२६५ [संज्ञा] बैल हाँकने के लिए चमड़े की लच्छियाँ जो सुटकनी के रूप में प्रयुक्त होती हैं ।

साँड़–४८,१६५ [संज्ञा] वह बैल जो सार्वजनिक रूप से वंश-वृद्धि के लिए छोड़ा गया हो (साँड–) ।

साँथी–३०७ [संज्ञा] ताना में गणित-चिह्न के रूप में आने वाला स्थान ।

साँपिन–१६५ [संज्ञा] जिस बैल की पीठ पर साँप का चिह्न हो ।

साइत–९२,१९२ [संज्ञा] शुभ मुहूर्त (फा० साअत) ।

साग–८९,९३ [संज्ञा] मटर या चना की खोंटी हुई पत्तियाँ ।

साझीदार–२७५ [संज्ञा] साझा करने वाला (सं० सहाध्यायी) । २४४ कहा० साझे की सूई सगंधा से जाई ।

साटा–१ [संज्ञा] ऊसर में पानी रुकने के लिए बनाई गई चौड़ी नहर ।

साठी धान–१०३,१०८ [संज्ञा] साठ दिन में होने वाला धान (सं० षष्टिक) ।

साढ़ी–१८८,१८९ [संज्ञा] बैठाये हुए दूध के ऊपर मलाई वाला अंश (सं० सार) ।

साध–३५९ [संज्ञा] नाप ।

साधब–२४६ [क्रि०] निर्धारित निशान पर आरे को चलाना ।

सान–३७२ [संज्ञा] एक प्रकार का औजार जिस पर चाकू वगैरह तेज किया जाता है (सं० शाण) ।

सानब–२९२ [क्रि०] मिलाना (सं +नी ?) ।

सानी–१७६,२३४ [संज्ञा] भूसा आदि को पानी के साथ चलाकर पशुओं के लिए बनाया गया भोजन ।

सानी-भूसा–२३६ भूसा आदि की सानी; १७९ मुहा० सानी चलाइब–सानी तैयार करना ।

साम–२६७ [संज्ञा] दे० 'सान'; साम चढ़ाइब–सान रखना; साम धरब–वही ।

सामा–२७० [संज्ञा] एक प्रकार की मुँदरी जिसे ईख पेरने की कल की हरिस के एक सूराख में बैठाते हैं, इस सूराख में कल की मूड़ी रहती है ।

सुपारी–२५५ [संज्ञा] सुपारी के आकार का आभूषण जो माँग पर पहना जाता है ।

सुम्मा–२६७ [संज्ञा] लोहारों का सूराख करने का एक औजार ।

सुरक उठब–४१ [क्रि०] कसी रस्सी की रगड़ से हथेली की खाल निकल जाना ।

सुरका–४१ [संज्ञा] हाथ का रगड़ से छिल जाना ।

सुरसतिया–११९ [संज्ञा] एक प्रकार की ईख जिसका कोवापरेटिव सोसाइटी ने प्रचार किया (अँ० सोसाइटी)

सुलगब–१८८,२४१ [क्रि०] आग का धीरे-धीरे जलना (सुलग्न–) ।

सुलगाइब–३४५ [क्रि०] 'सुलगब' का स० ।

सुसइटिया–११९ [संज्ञा] दे० 'सुरसतिया' ।

सूजा–३२१ [संज्ञा] सीने का एक औजार (सूई <सं० सूची) ।

सूत–३०५ [संज्ञा] कपास का कता हुआ रूप; ३१७ ऊन का कता हुआ सूत; ३४६, ४०० सूत की भाँति पतला तार; २८४ मुहा० सूत आइब या उड़ब–शीरे में तार उठना; ३४६ सूत खींचब–तार निकालना ; २४६ सूत लगाइब–सूत द्वारा किसी लकड़ी पर निशान लगाना ।

सूप–४०६ [संज्ञा] अनाज पछोरने का एक उपकरण (शूर्प) ।

सेंठा–१२३,१७९ [संज्ञा] जोन्दरी का सूखा डंठल, लकठा ।

फा० १७

सेवई–६३ [संज्ञा] एक घास जो सावाँ की भाँति होती है (सं० श्यामा) ।

सेल्हवैया–३७७ [संज्ञा] सेल्हा बनाने वाला दे० 'सेल्हा' ।

सेल्हा–१०३,१०८ [संज्ञा] एक कुआरी धान (सं० शालि–); ३७७ सन के लच्छे जिससे रस्सी तैयार की जाती है या सन की बिना बटी हुई रस्सी (प्रा० सेल्लि, दे० ने० सेलि) तु० सल्लू ।

सेल्ही–१११[संज्ञा] एक अगहनी धान ।

सेल्हुई–३७७ [संज्ञा] सेल्हा वाली रस्सी दे० 'सेल्हा' ।

सेव–१८ [वि०] जो हल कम गहराई में धँसे उसे सेव हर कहते हैं (सं० सेध ?); २३,१०३,१४३ कम गहरी या छिछली जोताई-गोंड़ाई; २२३ कम ढाल की छाजन ।

सेवर–२४१ [वि०] कम पका बरतन ।

सेवार–२९८ [संज्ञा] पानी की एक घास (सं० शैवाल) ।

सै–३०७ [संज्ञा] करघे की राछ के सौ सूराखों को एक सै कहते हैं ।

सैल–२४ [संज्ञा] दे० 'सइल' ।

सोंध–९३ [वि०] खर भूनी हुई वस्तु के खाने में एक प्रकार की सुगंध (सुगन्ध) ।

सोक–६२ [संज्ञा] कुदार की गोंड़ाई से एक बार मे जो नाली बनती है; ३८९, ३९२ खाँचा या गोनरी आदि की बुनाई में एक बार में जितनी बाती दबाई जाती है ; मुहा० सोक फोरब–प्रत्येक सोक को अलग करना ।

सोकनी–१५५ [संज्ञा] वह गाय जिसके रोएँ काले और सफेद हों ।

सोकारी–२०८ [संज्ञा] छान उठाने के लिये जिन बाँसों की सहायता ली जाती है।

सोझ होव–१६७ [क्रि०] बैल के आठ दाँत पूरे होना।

सोता–१९७ [संज्ञा] कुएँ में किसी विशेष स्थान से पानी की तेज धार निकलना (स्रोतस्); मुहा० सोता फूटब–सोता निकलना।

सोधवाइब–२१० [क्रि०] साइत विचरवाना (सोधना, सं० शोधन)।

सोनार–२४५ [संज्ञा] गहना बनाने का पेशा करने वाली जाति (सं० सुवर्णकार, प्रा० सुवरणआर)।

सोन्हि–४०६ [वि०] दे० 'सोंध'।

सोमा–२०४ [संज्ञा] तृतीय श्रेणी की चीज। यथा, सोमा चीनी,सोमा चोटा।

सोर–१२३,२८० [संज्ञा] जड (सं० शटा, प्रा० सड़); १२२ मुहा० सोर फेंकब–जड़ निकलना, जड फैलना।

सोहनी–६३,१०७ [संज्ञा] निराई (शोधनी)।

सौड़ेरी–१७९ [संज्ञा] सावाँ के डंठल का कटा हुआ रूप।

सौंफिहा–१६५ [संज्ञा] दे० 'सॅवखिहा'।

सौंहट–१२५ [संज्ञा] सावाँ कटा खेत (सं० श्यामाक)।

सौंहटा–९,१२५ [संज्ञा] दे० 'सौंहट', १६, १७९ [संज्ञा] सावाँ का पयाल।

सौरी-वियौरी–२७४ [यौ०] प्रसव गृह (सूतिका–)।

ह

हॅकवैया–२२४ [संज्ञा] हाँकने वाला।

हँसिया–६५,२१५ [संज्ञा] एक अर्द्ध चंद्राकार हथियार जिससे खेत काटते हैं (तु० अंस–कन्धा–दे० ने० हॅसिया)।

हॅसुआ–६५,२६८,२८७ [संज्ञा] वही।

हॅसुली–२५६ [संज्ञा] एक आभूषण जो स्त्रियाँ गले में पहनती हैं।

हई–५० [संज्ञा] हानि। यथा, मूस द्वारा पहुँचाई गई हानि को मूस की हई कहते हैं।

हट–३२५ [क्रि०] हटना का आदेश सूचक रूप जो पशुओं के लिये प्रयोग होता है।

हटका–२०८,२६४ [संज्ञा] एक प्रकार का रोकने का साधन, तु० कैंचा।

हड़वा–११८ [संज्ञा] एक प्रकार की ईख जो हड्डी से मिलती है (हड्डी, सं० अस्थि)।

हड़हिया–११८ [संज्ञा] वही।

हड़ा–४९ [अ०] कौए को उड़ाने के लिए सांकेतिक शब्द (सं० हड्डम् प्रा० हड्ड=कौआ)।

हढ़ोढ़ा–२२४ [संज्ञा] कोल्हू में वह गड्ढा जिसमें पानी डाली जाती है।

हथउड़, हथउड़ा, हथउड़ी–२४६[संज्ञा] लोहे का ठोकने पीटने का औजार (सं० हस्त+कूट)।

हथवँड़–४०२ [संज्ञा] जाँत को चलाने के लिये उपरौटा में जो लकड़ी लगाई जाती है (सं० हस्त+कांड)।

हथवाहा–४७ [संज्ञा] हाथा चलाने वाला।

हथवैया–४७ [संज्ञा] वही।

हथौड़ा–२६७ [संज्ञा] दे० 'हथउड़'।

हँवसब–७५ [क्रि०] पाँव का बढ़ना।
हँवसल–७५ [वि०] बढ़ा हुआ; हरा भरा।
हयार–५१ [संज्ञा] हानि पहुँचाने वाले लोग।
हर–१४ [संज्ञा] हल का वह भाग जिसमें फार लगता है (सं० हल)।
हरजोता–२१ [संज्ञा] हल हाँकने के लिये एक छोटी छड़ी जो हलवाह के हाथ में होती है।
हरवाह, हरवाहा–१६,१९,२१ [संज्ञा] हल चलाने वाला।
हरहा, हरही–२८,१५७,१८० [संज्ञा] वे गायबैल जो बार-बार खेत चरने के लिये भागते हैं (हल–)।
हरहिया–१५७ [संज्ञा] वही।
हराई–२२ [संज्ञा] खेत का उतना भाग जितना जोतने के लिये एक बार में घेर जाता है; मुहा० हराई फानब–हराई आरम्भ करना।
हरियरी–१७६ [संज्ञा] हरी-भरी घास या चारा (सं० हरित)।
हरिस–१४,१७,४०,२७० [संज्ञा] हल की वह लम्बी लकड़ी जिसके एक छोर पर फाल वाली लकड़ी जुड़ी रहती है और दूसरे छोर का सम्बन्ध जुआ से होता है (सं० हल+ईषा)।
हलकोरब–११६ [क्रि०] पानी में हिलाना या झकझोरना।
हलुक–२,७,१०,४४ [वि०] हलका (सं० लघुक, प्रा० लहुक)।
हल्का–१७८ [संज्ञा] पशुओं के श्वास की बीमारी।
हाँड़ी–१५२,२२२,२०६ [संज्ञा] मिट्टी का एक पात्र (सं० भांड) २२२; हाँड़ी-पतुकी–[यौ०] वही।
हाँफा–१७८ [संज्ञा] श्वास कष्ट का रोग।
हाथा–४७ [संज्ञा] पानी सींचने का लकड़ी का एक उपकरण जो हाथ से चलाया जाता है (सं० हस्त–)।
हाल–२५६ [संज्ञा] लोहे का बन्द जो पहिये पर चढ़ाया जाता है।
हिक्का–१६२ [संज्ञा] पीठ से लेकर कन्धे तक का भाग।
हिगराइब–१८७ [क्रि०] पशुओं को उनके समूह से अलग करना।
हिगरौवल–१८७ [संज्ञा] हिगराने का कार्य।
हिरब–१८७ [क्रि०] भैंस का किसी पानी के गड्ढे में प्रवेश करना।
हिरवनी–१८६ [संज्ञा] जहाँ गोरू चरने के बाद एकत्र होते हैं।
हिराउब–१८६ [क्रि०] चरने के बाद पशुओं को हिरवनी पर एकत्र करना।
हिरार–८५,११० [संज्ञा] हरा या नरम।
हिरिकब–१९ [क्रि०] सटना।
हिरौनी–१८६ [संज्ञा] दे० 'हिरवनी'।
ही–१८४ [अ०] भैंस के रोकने के लिये एक सांकेतिक बोली।
हीरा–२४५ [संज्ञा] लकड़ी के मध्य का पका हुआ मजबूत भाग (हीरक–हीरा)।
हुँडी–२६१ [संज्ञा] हुंडी।
हुमेल–२५६ [संज्ञा] मोहर का बना हुआ गले का एक आभूषण जिसे स्त्रियाँ

पहनती हैं (अर० हमेल)

हुरपेठब–१८३[क्रि०] ढकेलना, खदेरना।

हुरमुर–१८३ [संज्ञा] धक्का-धुक्की ।

हुलसब–२१२ [क्रि०] जड़ से हिलना ।

हूर–१८३ [संज्ञा] पशुओं को भीड ; २०८,२५३,३९८ किसी लंबी चीज के किनारे का भाग। यथा, लाठी का हूर या बॉस का हूर।

हेंगवइया–२५[संज्ञा] खेत हेंगानेवाला।

हेंगवाह–२५ [संज्ञा] वही।

हेंगवाही–२५ [संज्ञा] हेंगाने का कार्य ।

हेंगवैया–२५ [संज्ञा] दे० 'हेंगवइया'।

हेंगा–२७ [संज्ञा] पाटा, खेती का एक उपकरण जिससे खेत सम किया जाता है (लोष्ठघ्न ?); २५ मुहा० **हेंगा भरब**–हेंगा के सामने मिट्टी एकत्र होजाना जिससे हेंगा चलाने मे कठिनाई होती है; **हेंगा लगब**–हेंगा का ठीक-ठीक काम करना।

हेगाई–२५ [संज्ञा] हेंगाने का कार्य ।

हे–१८४ [अ०] पशुओं के बुलाने का संबोधन ।

हो–२२५ [अ०] बैल को रोकने या ठहरने का संबोधन।

होर–२१, २२५ [अ०] वही।

होरहा–९३ [संज्ञा] घास आदि की आग में भूनी हुई चना को फलियाँ, होला (सं०होलक) तु० अ० मा० हुरड; १३२ ज्वार की बाल ।

हौंकरहा–१६६ [संज्ञा] भौंकारने वाला बैल ।

हौंकरहिया–१५७ [संज्ञा] हौंकरहा का स्त्री०। यथा, हौंकरहिया गाय।

हौदा–१८८,२३६,२७४ [संज्ञा] मिट्टी का एक बड़ा बर्तन जिसमें पशुओं को सानी चलाते हैं (अर० हौदज)।

सहायक ग्रन्थ-सूची

१—अर्द्ध मागधी कोष	.....	शतावधानी जैनमुनि श्री रत्न-चन्द्रजी महाराज, इन्दौर १९२३
२—दि प्रैक्टिकल संस्कृत इङ्गलिश डिक्शनरी		वी० एस० आप्टे
३—देशी नाम माला	...	हेमचंद्र, कलकत्ता १९३१
४—नेपाली डिक्शनरी	.....	आर० एल० टर्नर, १९३१
५—न्यू हिन्दुस्तानी इङ्गलिश डिक्शनरी	.....	एस० डबल्यू० फलून १८७९
६—परशियन इङ्गलिश डिक्शनरी	.....	एफ० स्टैंगास, लंदन, १९३०
७—पाइअ-सद्द-महण्णवो (प्राकृत-शब्द-महार्णवः)		पं० हरगोविन्द दास, टी० शेठ कलकत्ता, १९२८
८—बिहार पीज़ैंट लाइफ़	...	सर जार्ज ए० ग्रियर्सन, पटना १९२६
९—मराठी व्युत्पत्ति कोश	.....	के० पी० कुलकर्णी, बम्बई १९४६
१०—संस्कृत इङ्गलिश डिक्शनरी	...	सर मोनियर विलियम्स, आक्सफोर्ड, १८९९
११—हिन्दी-शब्द-सागर	...	(नागरी प्रचारिणी सभा)

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	अनुच्छेद	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६	२६	१०	नाथा	नाथी
५५	१२९	७	के बाट	की बीट
६०	१४३	६	कटाइव	चटाइव
६७	१६१	११	नइसेथली	इसे थनैली
८६	२१२	३	माटा	माटी
११२	२७२	१४	शोरी	शीरा
१३३	३४१		ठहा	ठीहा
१३७	३५३	१	बाना	बनाना
१५१	३९२	१४	मेंढ़ा	मेंढ़ी
१५२	३९४	४	अइलो	अइले
१५७	४०५	५	भीन-भान	भीन-भीन
१६०	४१०	७	चार	चीर
	पत्र-भाग			
१६५	२	१४	प्राच्नी	प्राचीन
१७९	१	१४	कुँठार	कुठार
१८९	२	५	३८	३८०
१८५	२	१७	गडढा	गड्ढा
२०३	२	२६	पचार	फार
२०५	२	१५	याग	गाय